दयानन्द शास्त्रार्थ-संग्रह

तथा

विशेष शङ्का-समाधान

संग्रहकर्त्ता एवम् अनुवादक :
कविराज रघुनन्दनसिंह 'निर्मल'

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

दयानन्द शास्त्रार्थ-संग्रह व विशेष शङ्का-समाधान का सूचीपत्र

ओ३म्

दयानन्द-शास्त्रार्थ, प्रश्नोत्तर-संग्रह

मूर्तिपूजा (लिखित शास्त्रार्थ)

(जयपुर की संस्कृत पाठशाला के पण्डितों के साथ)

स्वामी दयानन्द ने दस या पन्द्रह प्रश्न लिखकर जयपुर की संस्कृत पाठशाला में पण्डितों के पास भेजे । पण्डित महाशयों ने इनके उत्तर में गाली-गलौज के सिवाय और कुछ नहीं लिखा । स्वामी जी ने इस पत्र में आठ प्रकार के दोष निकालकर हरिश्चन्द्रादि महान् पुरुषों के पास भेज दिये। उस पत्र को पढ़कर सब ने अत्यन्त शोक प्रकट किया और पत्र का कुछ भी उत्तर नहीं दिया । फिर सब पण्डित एकत्रित होकर व्यास बक्षीराम जी के पास गये और कहा कि हमारा स्वामी जी से शास्त्रार्थ करवा दो । पण्डितों के कहने पर व्यास जी ने स्वामी जी को महलों में बुलवाया, सब पण्डित भी एकत्रित हुए और शास्त्रार्थ होने लगा । अन्त में पण्डित निरुत्तर होकर चुप हो गए, और एक मैथिल पण्डित ने कहा कि महाभाष्य की गणना व्याकरण में नहीं है । स्वामी जी ने उसको यही बात लिख देने के लिए कहा । परन्तु उन्होंने नहीं लिखा और रात्रि विशेष हो गई, यह बहाना करके चुप हो गये।
(आर्य धर्मेन्द्रजीवन, रामविलास शारदा पृ० ३१, ३२, लेखराम पृ० ५५)

लिखित शास्त्रार्थ (जैनमत)

(जयपुर के जैनगुरु के साथ)

जयपुर में जैनियों के एक गुरु ने शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की, परन्तु वह स्वामी जी को अपने मकान पर ही बुलाना चाहता था, इस कारण मौखिक शास्त्रार्थ न हुआ । और स्वामी जी ने १५ प्रश्न लिखकर उनके पास भेज दिये, जिनका उत्तर यति जी से न बन पड़ा परन्तु उन्होंने ८ प्रश्न लिखकर स्वामी जी के पास भेज दिये, जिनका उत्तर स्वामी जी ने बड़ी योग्यता से दिया । (आर्य धर्मेन्द्रजीवन, रामविलास शारदा पृ० ३२, लेखराम पृ० ५६)

ईसाईमत

(पादरी ग्रे साहब आदि से अजमेर में शास्त्रार्थ—जून १८६६)

३० मई, सन् १८६६ को स्वामी जी पुष्कर से अजमेर आये । वहां स्वामी जी का पादरी लोगों से मित्रतापूर्ण शास्त्रार्थ हुआ । एक तो रैवरेण्ड जे० ग्रे साहब मिशनरी प्रेस वी टेरेन मिशन अजमेर और दूसरे पादरी राबिन्सन शूलब्रेड साहब थे और तीसरे साहब पादरी मेरवाड़ अर्थात् ब्यावर थे । प्रथम तीन दिन ईश्वर, जीव, सृष्टिक्रम और वेद–विषय में बातचीत रही । स्वामी जी ने उनके उत्तर उत्तम रीति से दिये । चौथे दिन ईसा के ईश्वर होने पर और मरकर जीवित होने और आकाश में चढ़ जाने पर स्वामी जी ने कुछ प्रश्न किये । दो–तीन सौ मनुष्य इस धर्मचर्चा के समय आया करते थे । अन्तिम दिन जब पादरी लोग इस विषय पर कोई बुद्धिपूर्ण उत्तर न दे सके तो स्कूल के लड़के ताली पीटने लगे परन्तु स्वामी जी ने रोक दिया । **आपस में शास्त्रार्थ का ढंग यह था** कि प्रथम एक पक्ष प्रश्न ही प्रश्न करे और दूसरा पक्ष उत्तर ही उत्तर दे, बीच में प्रश्न न करे । तत्पश्चात् इसी प्रकार दूसरा पक्ष करे । प्रथम प्रश्न पादरी लोगों ने किये जिनके उत्तर स्वामी जी ने दिये। इस शास्त्रार्थ में ईसाइयों ने एक वेदमन्त्र का भी प्रमाण दिया था जिसे स्वामी जी ने अस्वीकार किया कि यह वेदमन्त्र नहीं । उन्होंने कहा कि हम वेद लाकर दिखावेंगे परन्तु वेद से न दिखला सके ।

राबिन्सन साहब का जो उन दिनों बड़े पादरी थे—एक प्रश्न यह था कि ब्रह्मा जी ने जो व्यभिचार किया है उसका क्या उत्तर है ?

स्वामी जी ने कहा कि क्या **एक नाम के बहुत से मनुष्य नहीं हो सकते ?** फिर यह कौन बात है कि यह ब्रह्मा वही है प्रत्युत कोई और व्यक्ति होगा । वे महर्षि ब्रह्मा ऐसे नहीं थे । (लेखराम पृष्ठ ६३)

संन्यासाश्रम

(पं० रामरत्न अजमेर से संन्यासाश्रम के विषय में प्रश्नोत्तर)

सन् १८६६ में जब स्वामी जी अजमेर में थे और मूर्तिपूजा तथा भागवतादि का खण्डन कर रहे थे तो उन दिनों रामरत्न नामक एक पण्डित ने जो ग्राम रामसर जिला अजमेर में रहता था और ग्राम का पटवारी भी था, सम्भवतः दस प्रश्न बनाकर भेजे थे जो इस विषय के थे—

संन्यासी को किसी ग्राम में तीन दिन से अधिक न रहना चाहिए ।

घोड़ों की बग्घी में न चढ़ना चाहिए आदि ।

ये प्रश्न संस्कृत में थे । स्वामी जी ने प्रत्येक प्रश्न का उत्तर विश्वसनीय पुस्तकों के प्रमाणों सहित लिख भेजा और उसके लेख में जो अशुद्धियां थीं, वे भी साथ ही लिखकर भेज दीं । इन प्रश्नों का एक उत्तर यह था कि **निस्सन्देह संन्यासी को एक स्थान पर तीन दिन से अधिक न रहना चाहिए** परन्तु जहां अन्धकार हो रहा हो तो वहां उपदेश के लिये अधिक रहना उचित है । (लेखराम पृष्ठ ६६)

मूर्तिपूजा

(अनूपशहर-निवासी पं० अम्बादत्त वैद्य से शास्त्रार्थ—नवम्बर १८६७)

जब महाराज को कर्णवास में निवास करते हुए बहुत दिन हो गये और उनकी लोकप्रियता बढ़ती गई, तब भगवानदास आदि को महाराज की बढ़ती हुई लोकप्रियता असह्य हो गई । उन्होंने सोचा कि उनके मार्ग से दयानन्द रूपी कण्टक तभी दूर हो सकता है जब उसे शास्त्रार्थ में परास्त किया जावे। अतः वह अनूपशहर निवासी पं० अम्बादत्त पर्वती को जो संस्कृत में बहुत व्युत्पन्न समझे जाते थे स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के लिये बुला लाये । पं० अम्बादत्त से शास्त्रार्थ हुआ । **परिणाम यह निकला कि पण्डित जी परास्त हुए** और उन्होंने एक सत्यप्रिय मनुष्य की भांति भरी सभा में मुक्तकण्ठ से कहा कि जो कुछ स्वामी जी कहते हैं, वह सत्य है, मूर्तिपूजा अवैदिक और त्याज्य है ।

(श्री देवेन्द्रनाथ जी कृत जीवनचरित्र, भाग १, पृष्ठ १०५, लेखराम, पृ० ७६)

मूर्तिपूजा

(अनूपशहर-निवासी पं० हीरावल्लभ पर्वती का कर्णवास में शास्त्रार्थ—नवम्बर १८६७)

पौराणिकों को पं० अम्बादत्त के पराजय की कालिमा धोने की चिन्ता थी ही । वे अनूपशहर गये और पं० हीरावल्लभ को बुलाकर लाये। पौष मास की किसी तिथि को पं० हीरावल्लभ कर्णवास आये और बड़े ठाठ से आये। वे अपने आराध्य देवों की मूर्तियों को एक सुन्दर सिंहासन में सजाकर साथ लाये । शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ । उसमें पं० हीरावल्लभ प्रवृत्त हुए तो अनोखे ढंग से । देवमूर्तियों का सिंहासन सामने रखकर और यह प्रतिज्ञा करके कि

मैं इन देवमूर्तियों को दयानन्द के हाथ से भोग लगवाकर उठूंगा । छः दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा, नियम और न्यायपूर्वक होता रहा । छठे दिन पं० हीरावल्लभ ने अस्त्र शस्त्र डाल दिये, अपनी हार स्वीकार की, वाणी से भी और कर्म से भी । पण्डित जी ने महाराज को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और साथ ही देवमूर्तियों को भी सदा के लिए हाथ जोड़कर गङ्गाजल में प्रविष्ट करा दिया । उन देवमूर्तियों को जिन्हें वे दयानन्द के हाथ से भोग लगवाने की प्रतिज्ञा करके शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए थे, स्वयं भोग लगाना छोड़कर शास्त्रार्थ से निवृत्त हुए । सभा में २००० मनुष्य उपस्थित थे । **स्वामी जी पं० हीरावल्लभ की न्यायप्रियता देखकर गद्गद हो गये ।** और उन्होंने पण्डित जी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की । निष्पक्ष मनुष्यों ने भी उन्हें हृदय से साधुवाद कहा । सब के मुखमण्डल हर्ष से खिल उठे । मूर्तिपूजकों के हृदय शोक-सन्तप्त और उनके मुख विषाद से तेजहीन हो गये और आह करते और ठण्डे सांस भरते सभा से उठकर चले गये । इस शास्त्रार्थ का यह प्रभाव हुआ कि सैकड़ों की आस्था मूर्तिपूजा के ऊपर से उठ गई और बीसियों लोगों ने पं० हीरावल्लभ का अनुकरण करते हुए अपनी देवमूर्तियां गंगा के प्रवाह में डाल दीं । (देवेन्द्रनाथ १।१११, लेखराम पृष्ठ ७७)

मूर्तिपूजा

(साधु कृष्णेन्द्र सरस्वती से रामघाट पर शास्त्रार्थ—सन् १८६७ अगहन १९२४ वि०)

खेमकरन जी भूतपूर्व ब्रह्मचारी वर्तमान संन्यासी कर्णवास निवासी ने वर्णन किया कि—अगहन मास, संवत् १९२४ में स्वामी जी रामघाट में आये। वहां एक साधु कृष्णेन्द्र सरस्वती रहते थे । लोगों ने उनसे जाकर कहा कि एक स्वामी आया है जो गङ्गादि तीर्थ, महादेवादि की मूर्ति और भागवत, वाल्मीकि आदि सब का श्रुति और स्मृति के अतिरिक्त खण्डन करता है । ग्राम में कोलाहल मच गया । अन्त में कृष्णेन्द्र को लोग उसके बार-बार अस्वीकार करने पर भी वहां वनखण्डी पर ले आये जहां स्वामी जी ठहरे हुए थे और शास्त्रार्थ आरम्भ किया । इतने में एक व्यक्ति ने कृष्णेन्द्र से पूछा कि महाराज ! मैं महादेव पर जल चढ़ा आऊँ तो स्वामी जी बोले कि वहां तो पत्थर है, महादेव नहीं । "महादेवो कैलासे वर्तते" अर्थात् महादेव कैलास में है । तब कृष्णेन्द्र ने कहा कि यहां महादेव नहीं है ?

स्वामी जी ने कहा कि वह महादेव मन्दिर के अतिरिक्त यहां भी है,

वहां जाना व्यर्थ है । तब कृष्णेन्द्र ने गीता के इस श्लोक का प्रमाण दिया–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर निराकार है, अवतारवादी नहीं बन सकता। देह धारना केवल जीव का धर्म है ।

इसका कोई उत्तर कृष्णेन्द्र से न आया । वह स्वामी जी के सामने बैठा-बैठा ही घबरा गया और घबराकर वही गीता का श्लोक बार-बार लोगों की ओर मुख करके (मुख से कफ निकलता था) पढ़ने लगा । तब स्वामी जी ने कहा कि तू लोगों से शास्त्रार्थ करता है या मुझ से शास्त्रार्थ करता है ? मेरे सामने होकर बात कर ।

फिर जब इस पर भी वह बात न कर सका और कुछ दशा भी ठीक न रही तो "गन्धवती पृथिवी" "धूमवती अग्नि:" इस प्रकार की न्याय की बात चली, जिस पर उसने कहा कि लक्षण का भी लक्षण होता है । स्वामी जी ने कहा कि **लक्ष्य का तो लक्षण होता है परन्तु लक्षण का लक्षण नहीं होता ।** पूज्य का पूज्य और चून (आटा) का चून क्या होगा ?

इस पर सब लोग हँस पड़े और वह घबराकर उठ खड़ा हुआ । सब लोग कहने लगे और जान गये कि स्वामी जी की जीत हुई ।

(लेखराम पृष्ठ १००, १०३)

यज्ञोपवीत

(शिवलाल वैश्य रईस डिबाई, जि० बुलन्दशहर से प्रश्नोत्तर–फरवरी १८६८)

ठाकुर शिवलाल वैश्य रईस डिबाई जि० बुलन्दशहर ने वर्णन किया कि दूसरी बार स्वामी जी मुझे फागुन बदि १३ संवत् १९२४ तदनुसार २१ फरवरी, सन् १८६८ को कर्णवास में मिले । वहां पहुंचकर क्या देखता हूं कि आप दो-चार ठाकुरों और वैश्यों के लड़कों के उपनयन संस्कार कराने का यत्न कर रहे हैं । मैंने जाकर नमस्कार किया और प्रश्न किया ।

प्रश्न–महाराज ! यदि यज्ञोपवीत न हो तो क्या हानि ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का उपनयन संस्कार होना अवश्यक है, क्योंकि जब तक उपनयन संस्कार नहीं होता तब तक मनुष्य को वैदिक कार्य करने का अधिकार नहीं ।**

प्रश्न–एक व्यक्ति उपनयन संस्कार करावे परन्तु शुभ कर्म्म न करे

और दूसरा उपनयन संस्कार नहीं करावे और सत्यभाषणादि कर्म में तत्पर हो, उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि श्रेष्ठ वह है जो उत्तम कर्म करता है परन्तु संस्कार होना आवश्यक है क्योंकि संस्कार न होना वेद, शास्त्र के विरुद्ध है और जो वेद-शास्त्र के विपरीत करना है वह ईश्वरीय आज्ञा को नहीं मानता और ईश्वरीय आज्ञा को न मानना मानो नास्तिक होने का लक्षण है ।

(लेखराम पृष्ठ ९४)

मूर्तिपूजा

(पं० अङ्गदराम शास्त्री से शास्त्रार्थ सोरों में–संवत् १९२५)

गुसाईं बलदेवगिरि जी ने वर्णन किया कि स्वामी जी जब संवत् १९२५ में सोरों में आये थे तो उनका वहां अङ्गदराम शास्त्री से शास्त्रार्थ हुआ । पण्डित अङ्गदराम जी संस्कृत के पूर्ण विद्वान् और व्याकरण के पूरे प्रकाण्ड पण्डित थे । बीसियों पण्डित उनसे संस्कृत पढ़ते थे और केवल पढ़ाते ही नहीं प्रत्युत वे पण्डितों में शिरोमणि गिने जाते थे । इस ओर उनकी समानता करने वाला कोई न था और न किसी का साहस पड़ता था कि अङ्गदराम जी से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हो । उनके नाम से ही पण्डित लोग घबरा जाते थे । विशेषतया वह न्याय और व्याकरण में पूर्ण दक्षता रखते थे । कस्बा बदरिया जो सोरों के अत्यन्त समीप है, वहां के रहने वाले थे । पण्डित नारायण चक्राङ्कित जिसे स्वामी जी ने हराकर अपना शिष्य बनाया था, वह पं० अङ्गदराम के पास पढ़ा करता था । उसने जाकर पं० अङ्गदराम जी से कहा कि एक ऐसे स्वामी आये हैं जिनके सामने किसी को मुख से बात निकालने की भी शक्ति नहीं । पण्डित जी तुम चलो । पण्डित अङ्गदराम जी आये और आते ही संस्कृत में मूर्तिपूजा पर विचार होने लगा । ये पण्डित जी महाराज शालिग्राम की पूजा करते थे, और नित्य भागवत की कथा बांचा करते थे । स्वामी जी ने वेद और सत्य-शास्त्रों के प्रमाणों से मूर्तिपूजा का अत्यन्त बुद्धिपूर्वक खण्डन किया और साथ ही भागवत को भी खण्डन करने से न छोड़ा । पण्डित अङ्गदराम जी से भागवत के विषय में बहुत सी बातें हुईं । वे बहुत विद्वान् थे, स्वामी जी की विद्या पर मोहित हो गये । स्वामी जी ने उनको भागवत के बहुत से दोष बतलाये थे । अन्तिम दोष यह था–

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ।
राज्ञां चोभयवंशानां चरितं परमाद्भुतम् ॥

यह दशम स्कन्ध का पहला श्लोक है । इस में स्वामी जी ने **विस्तार शब्द अशुद्ध और व्याकरण के विरुद्ध बतलाया था** कि विस्तर चाहिए, विस्तार नहीं । क्योंकि अष्टाध्यायी में लिखा है विस्तर शब्द में ''घञ्'' प्रत्यय हो अशब्द में । इस पर स्वामी जी ने बहुत से श्लोकों का प्रमाण दिया कि देखो ''विस्तरेण व्याख्याता'' सब स्थान पर ऐसा लिखा है कि विस्तार अशुद्ध है। वार्ता या वंश के लिये विस्तर और मापादि के लिए विस्तार आता है । उसी को सुनकर पण्डित अङ्गदराम जी बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि महाराज! आपकी बातों को कहां तक श्रवण करूं–सब सत्य हैं । अन्त में पण्डित जी ने अपना पूर्ण सन्तोष हो जाने के पश्चात् शालिग्राम की मूर्ति जिसे वह पूजते थे, सब के सामने गंगा में डाल दी और भागवतादि पुराणों की कथा करनी पूर्णरूप से छोड़ दी, प्रत्युत भागवत का बहुत तिरस्कार किया । उनकी यह दशा देखकर गुसाईं बलदेवगिरि जी ने भी बहुत सी बहलियां बटियां गङ्गा में फेंक दीं और **पण्डित अङ्गदराम जी के सम्बन्धियों ने भी अपनी पूजा की मूर्तियां गङ्गा में फेंक दीं ।** (लेखराम पृष्ठ १०८)

मूर्तिपूजा

(ठाकुर किशनसिंह से कायमगंज में प्रश्नोत्तर–संवत् १९२५)

पण्डित शामलाल कान्यकुब्ज कायमगंज ने वर्णन किया कि जब स्वामी जी शिवालय में आनकर उतरे तो लोगों से पूछा कि यह क्या है? लोगों ने कहा कि यह शिवालय है, कहा कि तुम लोग स्वयं ही कहते हो कि शिवालय तो कैलास में है क्योंकि शिव वहां रहते हैं । इसलिए यह तो सराय बैठक है । हम को भी स्मरण किया, हम ठाकुर किशनसिंह भूश्रित सहित वहां गये । किशनसिंह ने पूछा कि तुम शिवलिङ्ग पूजा का निषेध करते हो परन्तु इसका तो शास्त्रों में लेख है ।

स्वामी जी ने कहा कि कैसी लज्जा की बात है कि तुम लिङ्ग की पूजा करते हो और फिर जब लिङ्ग पृथक् होकर यहां आ गया तो शिव कैलास में हीजड़ा रह गया । (लेखराम पृष्ठ ११८)

क्या मौहम्मद पैगम्बर है ?

मुसलमानों से फर्रुखाबाद में प्रश्नोत्तर–सं० १९२५)

ला० मुन्नीलाल वैश्य ने वर्णन किया कि स्वामी जी संवत् १९२५ में

जब फर्रुखाबाद में ठहरे हुए थे तो एक दिन तीसरे पहर चार पांच मुसलमान स्वामी जी के पास गये । मुसलमानों ने पूछा कि–''मौहम्मद को खुदा ने हमारे लिए भेजा है या नहीं ?''

स्वामी जी ने हम से कहा कि–नियम होना चाहिए कि सत्य को सुनकर मनुष्य विचार करे न कि घबराकर लड़ने को दौड़े । अब तो यह धार्मिक बात करते हैं पर पीछे युद्ध होगा । मैंने उनसे कहा कि स्वामी जी कहते हैं फिर लड़ोगे तो नहीं ? उन्होंने कहा कि हम ऐसा नहीं करेंगे, आप तो बलवान् हैं । सारांश यह कि यह बात स्वामी जी ने तीन बार कही तब कहा कि ''मौहम्मद अच्छा मनुष्य नहीं था । तुम लोगों ने उसका अनुकरण किया यह बुरा किया। जब चोटी कटवाई तो **दाढ़ी रखने से क्या प्रयोजन ? ऊंची बांग देते हो, यह क्या ईश्वर की उपासना है ?''**

खुतने के विषय में भी पूछा था परन्तु कोई उत्तर मुसलमान न दे सके। अन्त में चले गये । (लेखराम पृष्ठ १२५)

आदम हव्वा का वियोग

(मौलवी अहमद अली टूबान से कायमगंज में प्रश्नोत्तर–नवम्बर, १८६८)

मौलवी अहमद अली टूबान से मनुष्योत्पत्ति विषय पर बातचीत हुई तो स्वामी जी ने पूछा कि आदम-हव्वा का वियोग क्यों हुआ ? **खुदा ने उनके मन में प्रेम क्यों न उत्पन्न किया ?** जो वियोग का दुःख न सहते। इसका मौलवी कोई उत्तर न दे सका । मौलवी स्वामी जी की बात से प्रसन्न हुआ और उनके कथन की पुष्टि करता रहा । उसने महाराज की बहुत प्रशंसा की और कहा यह फकीर बहुत बड़ा आलिम (विद्वान्) है और बुतपरस्त नहीं है । (देवेन्द्रनाथ १।१३०, लेखराम पृ० ११९-१२०)

मूर्तिपूजा

(पं० हरिशङ्कर कन्नौज से प्रश्नोत्तर–संवत् १९२६)

पण्डित हरिशङ्कर जी ने वर्णन किया कि संवत् १९२६ में जब स्वामी जी कन्नौज में ठहरे हुए थे तो मूर्तिपूजा पर हमारी उनसे यह बातचीत हुई–

स्वामी जी ने कहा कि–मूर्तिपूजा का शास्त्रों में निषेध है ।

हमने कहा कि–आप वचन पढ़ें ।

स्वामी जी ने कहा कि–तुम कोई विधिवचन पढ़ो । हम ने कहा कि–

श्रुति, स्मृति, सदाचार इत्यादि अर्थात् सदाचार श्रुति, स्मृति के अनुसार है और मूर्तिपूजा सदाचार है । (उस समय हमने और ग्रन्थ नहीं देखे थे और न वेद पढ़े थे) ।

स्वामी जी ने कहा कि–**सदाचार पञ्चमहायज्ञ है न कि मूर्तिपूजा** और प्रतिमापूजन के कारण से लोगों ने बलिवैश्वादिक पञ्चयज्ञ छोड़ दिये हैं, जब उससे अश्रद्धा होगी तब वह काम करने लगेंगे और **जब वैदिक कर्म करने लगोगे तब तुम्हारा बड़ा मान होगा ।**

हमने कहा कि वैदिककर्म तो अब कोई कर नहीं सकेगा और मूर्तिपूजा पर अश्रद्धा हो जावेगी तो इससे लोक भ्रष्ट हो जावेंगे ।

(लेखराम पृष्ठ १२७, १२८)

मूर्तिपूजा

(पण्डित श्रीगोपाल जी से फर्रुखाबाद में शास्त्रार्थ–२४ मई, १८६९)

जब श्री स्वामी जी महाराज फर्रुखाबाद में धर्म-प्रचार तथा पाखण्ड का खण्डन कर रहे थे तो वहां के पण्डितों में हलचल मच गई और उन्होंने जिला मेरठ के रहने वाले पण्डित श्रीगोपाल जी को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया। इस शास्त्रार्थ में पीताम्बरदास जी मध्यस्थ थे और उनके अतिरिक्त दस पांच पण्डित और भी थे । विश्रान्त घाट पर जहां स्वामी जी उतरे थे सब लोग एकत्रित हुए और पण्डित श्रीगोपाल जी भी गये । उस समय श्रीगोपाल जी तथा स्वामी जी के मध्य निम्नलिखित बातचीत हुई–

पण्डित जी बोले कि–"भो स्वामिन् मया रात्रौ विचारः कृतः।" हे स्वामी! मैंने रात्रि में विचार किया है । आप मूर्तिपूजा का क्यों और कैसे खण्डन करते हैं । यह मूर्तिपूजा तो सर्वथा लिखी है ।

स्वामी जी–कुत्र लिखितमस्ति तदुच्यताम् ।" अर्थात् कहां लिखी है वह कहो और यह संस्कृत अशुद्ध है ।

पण्डित जी ने संस्कृत की अशुद्धि तो स्वीकार न की परन्तु मूर्तिपूजा के प्रमाण में मनुस्मृति अध्याय २, श्लोक १७२ पढ़ा–

"देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ।'

स्वामी जी–"अस्यार्थः क्रियताम्" अर्थात् इसका अर्थ करो ।

पण्डित जी–देवता का पूजन करे, सायं-प्रातः हवन करे और पूजन चूंकि प्रतिमा का ही हो सकता है और का नहीं इसलिये इससे मूर्तिपूजन सिद्ध है ।

स्वामी जी—व्युत्पत्ति द्वारा इसका अर्थ करो। अर्च पूजायाम् अर्थात् अर्चा पूजा और पूजा सत्कार को कहते हैं। यहां अग्निहोत्र और विद्वानों के सत्कार का आभिप्राय है, मूर्तिपूजा का नहीं। इस पर कुछ समय तक शास्त्रार्थ चलता रहा। श्री गोपाल जी निश्चय करके गये थे कि स्वामी जी को परास्त करेंगे वह बात न हुई और न मूर्तिपूजन का प्रतिपादन हुआ। इस पर स्वामी जी की विद्वत्ता की ख्याति और भी नगर में फैल गई और इसका कारण भी श्रीगोपाल हुए क्योंकि उसने उस समय यद्यपि अपनी भूल न मानी परन्तु दूसरे दिन पण्डितों से पूछता फिरता था कि पूजा शब्द कहीं नपुंसक भी होता है या नहीं क्योंकि मैंने वहां भूल से पूजा नपुंसक लिङ्ग बोल दिया है। पण्डितों ने कहा कि—नहीं, वह तो स्त्रीलिङ्ग होता है।

इस अवसर पर श्रीगोपाल ने अपनी अपकीर्ति देखकर अपनी सफलता का यह एक उपाय सोचा कि काशी जाकर स्वामी जी के विरुद्ध मूर्तिपूजा के पक्ष में व्यवस्थापत्र लाऊं और उनको शास्त्रार्थ में इस बहाने से हराने का यत्न करूं। यह निश्चय कर वे बनारस गये। पं० शालिग्राम जी शास्त्री मुख्याध्यापक गवर्नमेण्ट कालिज अजमेर वर्णन करते हैं कि जब स्वामी जी ने फर्रुखाबाद हमारे नगर में आकर मूर्तिपूजा का खण्डन आरम्भ किया तब पण्डित श्रीगोपाल जी बनारस में हमारे पास आये कि आप फर्रुखाबाद नगर के रहने वाले हैं। आजकल एक स्वामी दयानन्द नामक वहां आये हैं और मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं, कृपा करके हमें व्यवस्था ले दीजिये। हमने उनके लिये प्रमाण लिखने का निश्चय किया परन्तु हमारे गुरु पण्डित राजाराम शास्त्री ने कहा कि तुम क्यों परिश्रम करते हो। पहले भी एक बार दक्षिण में मूर्तिखण्डन की चर्चा हुई थी उस समय हमने काशी के पण्डितों के हस्ताक्षर से एक व्यवस्था लिखी थी उसकी प्रतिलिपि भेज दी। मैंने उसकी प्रतिलिपि करके काशी के पण्डितों के हस्ताक्षर कराने के पश्चात् उनको दे दी। श्रीगोपाल जी के कुछ रुपये भी हस्ताक्षर कराने में पण्डितों की भेंट पूजा में व्यय हुए थे। हमने पहली बार श्रीगोपाल के मुख से ही स्वामी जी का नाम सुना था। (लेखराम १२१, ५७५)

मूर्तिपूजा

(पं० हलधर ओझा मैथिल से फर्रुखाबाद में शास्त्रार्थ—१९ जून, १८६९)

जेठ शुदि दशमी, शनिवार, संवत् १९२६ तदनुसार १९ जून, सन् १८६९ रात्रि को आठ बजे के समय ला० प्रेमदास तथा देवीदास साहूकार, पण्डित

उमादत्त, पण्डित पीताम्बरदास, पण्डित रामसहाय शास्त्री, पण्डित गौरीशङ्कर, पण्डित ललिताप्रसाद, पण्डित गणेश शुक्ल, पण्डित चरनामल शुक्ल, पण्डित माधवाचार्य, पण्डित बृजकिशोर, ला० जगन्नाथप्रसाद, पण्डित दिनेशराम, पण्डित बिहारीदत्त सनाढ्य, पण्डित गङ्गादत्त पुरोहित, पण्डित हलधर ओझा को साथ लेकर नगर के बाहर गङ्गातट पर स्वामी जी के निवास-स्थान पर गये । लाला जगन्नाथप्रसाद रईस फर्रुखाबाद ने आगे बढ़कर स्वामी जी को सूचना दी । (उस समय स्वामी जी पूर्वाभिमुख बैठे हुए खर्बूजा खा रहे थे।) कि महाराज हलधर आया है । स्वामी जी ने उनकी ओर से दृष्टि नीचे कर ली और खर्बूजा छोड़ दिया और फिर सिर उठाकर कहा कि आने दो । उक्त लाला साहब नीचे आकर उनको ले गए । हलधर ने जाकर प्रणाम किया। स्वामी जी ने उत्तर में कहा—अरे हलधर आनन्द है ?

"अरे हलधर आनन्दो जातः ?"

उसने कहा महाराज आनन्द है ।

यह पहले निश्चय हो गया कि शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा पर हो परन्तु मूर्तिपूजा पर आरम्भ होते ही बात सुरापान पर जा पड़ी क्योंकि यह हलधर तान्त्रिक पण्डित था जो मांस-मद्य खाता-पीता था और उसे उचित समझता था । मैथिल ब्राह्मण प्रायः तान्त्रिक होते हैं और मांस-मद्य खाते-पीते हैं । हलधर ने प्रमाण दिया—

"सौत्रामण्यां सुरां पिबेत् ।"

अर्थात्—सौत्रामणि यज्ञ में सुरा पीनी चाहिये । स्वामी जी ने कहा कि सुरा शब्द से अच्छे फल की रसरूप औषधि का वर्णन है, मद्य का नहीं । मद्य अर्थ करने वालों का अच्छी तरह खण्डन किया और कहा कि इसका अर्थ यह है कि सौत्रामणि यज्ञ में सोमरस अर्थात् सोमवल्ली का रस पीवे।

फिर हलधर ने स्वामी जी से संन्यासी के लक्षण पूछे । स्वामी जी ने सब लक्षण बतला दिये । तत्पश्चात् स्वामी जी ने हलधर से पूछा कि आप ब्राह्मण के लक्षण कहें । परन्तु वह उससे न बन सका और संस्कृत में गड़बड़ करने लगा । तब स्वामी जी ने कहा कि हलधर "भाषायां वद, भाषायां वद" अर्थात् भाषा में बात कर, भाषा में बात कर । इस पर वह बहुत घबरा गया और प्रकरण छोड़कर दूसरी ओर जाने लगा । तब स्वामी जी ने कहा कि **हे हलधर ! प्रकरण छोड़कर मत जाओ, प्रकरण पर रहो ।**

"भो हलधर प्रकरणं विहाय मा गच्छ ।" हलधर ने इसका उत्तर दिया—

"अहं तु न प्रकरणं विहाय गच्छामि परन्तु श्रीमान् पुनः पुनः प्रकरणमभिनयते,

प्रकरणशब्दस्य कथं सिद्धिः'' ?

अर्थात् मैं तो प्रकरण छोड़कर नहीं जाता परन्तु आप बार-बार प्रकरण शब्द कहते हैं । बतलाइये प्रकरण शब्द किस प्रकार सिद्ध होता है ?

स्वामी जी–''प्रपूर्वात् कृधातोर्ल्युट् प्रत्यये कृते सति प्रकरणशब्दस्य सिद्धिर्भवति'' अर्थात् ''कृ'' धातु से ''ल्युट्'' प्रत्यय करने से प्रकरण शब्द सिद्ध होता है ।

हलधर–''कृ धातुः समर्थो भवति किं वाऽसमर्थो भवति'' अर्थात् 'कृ' धातु समर्थ होती है या असमर्थ ?

स्वामी जी–''समर्थो भवति । समर्थः पदविधिः'' अर्थात् 'कृ' धातु समर्थ होती है और इस सूत्र में समर्थ-पदविधि है जितने पद प्रसिद्ध होते हैं ।

हलधर–यह तो कहिये कि समर्थ किस को कहते हैं और असमर्थ किस को कहते हैं ?

स्वामी जी–'सापेक्षोऽसमर्थो भवति' अर्थात् अपेक्षा करने वाला असमर्थ होता है । यह महाभाष्य का वाक्य है ।

हलधर–यह वाक्य महाभाष्य में नहीं लिखा है–यह तो केवल आपकी संस्कृत है ।

स्वामी जी बृजकिशोर पण्डित से बोले कि दूसरे अध्याय का पहला अंक महाभाष्य का निकालिये । जब निकाला और देखा गया तो वही बात निकली जो स्वामी जी कहते थे ।

अन्त में निरुत्तर होकर हलधर ओझा ने कहा कि महाभाष्यकार भी पण्डित है और मैं भी पण्डित हूं । मैं क्या उससे कम हूं ।

स्वामी जी ने कहा कि–तुम तो उसके बाल के समान भी नहीं हो । यदि हो तो कहो कि कल्म संज्ञा किस की है ?

हलधर इसका कुछ उत्तर न दे सके । जब हलधर से कुछ उत्तर न बन सका तब स्वामी जी ने कहा कि महाभाष्य में ''अकथितं च'' इस सूत्र को देख लो कि कल्म संज्ञा कर्म की है । इस पर सब लोग जान गये कि हलधर ओझा की कितनी विद्या है । इसी प्रकार शास्त्रार्थ व्याकरण पर होते-होते एक बजे रात का समय हो गया । अन्त में यह निश्चय पाया कि ''समर्थः पदविधिः''–यह सूत्र यदि सर्वत्र लगे तो हलधर जी की हार हो गई और यदि एक स्थान पर लगे तो स्वामी जी की । यह निश्चय होने से सब लोग हलधर सहित चले आये ।

ला० जगन्नाथप्रसाद तथा पण्डित मुन्नीलाल जी ने कहा कि हम और सब पण्डित लोग एक साथ ही चले जाते थे । मार्ग में सब पण्डितों ने कहा कि–स्वामी जी ने बड़ा हठ किया क्योंकि यह केवल सूत्र में लगता है, सर्वत्र नहीं लगता । चूंकि हम स्वामी जी के हितचिन्तक थे इसलिये प्रातःकाल हम दोनों स्वामी जी के पास गये । वह एकादशी का दिन था । हमने स्वामी जी से अलग जाकर कहा कि महाराज ! अब यहां तक ही रहने दो । उन्होंने कहा कि क्यों ? हमने कहा कि–रात को सब पण्डित कहते थे कि ''समर्थः पदविधिः।'' यह सूत्र केवल सूत्र में ही लगता है, सर्वत्र नहीं । अभी न हमारी हार है और न उनकी । यदि बात बनी रहे तो अच्छा है। तब स्वामी जी ने क्रोध करके कहा कि गोवध का पाप तुझे है यदि उसे न लावे और गोवध का पाप उसे है यदि वह न आवे । तब हमारा मुंह बिगड़ गया और हमने जान लिया कि **स्वामी जी अपनी खोज तथा सत्य पर बड़े दृढ़ हैं** अतः हम चले आये ।

उस दूसरी रात के लिये दरियों का प्रबन्ध हो गया था परन्तु स्वामी जी चटाई पर ही बैठे रहे । आठ बजे रात के सब एकत्रित हुए–रात चांदनी थी । कुशल क्षेम पूछकर बैठ गये । सब के सामने स्वामी जी ने कहा कि–भाई कल हमारा तुम्हारा किस बात पर शास्त्रार्थ था । क्या इसी बात पर था या नहीं कि यदि केवल सूत्र पर लगे तो हमारी पराजय और यदि सर्वत्र लगे तो तेरी पराजय । वह मौन रहा परन्तु पीताम्बरदास ने कहा कि हां महाराज! कल यही बात निश्चित हुई थी जिसे सब पण्डितों ने स्वीकार किया । इस रात शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले यह ज्ञात हुआ कि **कुछ लोगों का विचार कोलाहल करने का है इसलिये सब को सुनाकर कह दिया गया** कि जिस किसी को स्वामी जी से बात करने की इच्छा हो वह अकेला-अकेला करे । यदि कोई बीच में बोलेगा तो उठा दिया जायेगा । पण्डितों के अतिरिक्त जो और लोग थे उनको कहा गया कि आप लोग यहां से उठकर नीचे चबूतरे पर सुनें । इस पर गौरीशङ्कर कशमीरी ब्राह्मण क्रोधित होकर अपने घर को चला गया और उसी दिन से स्वामी जी के विरुद्ध हो गया ।

शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले स्वामी जी ने हलधर से कहा कि–हलधर तू अभी नवीन पढ़कर आया है और गृहस्थी है । तू अब यदि समझ ले कि मेरी हार हो गई तो कुछ हानि नहीं परन्तु तुम्हारी हार होने में तेरी हानि है । हलधर ने इस बात की कुछ परवाह न की और उसी हठ पर अड़ा रहा । तब स्वामी जी ने पं० व्रजकिशोर को आवाज दी कि व्रजकिशोर !

महाभाष्य लाओ । दीपक भी पास मंगा लिया । **महाभाष्य खोलकर इस सूत्र को सब के सामने सर्वत्र लगा दिया ।** जिस पर हलधर बिल्कुल मौन हो गया । पण्डित लोग और बातें करने लगे स्वामी जी ने कहा कि नहीं जिस बात पर हमारा शास्त्रार्थ हुआ है पहले उसका निर्णय कर दो कि किसकी हार हुई । तब सब चुप हो गये । ला० जगन्नाथप्रसाद जी ने कहा कि जो बात हो वह सच-सच कह दो तब सब ने स्वीकार किया कि कल यही ठहरी थी कि–**"समर्थः पदविधिः।"–यह सूत्र सर्वत्र लगता है या एक स्थान पर ।** जो बात कल हलधर ने कही थी वह अशुद्ध सिद्ध हुई । इतना सुनकर हलधर निश्चेष्ट सा हो गया और दुःख से गिरने लगा । उसके साथियों ने उसे संभाल लिया । उस रात को पहली रात से बहुत अधिक मनुष्य थे । अन्ततः हलधर को पराजित होने के पश्चात् लोग उठा ले गये । शेष पण्डित भी चले गये । केवल पण्डित पीताम्बरदास, उमादत्त, रामसहाय शास्त्री, मुन्नीलाल तथा ला० जगन्नाथप्रसाद जी बैठे रहे । रात एकादशी की थी । कुछ पुण्योपार्जन के विचार से और कुछ सत्योपदेश के लिये वहां रात भर जागते रहे । आज भी एक बजे तक शास्त्रार्थ होता रहा ।

फिर उसी रात को स्वामी जी का पण्डित उमादत्त जी से मित्रतापूर्वक वार्तालाप हुआ । बीच में पण्डित रामसहाय जी बोलने लगे । स्वामी जी ने उन्हें कहा कि आप बूढ़े हैं, शास्त्रार्थ में अपमान हो जाता है, आप सुनते रहें जिस पर वह बुद्धिमानी से फिर मौन रहे । प्रातःकाल सब गङ्गास्नान करके अपने घर को चले गये और उनके चले जाने के पश्चात् विना किसी को सूचना दिये स्वामी जी भी कानपुर की ओर चले गये ।

(लेखराम पृ० ५८३-५८६)

ईश्वरीय-ज्ञान

(मौलवी से कानपुर में प्रश्नोत्तर–सन् १८६९)

रायबहादुर दरगाही लाल वकील तथा आनरेरी मैजिस्ट्रेट कानपुर ने वर्णन किया कि जब स्वामी जी कानपुर में हमारे घाट पर ठहरे हुए थे, तो एक मौलवी आये । स्वामी जी ने उससे कुरान के विषय में कहा कि **कुरान तुम्हारा ईश्वरीय वचन नहीं हो सकता** इसलिये कि उसकी बिस्मिल्लाह अशुद्ध है । मौलवी ने अर्थ किये । स्वामी जी ने कहा कि यदि ईश्वर ने बनाया है तो फिर वह किस ईश्वर के नाम से आरम्भ करता है ? इस पर वह मौन होकर चले गये । (लेखराम पृष्ठ १३५-१३६)

मूर्तिपूजा

(पं० हलधर ओझा शास्त्री से कानपुर में शास्त्रार्थ—३१ जौलाई, १८६९)

कानपुर नगर में भैरव घाट के नीचे फर्श पर शास्त्रार्थ हुआ था। मुख्य-न्यायाधीश और डब्लू थेन साहब बहादुर ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट कानपुर तथा नगर कोतवाल आदि सब सम्मानित व्यक्ति वहां उपस्थित थे । उपस्थिति २०-२५ हजार मनुष्यों की थी । दो बजे से मनुष्य एकत्रित होने आरम्भ हुए। साढ़े चार बजे से शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया । शास्त्रार्थ का विषय ''मूर्तिपूजन'' था । स्वामी जी के सम्मुख लक्ष्मण शास्त्री भटूर वाले और हलधर ओझा दोनों उपस्थित थे । शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ । मिस्टर थेन साहब बहादुर जो अच्छे संस्कृतज्ञ थे, मध्यस्थ नियत हुए । सूर्य्यास्त होने के पश्चात् शास्त्रार्थ समाप्त हुआ ।

स्वामी जी नीचे भैरव घाट पर उतरे हुए थे । प्रथम सब लोगों ने यह चाहा कि वह घाट के ऊपर आकर शास्त्रार्थ करें और कोतवाल आदि अधिकारियों ने भी स्वामी जी से कहा कि आप ऊपर आ जायें । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मैंने किसी को नहीं बुलाया, जिसका जी चाहे वह यहां आ जाये और जिसका जी चाहे वह न आवे । इस पर सब नीचे चले आये ।

स्वर्गीय बाबू श्यामाचरण बंगाली मुख्य प्रधान, पण्डित काशीनारायण न्यायाधीश (जो इस समय बनारस में रहते हैं) तथा सुल्तान अहमद कोतवाल आदि सब सम्मानित व्यक्ति उपस्थित थे । अन्त में सब के सामने मिस्टर थेन साहब मध्यस्थ ने निर्णय दिया था कि स्वामी जी जीते हैं और उनकी विद्वत्ता की बहुत प्रशंसा की थी । पण्डित शिवसहाय जी ने वर्णन किया कि उस दिन मैं उपस्थित था । शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ । हलधर ओझा अपने साथ लक्ष्मण शास्त्री को भी लाया था । प्रथम प्रश्न हलधर ओझा ने यह किया कि आपने जो विज्ञापन दिया है जिसका विषय ''अष्ट गप्पं'' और ''अष्ट सत्य'' है—उस में व्याकरण की अशुद्धि है ।

स्वामी जी—ये बातें पाठशाला के विद्यार्थियों की हैं । ऐसे शास्त्रार्थ सदा पाठशालाओं में हुआ करते हैं । आज वह विषय छेड़ो जिसके लिए हजारों मनुष्य एकत्रित हैं । व्याकरण के बारे में कल मेरे पास आना—मैं समझा दूंगा ।

तब ओझा ने प्रश्न किया कि आप महाभारत को मानते हैं ?

स्वामी जी ने कहा कि हम मानते हैं ।

ओझा ने एक श्लोक भारत का पढ़ा जिसका अभिप्राय यह था कि एक भील ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर और सामने रखकर धनुष-विद्या सीखी।

स्वामी जी—मैं तो यह कहता हूं कि कहीं प्रतिमापूजा की आज्ञा बतलाओ! इस में तो आज्ञा नहीं पाई जाती है प्रत्युत लिखा है कि एक भील ने ऐसा किया जैसा कि सदा अज्ञानी लोग आज तक किया करते हैं। वह कोई ऋषि, मुनि न था, न उसको किसी ने ऐसी शिक्षा दी थी और यदि यह बात कहो कि उसको ऐसा करने से धनुष-विद्या आ गई तो उसका कारण द्रोणाचार्य की मूर्ति न थी, प्रत्युत अभ्यास का परिणाम था जैसा कि अंग्रेज लोग चांदमारी के द्वारा सीखते हैं परन्तु वे कोई मूर्ति नहीं धरते। फिर उस पर ओझा जी चुप रहे और दूसरा यह प्रश्न किया—

ओझा जी—वेद में प्रतिमा की आज्ञा नहीं है तो निषेध कहां है ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जैसे किसी स्वामी ने सेवक को आज्ञा दी कि तू पश्चिम को चला जा, इससे स्वयं ही तीन दिशाओं का निषेध हो गया। अब उसका यह पूछना कि उत्तर दक्षिण को न जाऊं व्यर्थ है। इसलिये जो वेद ने उचित समझा, कह दिया और नहीं लिखा वही निषेध है।

इसके पश्चात् थेन साहब को सन्देह हुआ कि ये स्वामी जी कुछ पढ़े हैं या केवल मुख से ही शास्त्रार्थ करते हैं। इसकी परीक्षा के लिये एक पत्रा जो हलधर लाये थे वह परीक्षार्थ स्वामी जी के सामने रख दिया। स्वामी जी ने पढ़कर सुना दिया। इस पर साहब बहादुर ने स्वामी जी से प्रश्न किया।

थेन साहब—आप किस को मानते हैं ?

स्वामी जी—एक ईश्वर को।

तत्पश्चात् थेन साहब ने छड़ी और टोपी उठाई और कहा कि ठीक बात है, अच्छा प्रणाम। उनके उठते ही सब उठ खड़े हुए और कोलाहल मचाते हुए चले कि बोलो श्री गङ्गा जी की जय। यह सारा कार्य स्वर्गीय प्रागनारायण तिवारी का था और रुपया या आठ आने के पैसे भी ओझा जी के सिर से लुटाए और शोर मचाया कि ओझा जीते और स्वामी जी हारे और उनको गाड़ी में चढ़ाकर ले गये। (लेखराम पृष्ठ ५८६-५९६)

कानपुर शास्त्रार्थ के विषय में मध्यस्थ मिस्टर थेन की सम्मति

Gentlemen, At the time in question I decided in favour of Daya Nand Saraswati Fakir, and I believe his arguments are in accordance with the Vedas I think he won thy day.

If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days.

Cawnpore — Yours obediently
(Sd.) W. Thaina

अनुवाद

सज्जनो, शास्त्रार्थ के समय मैंने दयानन्द सरस्वती फकीर (साधु) के पक्ष में निर्णय दिया था और मैं विश्वास करता हूं कि उनकी युक्तियां वेदों के अनुकूल थीं। मेरा विचार है कि उस दिन उनकी विजय हुई। यदि आप चाहेंगे तो मैं अपने इस निर्णय के कारण कुछ दिनों में दे दूंगा।

कानपुर — (हस्ताक्षर) डब्ल्यू० थेन

नवीन वेदान्त

(साधु मायाराम परमहंस, बनारस वासी से प्रश्नोत्तर–सन् १८६९)

ब्रह्म और जीव की एकता पर प्रश्न

साधु मायाराम जी परमहंस उदासी ने वर्णन किया कि जब स्वामी जी का काशी में शास्त्रार्थ हुआ तब हम कलकत्ता में थे। हमने एक साधु के मुख से सुना था कि बनारस में दयानन्द के साथ विशुद्धानन्दादि ने बुद्धिपूर्वक शास्त्रार्थ नहीं किया प्रत्युत धूर्तता की, जो बुरी बात है। एक बार हम एक ब्रह्मचारी के साथ आनन्दबाग में जहां दयानन्द जी उतरे हुए थे–विचरते हुए गये। हमारा विचार तो नहीं था परन्तु ब्रह्मचारी ले गया। उनके पास पहुंचकर ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया कि शारीरक पर शङ्कर और रामानुजादि लोगों के भाष्य हैं–एक द्वैत और दूसरा अद्वैत बताता है, हम किस को मानें।

स्वामी दयानन्द ने कहा कि–**दोनों का ठीक नहीं, प्रत्युत भेद अभेद दोनों हैं।** ब्रह्म सर्वव्यापक है इसलिए अभेद है। ब्रह्म जीव नहीं इसलिए भेद है। हमने आक्षेप किया कि फिर शङ्कर मतवाले जो अभेद मानते हैं अर्थात् जीव-ब्रह्म की एकता, उनको क्या फल प्राप्त होगा?

उत्तर दिया कि उनका निश्चय मिथ्या है, मिथ्या फल होगा।

हम कोई और प्रश्न करना चाहते थे परन्तु ब्रह्मचारी ने चलने का निश्चय किया। स्वामी जी संस्कृत के बड़े विद्वान् थे। (लेखराम पृ० १५३)

मूर्तिपूजा

काशी–शास्त्रार्थ

कार्तिक सुदि १२, संवत् १९२६

काशी–शास्त्रार्थ (वैदिक यन्त्रालय काशी में मुद्रित, संवत् १९३७ के अनुसार)

भूमिका

मैं पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत् १९२६, मि० कार्तिक सुदि १२, मंगलवार के दिन ''स्वामी दयानन्द सरस्वती जी'' का काशीस्थ 'स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती' तथा 'बालशास्त्री' आदि पण्डितों के साथ हुआ था ।) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूं ।

इस संवाद में स्वामी जी का पक्ष पाषाणमूर्तिपूजादिखण्डन–विषय और काशीवासी पण्डित लोगों का मण्डन का विषय था । उनको वेद–प्रमाण से मण्डन करना उचित था सो कुछ भी न कर सके । क्योंकि जो कोई भी पाषाणादि मूर्तिपूजादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये विना वेदों को छोड़कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं वा नहीं, इस प्रकरणान्तर में क्यों जा गिरते ? क्योंकि जो पूर्व प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है वही पराजय का स्थान है । ऐसे हुए पश्चात् भी जिस–जिस ग्रन्थान्तर में से जो–जो पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों को सिद्ध करने लगे थे सो भी सिद्ध न कर सके । पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा था वह भी न हो सका । पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषणवाची इस में स्वामी जी का पक्ष विशेषणवाची और काशीस्थ पण्डितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था, इसमें बहुत इधर उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामी जी ने विशेषणवाची, पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पण्डित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सके । सो आप लोग देखिए कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक–ठीक विदित होता है ।

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य दो पत्रे निकाल के सब के सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है उस पर स्वामी जी ने उसको विशेषणवाची सिद्ध कर दिया परन्तु काशी–निवासी पण्डितों से कुछ भी न बन पड़ा । एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्होंने की जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी कि ये लोग सभा में काशीराज

महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सम्मुख असभ्यता का वचन बोले । क्या स्वामी जी के कहने पर भी काशीराज आदि चुप होके बैठे रहें और बुरे वचन बोलने वालों को न रोकें ? क्या स्वामी जी का पांच मिनट दो पत्रों के देखने में लगाके प्रत्युत्तर देना विद्वानों की बात नहीं थी ? और क्या सब से बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ताली शब्द लड़कों के सदृश किया और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में कोई भी उनको रोकने वाला न हुआ? और क्या एकदम उठके चुप होके बगीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र झूठा हल्ला करना धार्मिक और विद्वानों के आचरण से विरुद्ध नहीं था ?

यह तो हुआ सो हुआ परन्तु एक महा खोटा काम उन्होंने और किया जो सभा के व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है कि एक पुस्तक स्वामी जी की झूठी निन्दा के लिए काशीराज के छापेखाने में छपाकर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उन की बदनामी करें और करावें परन्तु इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामी जी उनके कर्मों पर ध्यान न देकर वा उपेक्षा करके पुनरपि उनको वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं । और उक्त २६ के संवत् से लेके अब संवत् १९३७ तक छठी वार काशी जी में आके सदा विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादि मूर्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिये पाई हो तो सभ्यतापूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो वा सुनो । इस पर भी कुछ नहीं करते । यह भी कितने निश्चय करने की बात है परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पण्डित लोग पाते अथवा कहीं वेदशास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सम्मुख होके अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामी जी के सामने न होते ?

इससे यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिए कि जो इस विषय में स्वामी जी की बात है वही ठीक है । और देखो ! स्वामी जी की यह बात संवत् १९२६ के विज्ञापन से भी कि जिसमें सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे; सत्य ठहरती है ।

उस पर पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था । उस पर स्वामी जी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उसके उत्तर में पण्डित भीमसेन शर्मा ने छपवाकर कि जिसमें स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी और बालशास्त्री जी से शास्त्रार्थ होने की सूचना थी, प्रसिद्ध किया था, उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ।

क्या अब भी किसी को शङ्का रह सकती है जो-जो स्वामी जी कहते हैं वह सत्य है वा नहीं ? किन्तु निश्चय करके जानना चाहिए कि स्वामी जी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही हैं ।

और जहां छान्दोग्य उपनिषद् आदि को स्वामी जी ने वेद नाम से कहा है वहां वहां उन पण्डितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामी जी का मत नहीं । स्वामी जी मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मानते हैं क्योंकि जो मन्त्रसंहिता हैं वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त, सत्यार्थयुक्त हैं और ब्राह्मणग्रन्थ जीवोक्त अर्थात् ऋषि, मुनि आदि विद्वानों के कहे हैं वे भी प्रमाण तो हैं परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण हो भी सकते हैं । मन्त्रसंहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण कभी नहीं हो सकती क्योंकि वे तो स्वतःप्रमाण हैं ।   (प्रबन्धकर्त्ता—वै०य० काशी)

अथ काशीस्थ-शास्त्रार्थः

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु । एको दिगम्बरस्सत्य-शास्त्रार्थविद्दयानन्दसरस्वती स्वामी गङ्गातटे विहरति । स ऋग्वेदादिसत्य-शास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति—"वेदेषु पाषाणादिमूर्तिपूजनविधानं शैवशाक्त-गाणपतवैष्णवादिसम्प्रदाया रुद्राक्षत्रिपुण्ड्रादिधारणं च नास्त्येव; तस्मादेतत् सर्वं मिथ्यैवास्ति; नाचरणीयं कदाचित् । कुतः ? एतत् वेदविरुद्धाप्रसिद्धाचरणे महत्पापं भवतीतीयं वेदादिषु मर्यादा लिखितास्ति ।"

एवं हरद्वारमारभ्य गङ्गातटे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचिद् दयानन्दसरस्वती स्वामी खण्डनं कुर्वन् सन् काशीमागत्य दुर्गाकुण्डसमीप आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः । बहुभिः पण्डितैर्वेदादिपुस्तकानां मध्ये विचारः कृतः । परन्तु क्वापि पाषाणादिमूर्तिपूजनादिविधानं न लब्धम् ।

प्रायेण बहूनां पाषाणपूजनादिष्वाग्रहो महानस्ति, अतः काशीराजमहाराजेन बहून् पण्डितानाहूय पृष्टं किं कर्त्तव्यमिति ? तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतो येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थं कृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं यथा भवेत् तथा कर्त्तव्यमेवेति ।

पुनः कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्विंशतितमे संवत्सरे (१९२६) मङ्गलवासरे महाराजः काशीनरेशो बहुभिः पण्डितैः सह शास्त्रार्थकरणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिना निवासः कृतः, तत्रागतः।

तदा दयानन्दस्वामिना महाराजं प्रत्युक्तम्—वेदानां पुस्तकान्यानीतानि न वा ?

तदा महाराजेनोक्तम्—वेदाः पण्डितानां कण्ठस्थाः सन्ति किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति ?

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—पुस्तकैर्विना पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद् विचारस्तु न भवति ।

अस्तु तावत् पुस्तकानि नानीतानि ।

तदा पण्डितरघुनाथप्रसादकोटपालेन नियमः कृतो दयानन्दस्वामिना सहैकैकः पण्डितो वदतु न तु युगपदिति ।

तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः । तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तम्—युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति ?

तदा ताराचरणेनोक्तम्—सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषु प्रामाण्यस्वीकारोऽस्तीति ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदे पाषाणादिमूर्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत्तद्दर्शनीयम् । नास्ति चेद्वद नास्तीति ।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति परन्तु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात्तं प्रति किं वदेत् ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योऽस्ति तस्मात् स एवादौ कर्त्तव्यः । कुतो वेदोक्तकर्मैव मुख्यमस्त्यतः। मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि सन्ति तस्मात्तेषामपि, प्रामाण्यमस्ति न तु वेदविरुद्धानां वेदाप्रसिद्धानां चेति ।

तदा ताराचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम्—मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति ।

स्वामिनोक्तम्—'यद् वै किञ्चन मनुरवदत्तद् भेषजं भेषजताया' इति सामवेदे* ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—रचनानुपपत्तेश्च अनुमानमित्यस्य व्याससूत्रस्य किं मूलमस्तीति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्य प्रकरणस्योपरि विचारो न कर्त्तव्य इति ।

पुनर्विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वदैव त्वं यदि जानासीति ।

तदा दयानन्दस्वामिना प्रकरणान्तरे गमनम्भविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम्।

कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कण्ठस्थं नास्ति चेच्छास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतः काशीनगरे चेति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवतः सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ?

*** इदं पण्डितानामेव मतमङ्गीकृत्योक्तमतो नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।**

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मम सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—धर्मस्य किं स्वरूपमिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदन्तु तव संस्कृतं, नास्त्यस्य प्रामाण्यं, कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"चोदनालक्षणार्थो धर्मः।" इति जैमिनि-सूत्रमिति ।*

तदा स्वामिनोक्तम्—चोदना का, चोदना नाम प्रेरणा तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्तु तावद्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता किं च धर्मस्य कति लक्षणानि भवन्ति वदतु भवानिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—एकमेव लक्षणं धर्मस्येति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—किं च तदिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

तदा स्वामिनोक्तम्—धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति भवता कथमुक्तमेक-मेवेति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कानि तानि लक्षणानीति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

इति मनुस्मृतेः श्लोकोऽस्ति ।**

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रं पठितवानिति ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—त्वमधर्म्मस्य लक्षणानि वदेति ।

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तदा बहुभिर्युगपत् पृष्टम्—प्रतिमा शब्दो वेदे नास्ति किमिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति ।

तदा तैरुक्तम्—क्वास्तीति ?

*** इदन्तु सूत्रमस्ति, नेयं श्रुतिर्वा स्मृतिः, सर्वं मम कण्ठस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाहानेस्तस्य कुतो न पराजय इति वेद्यम् ।**

**** अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानेर्निग्रहस्थानं जातमिति बोध्यम् ।**

तदा स्वामिनोक्तम्—सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति ।

तदा तैरुक्तम्—किं च तद्वचनमिति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्तीत्यादीनि।

तदा तैरुक्तम्—प्रतिमाशब्दस्तु वेदे* वर्त्तते भवान् कथं खण्डनं करोति?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्देनैव पाषाणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति। प्रतिमाशब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति ।

तदा तैरुक्तम्—यस्मिन् प्रकरणेऽयं मन्त्रोऽस्ति तस्य कोऽर्थ इति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अथातोद्भुतशान्तिं व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य त्रातार-मिन्द्रमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमन्त्रा लिखिताः । एतेषां मध्यात् प्रतिमन्त्रेण त्रित्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततो व्याहृतिभिः पञ्च पञ्चाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम् । अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशान्तिर्विहिता । यस्मिन्मन्त्रे प्रतिमाशब्दोऽस्ति स मन्त्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपितु ब्रह्मलोकविषय एव । तद्यथा—''स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽऽथेति'' प्राच्या दिशोद्भुतदर्शनशान्तिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः पश्चिमाया दिशः शान्तिं कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शान्तिरुक्ता। ततो भूमेश्चेति मर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यान्तरिक्षस्य शान्तिरुक्ता । ततो दिवश्च शान्तिविधानमुक्तम् । ततः परस्य स्वर्गस्य च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति।

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—यस्यां यस्यां दिशि या या देवता तस्यास्तस्या देवतायाः शान्तिकरणेन दृष्टिविघ्नोपशान्तिर्भवतीति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदं तु सत्यं परन्तु विघ्नदर्शयिता कोऽस्तीति ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—इन्द्रियाणि दर्शयितृणीति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—इन्द्रियाणि तु द्रष्टॄणि भवन्ति न तु दर्शयितॄणि, परन्तु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र स शब्दवाच्यः कोऽस्तीति ?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तम्—अन्तरिक्षादिगमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवता तत्प्रकरणं दृष्टं किम् ? दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मन्त्रस्यार्थं वदेति ।

तदा शिवसहायेन मौनं कृतम् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदाः कस्माज्जाता इति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वेदा ईश्वराज्जाता इति ।

***अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रन्थे वेदबुद्धित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम् ।**

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कस्मादीश्वराज्जाताः ? किं न्यायशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदान्तशास्त्रोक्ताद्वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—ईश्वरा बहवो भवन्ति किमिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—ईश्वरस्त्वेक एव परन्तु वेदा कीदृग्लक्षणा-दीश्वराज्जाता इति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद्वेदा जाता इति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कोऽस्ति सम्बन्धः ? किं प्रतिपाद्यप्रतिपादक-भावो वा जन्यजनकभावो वा समवायसम्बन्धो वा स्वस्वामिभाव इति तादात्म्यभावो वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—कार्यकारणभावः सम्बन्धश्चेति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मनो ब्रह्मेत्युपासीत, आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति।

तदा स्वामिनोक्तम्—यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादिवचनं वेदेषु* दृश्यन्ते तथा पाषाणादिब्रह्मेत्युपासीतेति वचनं क्वापि वेदेषु न दृश्यते। पुनः कथं ग्राह्यम्भवेदिति ?

तदा माधवाचार्येणोक्तम्—'उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च ।' इति मन्त्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वापीकूपतडागारामाणामेव नान्यस्येति ।

तदा माधवाचार्येणोक्तम्—पाषाणादिमूर्त्तिपूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति?

तदा स्वामिनोक्तम्—पूर्तशब्दस्तु पूर्त्तिवाची वर्त्तते तस्मान्न कदाचित्पाषाणादि-मूर्तिपूजनग्रहणं सम्भवति । यदि शङ्कास्ति तर्हि निरुक्तमस्य मन्त्रस्य पश्य ब्राह्मणं चेति ।

ततो माधवाचार्येणोक्तम्—पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते परन्तु पुराणशब्देन कदाचिद् ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थानां ग्रहणं न भवति । कुतः ? पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—''एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानि'' इत्यत्र बृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्य सर्वस्य प्रामाण्यं वर्त्तते न वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्त्येव प्रामाण्यमिति ।

---

* **इदमपि पण्डितमतानुसारेणोक्तम् । नेदं स्वामिनो मतमिति बोध्यम् ।**

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्त्तव्य इति ।

तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य* द्वे पत्रे निस्सारिते । अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्त्वेति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—कीदृशमस्ति वचनं पठ्यतामिति ।

तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति—"ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति" ।

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणानि ब्राह्मणानि नाम सनातनानीति विशेषणमिति।

तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम्—ब्राह्मणानि नवीनानि भवन्ति किमिति?

तदा स्वामिनोक्तम्—नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्यचिच्छङ्कापि माभूदिति विशेषणार्थः ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासशब्दव्यवधानेन कथं विशेषणं भवेदिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अयं नियमोऽस्ति किं व्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्सन्निधानादेव भवेदिति ?

'अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणो न' इति दूरस्थस्य देहिनो विशेषणानि गीतायां कथम्भवन्ति ? व्याकरणेऽपि नियमो नास्ति समीपस्थमेव विशेषणं भवेन्न दूरस्थमिति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासस्यात्र पुराणशब्दो विशेषणं नास्ति तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणं तद्यथा—'इतिहासः पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः' इत्युक्तम् ।

तदा वामनाचार्यादिभिरयं पाठ एव वेदे नास्तीत्युक्तम् ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—यदि वेदेष्वयम्पाठो** न भवेच्चेन्मम पराजयो यद्ययम्पाठो वेदे यथावद् भवेत्तदा भवताम्पराजयश्चेयम्प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तन्तदा सर्वेर्मौनं कृतमिति ।

*** इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यमेते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्याभवतामिति च ।**

**** इदमपि पण्डितानां मतं नैव स्वामिन इति वेद्यम् ।**

तदा स्वामिनोक्तम्—इदानीं व्याकरणे कल्मसंज्ञा क्वापि लिखिता न वेति ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—एकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृतः इति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति ?

बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति ।

तदा माधवाचार्येण द्वे पत्रे वेदस्य* निस्सार्य्य सर्वेषां पण्डितानाम्मध्ये प्रक्षिप्ते । अत्र यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयादिति लिखितमत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तम् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे दत्ते ।

तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्चक्षणमात्रं विचारं कृतवान् । तत्रेदं वचनं वर्तते—"दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्यावेदः, इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्य्यादिति ।"

अस्यायमर्थः—पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराणविद्यैव वेदः पुराणविद्यावेद इति नाम ब्रह्मविद्यैव ग्राह्या । कुतः ? एतदन्यत्रग्वेदादीनां श्रवणमुक्तं न चोपनिषदाम् । तस्मादुपनिषदामेव ग्रहणं नान्येषाम् । पुराणविद्यावेदोऽपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति नान्ये नवीना ब्रह्मवैवर्तादयो ग्रन्थाश्चेति । यदि ह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्तादयोऽष्टादश ग्रन्थाः पुराणानि चेति, क्वाप्येवं वेदेषु** पाठो नास्त्येव तस्मात्कदाचित्तेषां ग्रहणं न भवदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम विलम्बो भवतीदानीं गच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोऽभूत् । ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वा गताः । एवं च तेषां कोलाहलमात्रेण सर्वेषां निश्चयो भविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जात इति ।

अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्त्तव्यः कस्य जयो जातः कस्य पराजयश्चेति।

दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ताः पूर्वपक्षास्सन्ति । तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निःसृतं पुनस्तस्य पराजयः कथं भवेत् ? पाषाणादिमूर्तिपूजनरचनादिविधायकं वेदवाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तम् ।

येषां वेदविरुद्धेषु च पाषाणादिमूर्तिपूजनादिषु शैवशाक्तवैष्णवादिसम्प्रदायादिषु रुद्राक्षतुलसीकाष्ठमालाधारणादिषु त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरचनादिषु नवीनेषु

* **एते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्य भवतामिति ।**

** **इदमपि तन्मतमेवास्ति न स्वामिन इति ।**

ब्रह्मवैवर्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोऽस्ति तेषामेव पराजयो जात इति तथ्यमेवेति।।

भाषार्थ

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गङ्गा के तीर विचरते रहते हैं जो सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के वेत्ता हैं, उन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है । सो ऐसा सत्यशास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि **''पाषाणादि मूर्तिपूजन, शैव, शाक्त, गाणपत और वैष्णव आदि सम्प्रदायों और रुद्राक्ष, तुलसी माला, त्रिपुण्ड्रादि धारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है।** इससे ये सब मिथ्या ही हैं । कदापि इनका आचरण न करना चाहिये । क्योंकि वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है ।''

इस हेतु से उक्त स्वामी जी हरिद्वार से लेकर सर्वत्र इसका खण्डन करते हुए काशी में आके दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग में स्थित हुए। उनके आने की धूम मची । बहुत से पण्डितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरम्भ किया । परन्तु पाषाणादि मूर्तिपूजा का विधान कहीं भी किसी को न मिला ।

बहुधा करके इसके पूजन में आग्रह बहुतों को है । इससे काशीराज महाराज ने बहुत से पण्डितों को बुलाकर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिये ? तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी प्रकार से दयानन्द सरस्वती स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके बहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापना हो सके करना चाहिए ।

निदान कार्तिक सुदि १२, सं० १९२६, मङ्गलवार को महाराज काशीनरेश बहुत से पण्डितों को साथ लेकर जब स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आए तब दयानन्द स्वामी जी ने महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं ?

महाराज ने कहा कि–वेद सम्पूर्ण पण्डितों को कण्ठस्थ हैं । पुस्तकों का क्या प्रयोजन है ?

तब दयानन्द सरस्वती जी ने कहा कि–पुस्तकों के विना पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक-ठीक नहीं हो सकता । भला पुस्तक नहीं लाए तो नहीं सही परन्तु किस विषय पर विचार होगा ?

पण्डितों ने कहा कि–तुम मूर्तिपूजा का खण्डन करते हो । हम लोग उसका मण्डन करेंगे ।

पुनः स्वामी जी ने कहा कि–जो कोई आप लोगों में मुख्य हो वही एक पण्डित मुझ से संवाद करे ।

पण्डित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने यह नियम किया कि स्वामी जी से एक-एक पण्डित विचार करे ।

पुनः सब से पहले ताराचरण नैयायिक स्वामी जी से विचार हेतु सम्मुख प्रवृत्त हुए ।

स्वामी जी ने उनसे पूछा कि–आप वेदों का प्रमाण मानते हैं वा नहीं?

उन्होंने उत्तर दिया कि–जो वर्णाश्रम में स्थित हैं उन सब को वेदों का प्रमाण ही है ।*

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–कहीं वेदों में पाषाणादि मूर्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं ? यदि हो तो दिखलाइए और जो नहीं तो कहिये कि नहीं है ।

पण्डित ताराचरण ने कहा कि–वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों ही का प्रमाण मिलता है औरों का नहीं उसके प्रति क्या कहना चाहिए?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–औरों का विचार पीछे होगा । वेदों का विचार मुख्य है । इस निमित्त से इस का विचार पहले ही करना चाहिए। क्योंकि वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य है । और मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक हैं इस से इनका भी प्रमाण है । क्योंकि जो-जो वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं उनका प्रमाण नहीं होता ।

पण्डित ताराचरण ने कहा कि–मनुस्मृति का वेदों में कहां मूल है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–'जो जो मनु जी ने कहा है सो-सो औषधों का भी औषध है' ऐसा सामवेद के ब्राह्मण में कहा है ।**

विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि–'रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमानप्रतिपाद्य प्रधान, जगत् का कारण नहीं' व्यास जी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–यह प्रकरण से भिन्न बात है । इस पर विचार करना न चाहिए ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो ।

*** इससे यह समझना कि स्वामी जी भी वर्णाश्रमस्थ हैं वेदों को मानते हैं।**

**** यह कहना उन पण्डितों के मत के अनुसार ठीक है परन्तु स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मन्त्रभाग ही को वेद मानते हैं ।**

इस पर स्वामी जी ने यह समझकर कि प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी; कहा– जो कदाचित् किसी को कण्ठ न हो तो पुस्तक देखकर कहा जा सकता है ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–जो कण्ठस्थ नहीं है तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–आप को सब कण्ठाग्र है ?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–हां हम को कण्ठस्थ है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–कहिये धर्म्म का क्या स्वरूप है?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–जो वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है वही धर्म कहलाता है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–यह आप का संस्कृत है । इसका क्या प्रमाण है, श्रुति वा स्मृति कहिये ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–जो चोदनालक्षण अर्थ है सो धर्म कहलाता है । यह जैमिनि का सूत्र है ।

स्वामी जी ने कहा कि–यह सूत्र है । यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते ? और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिए जहां प्रेरणा होती है ।

जब इसमें विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा, तब स्वामी जी ने कहा कि–अच्छा आपने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं कहिये ?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–धर्म का एक ही लक्षण है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–वह कैसा है ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा ।

तब स्वामी जी ने कहा–धर्म्म के तो दश लक्षण हैं । आप एक ही क्यों कहते हैं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–वे कौन लक्षण हैं ?

इस पर स्वामी जी ने मनुस्मृति का वचन कहा कि–धैर्य्य १, क्षमा २, दम ३, चोरी का त्याग ४, शौच ५, इन्द्रियों का निग्रह ६, बुद्धि ७, विद्या का बढ़ाना ८, सत्य ९, और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १०। ये दश धर्म के लक्षण हैं । फिर आप कैसे एक लक्षण कहते हैं ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि–हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–आप अधर्म का लक्षण कहिये ?

तब बालशास्त्री जी ने कुछ भी उत्तर न दिया ।

फिर बहुत से पण्डितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि—वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—प्रतिमा शब्द तो है ।

फिर उन लोगों ने कहा कि—कहां पर है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—सामवेद के ब्राह्मण में है ।

फिर उन लोगों ने कहा कि—वह कौन सा वचन है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह है—"देवता के स्थान कम्पायमान होते और प्रतिमा हँसती है इत्यादि* ।

फिर उन लोगों ने कहा कि—प्रतिमा शब्द तो वेदों में भी है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—प्रतिमा शब्द से पाषाणादि मूर्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है । इसलिए प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिए इसका क्या अर्थ है ?

तब उन लोगों ने कहा कि—जिस प्रकरण में यह मन्त्र है उस प्रकरण का क्या अर्थ है ?

इस पर स्वामी ने कहा कि—यह अर्थ है—अब अद्‌भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिए, इन्द्र [त्रातारमिन्द्र] इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं। इन में से प्रति मन्त्र करके तीन हजार आहुति करनी चाहियें । इस के अनन्तर व्याहृति करके पांच-पांच आहुति करनी चाहियें । ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है । इस क्रम करके अद्‌भुत शान्ति का विधान किया है । जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है सो मन्त्र मृत्युलोक विषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है । सो ऐसा है कि 'जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्वदिशा में वर्त्तमान होवे' इत्यादि मन्त्रों से अद्‌भुतदर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा, इसके अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके, इसके अनन्तर स्वर्गलोक फिर परमस्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है । इस पर सब चुप रहे ।

फिर बालशास्त्री ने कहा कि—जिस-जिस दिशा में जो-जो देवता है उस-उस की शान्ति करने से अद्‌भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है ।

*** यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहां भी यह प्रक्षिप्त है क्योंकि वेदों से विरुद्ध है ।**

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह तो सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि—इन्द्रियां दिखाने वाली हैं ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—इन्द्रियां तो देखने वाली हैं दिखाने वाली नहीं । परन्तु 'स प्राची दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र' इत्यादि मन्त्रों में 'स' शब्द का वाच्यार्थ क्या है ? तब बालशास्त्री ने कुछ न कहा ।

फिर पण्डित शिवसहाय जी ने कहा कि—अन्तरिक्ष आदि गमन, शान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ तो कहिये ?

तब शिवसहाय जी चुप हो रहे ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—वेद किससे उत्पन्न हुए हैं?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि **वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं ।**

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा—किस ईश्वर से ? क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से ? अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से ? इत्यादि ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—क्या ईश्वर बहुत से हैं ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—ईश्वर और वेदों में क्या सम्बन्ध है ? क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है ? इत्यादि ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—**कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है ।**

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य्य में ब्रह्मबुद्धि करके प्रतीक उपासना कही है वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिए ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—जैसे "मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदों* में देखने में आते हैं वैसे "पाषाणादि

*** यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है स्वामी जी का नहीं, क्योंकि स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते ।**

ब्रह्मेत्युपासीत'' इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता फिर क्योंकर इस का ग्रहण हो सकता है ?

तब माधवाचार्य ने कहा कि—''उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳ सृजेथामयञ्च'' इति । इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किसका ग्रहण है? ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—वापी, कूप, तडाग और आराम का ग्रहण है ।

माधवाचार्य ने कहा कि—इससे पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—पूर्त्त शब्द पूर्ति का वाचक है । इससे कदाचित् पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता यदि शङ्का हो तो इस मन्त्र का निरुक्त ब्राह्मण देखिए ।

तब माधवाचार्य ने कहा कि—पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—**पुराण शब्द तो बहुत सी जगह वेदों में है** परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता । क्योंकि **पुराणशब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है ।**

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—बृहदारण्यक उपनिषत् के इस मन्त्र में कि—''एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति'' यह सब जो पठित है इसका प्रमाण है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—हां प्रमाण है ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सब का प्रमाण आया ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—पुस्तक लाइए तब इसका विचार हो।

माधवाचार्य ने वेदों के दो पत्रे* निकाले और कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

*** यह भी उन्हीं का मत है स्वामी जी का नहीं, क्योंकि ये गृह्यसूत्र के पत्रे थे ।**

स्वामी जी ने कहा कि–कैसा वचन है ? पढ़िये ! ।

तब माधवाचार्य ने यह पढ़ा–'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति' ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं ।

तब बालशास्त्री जी आदि ने कहा कि–ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं परन्तु ऐसी शङ्का भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि–यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है क्योंकि 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।'' इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि–यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है । इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिए ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है। सुनिये–''इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः।'' इत्यादि में कहा है ।

तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि–वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है । इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि वेद* में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो। तब सब चुप हो रहे ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्मसंज्ञा करी है वा नहीं ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि–संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है । यदि जानते हो तो इसके उदाहरण पूर्वक समाधान कहो ?

तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा । माधवाचार्य ने दो

*** यह उन्हीं पण्डितों के मतानुसार कहा है किन्तु स्वामी जी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते ।**

पत्रे वेदों के* निकालकर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि– यहां 'यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने' ऐसा लिखा है । यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है ?

स्वामी जी ने कहा कि–पढ़ो इसमें किस प्रकार का पाठ है ? जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्द जी ने पत्रे उठा के स्वामी जी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो ।

स्वामी जी ने कहा कि–आप ही इसका पाठ कीजिए ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि–मैं ऐनक के विना पाठ नहीं कर सकता, ऐसा कहके वे पत्रे उठाकर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने दयानन्द स्वामी जी के हाथ में दिये ।

इस पर स्वामी जी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे । इसमें अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि ज्यों ही यह उत्तर कहा चाहते थे कि–

"पुरानी जो विद्या है उसे पुराणविद्या कहते हैं और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहाता है । इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है, परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा । इसलिए यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है, औरों का नहीं । पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है । इससे ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं सो तो वेद में** कहीं ऐसा पाठ नहीं है । इसलिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता ।" कि विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हम को विलम्ब होता है हम जाते हैं ।

तब सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये। इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय***

*** ये पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे वेदों के नहीं ।**

**** यह पण्डितों के मतानुसार कहा है, यह स्वामी जी का मत नहीं है।**

***** क्या किसी का भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामी जी का पराजय और काशीस्थ पण्डितों का विजय हुआ ? किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी-दयानन्द सरस्वती जी का विजय हुआ और काशीस्थों का नहीं । क्योंकि स्वामी जी का तो वेदोक्त सत्यमत है उसका विजय क्योंकर न होवे ? काशीस्थ पण्डितों का पुराण और तन्त्रोक्त जो पाषाणादि मूर्तिपूजादि है उनका पराजय होना कौन रोक सकता है ? यह निश्चय है कि असत्य पक्ष वालों का पराजय और सत्य वालों का सर्वदा विजय होता है ॥**

हुआ । परन्तु जो दयानन्द स्वामी जी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं उनका वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्योंकर उनका पराजय हुआ?।। इति ।।

(लेखराम पृ० ५७०, दिग्विजयार्क पृ० १५)

धर्म और मूर्तिपूजा

(मिर्जापुर के रामरतन लड्ढा से शास्त्रार्थ–माघ, सं० १९२६ वि०)

इतने में रामरतन लड्ढा ने कहा कि–महाराज यह हमारे मिर्जापुर के पण्डित हैं, आप इनके सामने कुछ कहें । स्वामी जी ने उससे पूछा कि–तुम किस मन्दिर के शिष्य हो ? उसने कहा कि हम नाथ जी के शिष्य हैं । स्वामी जी ने कहा कि–तुम्हारा आचार्य वेश्या-पुत्र और तुम उसके शिष्य हुए, यह तुम को अनधिकार है । स्वामी जी ने हम से पूछा कि–इनको अधिकार है या नहीं ? हम ने कहा कि–अधिकार नहीं । फिर स्वामी जी ने हम से पूछा–धर्म क्या है और उसका स्वरूप क्या है ? हम ने कहा कि आपके इस कथन में दोष है । बोले इसमें क्या दोष है ? हम ने कहा–धर्म का रूप नहीं है, उसका स्वरूप पूछना अनुचित है । तब स्वामी जी ने मनुस्मृति और महाभारत से धर्म का स्वरूप बतलाना आरम्भ किया । हम ने कहा कि जो वेद का प्रतिपादित है वही धर्म है ।

तथाकथित प्रतिष्ठा आदि के मन्त्रों में प्रतिष्ठा न निकली न आवाहन। तब स्वामी जी ने पूछा कि–वेद में प्रतिमापूजन है या नहीं ? हम ने उत्तर दिया कि है । उस पर स्वामी जी ने कहा कि–कहां ? हम ने कहा कि–प्रतिष्ठा और आवाहन वेदमन्त्रों से होता है क्या वह प्रमाण नहीं । तब स्वामी जी ने कहा कि–वह प्रतिष्ठा और आवाहन का वेदमन्त्र कहो । तब हम ने मन्त्र कहा । स्वामी जी ने कहा कि–इसका अर्थ कहो । जब अर्थ किया तो उनमें प्रतिष्ठा और आवाहन का कुछ प्रयोजन न आया । फिर हमने पूजन और पुष्प चढ़ाने और धूप दीप नैवेद्य आदि के मन्त्र उनके आगे पढ़े । उनका अर्थ भी स्वामी जी ने सुनाया कि इनका अर्थ तो यह है; फिर तुम उनसे कैसे नैवेद्य आदि चढ़ाते हो । और नवग्रह पूजा के जो मन्त्र हैं उनका भी अर्थ देखिये । उनका अर्थ भी करके सुनाया । उससे भी सूर्य और बृहस्पति के अतिरिक्त किसी ग्रह का सम्बन्ध न निकला । (लेखराम पृष्ठ १९५)

गीता के श्लोक का अर्थ

(एक सज्जन से मिरजापुर में प्रश्नोत्तर–अप्रैल, १८७०)

एक दिन एक सज्जन जो गीता का बड़ा प्रेमी था, स्वामी जी के पास आकर बोला कि–महाराज मैंने गीता की अनेक टीकाएँ देखी हैं परन्तु इस श्लोकार्ध का अर्थ समझ में नहीं आया । आप अनुग्रह करके इसका अर्थ मुझे समझा दें ।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

स्वामी जी ने इसका अर्थ किया कि ''धर्म्मान्'' शब्द को यहां ''अधर्म्मान्'' समझना चाहिये । ''शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्'' व्याकरण के नियम के अनुसार ''सर्व' में जो वकार में अकार है वह ''अधर्म्मान्'' के अकार में तद्रूप हो गया, अर्थात् वह वकार का अकार उसमें मिल गया, इस प्रकार यद्यपि ''अधर्म्मान्'' शब्द ने ''धर्म्मान्'' का रूप ग्रहण कर लिया, परन्तु वास्तव में ''अधर्म्मान्'' ही रहा । यह अर्थ सुनकर वह मनुष्य बहुत प्रसन्न हुआ और स्वामी जी से उसने इस अर्थ की पुष्टि में प्रमाण मांगा तो उन्होंने वेद के दो तीन मन्त्रों का प्रमाण देकर उसका सन्तोष कर दिया ।
(देवेन्द्रनाथ १।१९१, लेखराम १९८)

मूर्तिपूजा

(पं० रुद्रदत्त और पं० चन्द्रदत्त पौराणिक से आरा में शास्त्रार्थ–अगस्त, १८७२)

पं० रुद्रदत्त और पं० चन्द्रदत्त पौराणिक से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ था । पं० रुद्रदत्त ने मूर्तिपूजा के पक्ष में पुराणों के प्रमाण प्रस्तुत किये । स्वामी जी ने उन्हें यह कहकर आग्रह किया कि–**हम वेद, पाणिनि और मनुस्मृति (प्रक्षिप्त भाग को छोड़कर) के सिवाय अन्य ग्रन्थों का प्रमाण नहीं मानते ।**

तत्पश्चात् यह प्रसंग उठा कि पुराण किसने बनाये । स्वामी जी ने कहा कि–**वञ्चक लोगों के रचे हुए हैं ।** कुरुक्षेत्र के युद्ध में प्रायः सारे ही राजा मर गये थे, राजगृह की स्त्रियां उत्पथगामिनी हो गईं, ब्राह्मण असहाय हो गये, अनेक प्रकार के वञ्चक लोग उत्पन्न हो गये, उन्होंने पुराणादि की रचना कर डाली, उन्होंने यह भी कहा कि महाभारत का युद्ध भारतवर्ष की अनेक प्रकार की अवनतियों का मूल हुआ है । तन्त्र–ग्रन्थों के विषय में स्वामी जी

ने अनेक बातें कहीं । जिन्हें सुनकर पं० रुद्रदत्त चिढ़ गये और चटक कर बोले कि—ऐसी बातें अश्राव्य हैं, इस स्थान से चले जाना ही उचित है । स्वामी जी ने कहा कि—आप तो कुछ विचार करते नहीं, इसी से किसी परिणाम पर नहीं पहुंचते । वेदान्त का प्रसङ्ग उठने पर स्वामी जी ने प्रमाण-चैतन्य, प्रमेय-चैतन्य और प्रमातृ-चैतन्य के विषय में प्रश्न किये जिनके उत्तर यथामति पं० रुद्रदत्त ने दिये ।

स्वामी जी दीप्त प्रभाकर के समान थे । उनके गम्भीर विचार और अतिमानुषिक प्रतिभा के सामने पं० रुद्रदत्त प्रभृति कितनी देर ठहर सकते थे । वे अपना श्रेय सभा-स्थल से शीघ्रादपि शीघ्र चले जाने में ही समझते थे । वे केवल वहां से चले जाने का बहाना ढूंढते थे । अतः जब स्वामी जी ने तन्त्र ग्रन्थों की तीव्र आलोचना की तो उन्होंने यह प्रकट किया कि उक्त आलोचना असह्य है और सभास्थल से उठकर चले गये ।

(देवेन्द्रनाथ १।२१२)

जातिपांति और ईश्वर-विषयक

(पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती कलकत्ता निवासी की शङ्काओं का समाधान)

सन् १८७३ का प्रारम्भ

श्री चक्रवर्ती के प्रश्न तथा उनके उत्तर का विवरण

प्रश्न—जातिभेद है या नहीं ?

उत्तर—मनुष्य एक जाति, पशु एक जाति, पक्षी एक जाति, जातिभेद इसी प्रकार है ।

उनके इस उत्तर को सुनकर हम मौन हो गये तब स्वामी जी ने कहा कि—तुम्हारा प्रश्न कदाचित् यह है कि वर्णभेद है या नहीं ? हमने कहा—यही हमारा अभिप्राय है । स्वामी जी ने कहा—निस्सन्देह वर्णभेद है। जो वेदज्ञ और पण्डित है, वह ब्राह्मण; जो उससे न्यून और ज्ञानवान् हैं वे क्षत्रिय; जो व्यापार करते हैं वे वैश्य और जो मूर्ख हैं वे शूद्र हैं । और जो महामूर्ख वे अतिशूद्र हैं । तब हम बहुत प्रसन्न हुए और इसी से स्वामी जी पर हमारी भक्ति आई।

दूसरा प्रश्न—हमारा यह था कि ईश्वर मूर्तिवाला साकार है या निराकार?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वर्त्तमान संस्कृत पुस्तकों में तो बहुत से ईश्वर बताये हैं । तुम कौन सा ईश्वर चाहते हो, सच्चिदानन्द आदि लक्षणवाला चाहते हो तो वह ईश्वर एक है और निराकार है ।

हम ने पूछा कि वह जो संसार का स्वामी है उसका आकार है या नहीं? स्वामी जी ने उत्तर दिया—उसका आकार नहीं है । वह तो सच्चिदानन्द है, यही उसका लक्षण है ।

चौथा प्रश्न—हम ने चौथा प्रश्न पूछा कि उसके मिलने का क्या उपाय है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि बहुत दिन तक योग करने रूपी कर्म से ईश्वर की उपलब्धि होती है ।

हमने पूछा—वह योग किस प्रकार का है ? उस पर स्वामी जी ने अष्टाङ्ग योग की बातें हम को लिख दीं । वह कागज हमारे पास है और मौखिक इस प्रकार समझाया कि जब रात तीन घड़ी शेष रह जाये उस समय उठकर मुंह हाथ धो पद्मासन लगाये । जहां तुम्हारी इच्छा हो बैठो, परन्तु स्थान निर्जन हो । गायत्री का अर्थ सहित ध्यान करो और वह अर्थ भी लिख दिया जो अब तक मेरे पास विद्यमान है । (लेखराम पृष्ठ २१५-२१६)

मूर्तिपूजा

हुगली-शास्त्रार्थ

(चैत्र शुक्ला एकादशी, संवत् १९३०, ८ अप्रैल, १८७३)

एक पण्डित ताराचरण तर्करत्न नामक भाटपाड़ा ग्राम के निवासी हैं। जो कि ग्राम हुगली के पार है। उस ग्राम में उनकी जन्मभूमि है परन्तु आजकल श्रीयुत काशीराज महाराज के पास रहते हैं । संवत् १९२९ में वे अपनी जन्मभूमि में गये थे । वहां से कलिकाता में भी गये थे और किसी स्थान में ठहरे थे।

जिनके स्थान में मैं ठहरा था, उनका नाम श्रीयुत राजा ज्योतीन्द्र मोहन ठाकुर तथा राजा शौरीन्द्र मोहन ठाकुर है । उनके पास तीन बार जा-जा करके ताराचरण ने प्रतिज्ञा की थी कि हम आज अवश्य शास्त्रार्थ करने को चलेंगे। ऐसे ही तीन दिन तक कहते रहे परन्तु एक वार भी न आये । इस से बुद्धिमान् लोगों ने उनकी बात झूठी ही जान ली ।

मैं कलिकाता से हुगली में आया और श्रीयुत वृन्दावनचन्द्र मण्डल जी के बाग में ठहरा था । सो एक दिन उन्होंने अपने स्थान में सभा की । उस में मैं भी वक्तृत्व करने के लिए गया था तथा बहुत पुरुष सुनने को आये थे । उनसे मैं अपना अभिप्राय कहता था । वे सब लोग सुनते थे । उसी समय में ताराचरण पण्डित जी भी वहां आये । तब उनसे वृन्दावन चन्द्रादिकों ने कहा कि आप सभा में आइये । जो इच्छा हो सो कहिये परन्तु सभा के

बीच में पण्डित ताराचरण नहीं आये । किन्तु ऊपर जाकर दूर से गर्जते थे।

वहां भी उन्होंने जान लिया कि पण्डित जी कहते तो हैं, परन्तु समीप क्यों नहीं जाते । इससे जैसे वे ताराचरण जी थे, वैसे ही उन्होंने जान लिये। फिर जब नव घण्टा बज गया, तब लोगों ने मेरे से कहा कि अब समय दश घण्टा का है । उठना चाहिए । बहुत रात आ गई ।

फिर मैं और सब सभास्थ लोग उठे । उठके अपने-अपने स्थान में चले गये । फिर मैं बाग में चला आया । उसके दूसरे दिन वृन्दावनचन्द्र मण्डल जी ने मेरे से कहा कि उस वक्त ताराचरण भी आये थे । जब मैंने उनसे कहा कि सभा में क्यों नहीं आये ?

उन्होंने कहा कि—वे तो बड़ा अभिमान करते हैं । तब मैंने उनसे कहा— **जो अभिमान करता है, सो पण्डित नहीं होता ।** किन्तु वह काम मूर्ख का ही है । और जो पण्डित होता है, सो तो कभी अपने मुख से अपनी बड़ाई नहीं करता । जो ताराचरण पण्डित जी अभिमान में डूबे जावें, तब तो उनको मेरे पास एक बार ले आइये । फिर वे अभिमान-समुद्र में डूबने से बच जायें तो अच्छा हो ।

तब वृन्दावनचन्द्रादिकों ने कहा कि—आप बाग में चलिये। और जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा शास्त्रार्थ कीजिये । पण्डित जी की कुछ इच्छा न देखी, तब वृन्दावनचन्द्र से मैंने कहा कि—आप उनसे कहें कि चिन्ता आप न करें । स्वामी जी ने हम से कह दिया है कि पण्डित जी प्रसन्नता से आवें। मैं किसी से विरोध नहीं रखता । तब तो पण्डित जी ने कहा हम चलेंगे ।

सो मङ्गलवार की सन्ध्या समय में बहुत लोग नगर से शास्त्रार्थ सुनने को आये ।*

वृन्दावनचन्द्र भी बहुत लोगों के साथ आये तथा पाठशालाओं के अध्यक्ष श्री भूदेव मुकुर्ज्या आये । तथा श्री हरिहर तर्कसिद्धान्त पण्डित भी आये । उसके पीछे पण्डित ताराचरण जी सशिष्य तथा अपने ग्राम-निवासियों के साथ आये, जो कि उनके पक्षपाती थे ।

ये सब लोग आ के सभा के स्थान में इकट्ठे भये । तब मैं भी उस स्थान में आया । फिर यथायोग्य बैठे । तब ताराचरण जी ने प्रतिज्ञा की कि हम प्रतिमा का स्थापन पक्ष लेते हैं । फिर मैंने कहा कि जो आपकी इच्छा हो सो लीजिये । मैं तो इस बात का खण्डन ही करूँगा ।

तब उन ने मुझ से कहा कि संवाद में वाद होना ठीक है, वा जल्प

*** चैत सु० ११, संवत् १९३०, ८ एप्रिल, १८७३ ।**

अथवा वितण्डा । उन से मैंने कहा कि वाद ही होना उचित है । क्योंकि **जल्प और वितण्डा सज्जनों को करना कभी उचित नहीं ।** वाद गौतमोक्त लेना । तब उन्होंने भी स्वीकार किया ।

फिर दूसरी यह प्रतिज्ञा उस समय में की गई कि चार वेद तथा चार उपवेद, छः वेदों के अङ्ग और छः दर्शन मुनियों के किये तथा मुनि और ऋषियों के किये छः शास्त्रों के व्याख्यान, उन्हीं के वचन प्रमाण से ही कहना। अन्य कोई का प्रमाण नहीं । तब उस ने भी स्वीकार किया, मैंने भी ।

*तर्करत्न—पातञ्जलसूत्रम्—

चित्तस्य आलम्बने स्थूल आभोगो वितर्कः । —इति व्यासवचनम् ।

तर्करत्न के हाथ में पुस्तक भी थी । उसको देखा । तब भी मिथ्या ही उसने लिखा । क्योंकि योग-शास्त्र पढ़ा होय, तब उस शास्त्र को जान सकता है । तर्करत्न ने पढ़ा तो था नहीं । इससे उसने अशुद्ध लिखा । देखना चाहिये कि ऐसा पातञ्जल-शास्त्र में सूत्र ही नहीं है । किन्तु ऐसा सूत्र तो है—

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी, इति ।

सो इस सूत्र के व्याख्यान में ''नासिकाग्रे धारयत'' इत्यादिक वहां लिखा है । यह तो उसने जाना भी नहीं । इससे उनका लिखना भ्रष्ट है । फिर लिखते हैं कि—

इति व्यासवचनम् ।

इस प्रकार का वचन व्यास जी ने कहीं योगशास्त्र की व्याख्या में नहीं लिखा । इससे यह भी उनका वचन भ्रष्ट ही है । फिर यह लिखा कि—

स्वरूपे साक्षाद्वती प्रज्ञा आभोगः स च स्थूल-विषयत्वात् स्थूल इत्यादि।

यह भी उनका लिखना अशुद्ध ही है । क्योंकि प्रतिज्ञा तो ऐसी पूर्व की गई थी कि **वेदादिक शास्त्र-वचनों से ही प्रतिमा पूजन का स्थापन हम करेंगे ।** और वचन फिर लिखा वाचस्पति का । इससे तर्करत्न की प्रतिज्ञा-हानि हो गई । **प्रतिज्ञा की हानि होने से उनका पराजय हो गया।** क्योंकि—प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरमित्यादिक निग्रह-स्थान होते हैं । यद्यपि हम को जय तथा पराजय की इच्छा कभी नहीं है, तथापि गौतम मुनि जी ने छब्बीस निग्रह-स्थान लिखे हैं ।

***जहां-जहां तर्करत्न शब्द आवे, वहां-वहां ताराचरण पण्डित जी को जान लेना । और जहां-जहां स्वामी शब्द आवे, वहां-वहां दयानन्द सरस्वती स्वामी जी को जान लेना ।**

निग्रह स्थान सब पराजय के स्थान ही होते हैं । और, पहले प्रतिज्ञा की थी कि जल्प और वितण्डा न करेंगे । **फिर जाति-साधन से प्रतिमा का स्थापन करने लगे ।** क्योंकि प्रतिमा भी स्थूल साधर्म्य से आती है ।
स्वामी जी–

यावान् जागरितावस्थाविषयः तावान् सर्वः स्थूलः कुत, इत्यादि।

मैंने उनको ज्ञापक से जना दिया कि ये गृहस्थ हैं । इनकी अप्रतिष्ठा न हो जाय । तदपि उसने कुछ भी नहीं जाना । जानें तो तब, जब कुछ शास्त्र पढ़ा हो । अथवा बुद्धि शुद्ध हो ।

साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्षेत्यादिक चौबीस प्रकार का शास्त्रार्थ जाति के विषय में गौतम मुनि जी ने लिखा है । इसके नहीं जानने से जल्प और वितण्डा तर्करत्न ने किये । क्योंकि–

यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः ॥१॥
सप्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ॥२॥

जैसा कि इन सूत्रों का अभिप्राय है, वैसा ही तर्करत्न जी ने प्रतिमापूजन का स्थापन करने में जल्प और वितण्डा ही किया ।

इससे दूसरे बेर प्रतिज्ञा-हानि उसने की । द्वितीय पराजय उनका हुआ।

यदुक्तं भवता तेनैव प्रतिमापूजनमेव सिद्ध्यत्येव तस्य स्थूलत्वात्।

इसमें तीन बेर 'एव' शब्द लिखने से यह जाना गया कि ताराचरण जी को संस्कृत का यथावत् बोध भी नहीं है । इससे तर्करत्न जी अभिमान में डूबे जाते हैं क्योंकि हम बड़े पण्डित हैं । इस प्रकार का जो स्वमुख से कहना है, सोई विद्याहीनता को जनाता है । फिर लोकान्तरस्थ शब्द से मैंने उनको जनाया कि जो चतुर्भुज को आप लेते हो, सो तो वैकुण्ठ में सुने जाते हैं । "उप" अर्थात् समीप "आसना" अर्थात् स्थिति सो मनुष्य लोक में रहने वाला कैसे कर सकेगा ? कभी नहीं, और जो पाषाणादिक की मूर्ति शिल्पी की रची भई; सो तो विष्णु है नहीं । तब भी पण्डित जी कुछ नहीं समझे, क्योंकि जो कुछ विद्या पढ़ी होती, अथवा सत्पुरुषों का सङ्ग किया होता तो समझ जाते । सो तो कभी किया नहीं । इससे ताराचरण जी उस बात को न समझ सके । फिर एक कहीं से सुनी सुनाई ब्राह्मण की श्रुति विना प्रसङ्ग से पढ़ी । सो यह है–

अथ स यदा पितॄनावाहयति पितृलोकेन तेन सम्पन्नो महीयते ।

इस श्रुति से लोकान्तरस्थ की भी उपासना आती है । इस अभिप्राय से देखना चाहिए । इस श्रुति में उपासना लेशमात्र नहीं आती । क्योंकि यह

श्रुति जिस योगी को अणिमादिक सिद्धि हो गई हैं, वह सिद्ध जिस-जिस लोक में जाने की इच्छा करता है, उस-उस लोक को उसी समय प्राप्त होता है। सो जब पितृलोक में जाने की इच्छा करता है, पितृलोक को प्राप्त होके आनन्द करता है । क्योंकि-

तेन पितृलोकेन महीयते ।

इत्युक्तत्वात् । ऐसे इच्छा मात्र से ही ब्रह्मलोकादिक में विहार करता है । इससे इस श्रुति में मरकर उस लोक में जाता है, अथवा पितरों की उपासना इस लोक में करता है, इस अभिप्राय के नहीं होने से, ताराचरण जी का कहना मिथ्या ही है । इससे क्या आया कि अर्थान्तर का जो कहना है, सो निग्रह-स्थान ही है । निग्रह-स्थान के होने से पराजय हो गया ।

स्वामी जी-

सर्वः स्थूल इत्यनेनेत्यादि देहान्तरगतस्य प्राप्तित्वादिति दिव्ययोग देहप्राप्तित्वाद्योगिनो न तु प्राकृतदेहस्य माहात्म्यमिदमित्यर्थस्य जागरूकत्वात् देहान्तरम् ।

अर्थात् जो दिव्य योगसिद्धियों से प्राप्त होता है, उस देह से यह बात होती है । और जो अयोगी का देह नाम शरीर, उससे कभी यह बात नहीं होती ।

तर्करत्न-

प्रथमतः अस्माभिरित्यादि०

दूषण अथवा भूषण का ज्ञान तो, विद्या होने से होता है । अन्यथा नहीं। क्योंकि दूषण तो आपके वचनों में है, परन्तु आपने नहीं जाने । यह आपकी बुद्धि का दोष है । जो आपने प्रत्यक्ष दिखाये दूषणों को भी नहीं जाना । ऐसे दूषणों को तो बालक भी जान सकता है ।

तन्मध्ये प्रतिमापि वर्तते इत्येवेत्यादि० ।

आप देख लीजिये कि हम वाद ही करेंगे, जल्प और वितण्डा कभी नहीं ।

स्वामी जी-

फिर बार-बार स्थूलत्व साधर्म्य से ही प्रतिमापूजन स्थापन किया चाहते हो । सो अपनी प्रतिज्ञा को आप ही नाश करते हैं । और फिर चाहते हो कि हमारा विजय होवे । सो कभी नहीं हो सकता है । क्योंकि विजय तो पूर्ण विद्या और सत्य भाषण करने से होता है । सो आप में एक भी नहीं। इससे आप विजय की इच्छा कभी मत करो । किन्तु आपको अपने पराजय

की इच्छा करनी, उचित है । किञ्च जो आप लोगों की इच्छा होवे तो वेदादिक सत्यशास्त्रों को अर्थ-ज्ञान सहित पढ़ेंगे तथा पढ़ावेंगे, तब फिर आप लोगों का पराजय कभी न होगा । किन्तु सर्वत्र विजय ही होगा । अन्यथा नहीं ।

दृष्टान्तत्वेनेत्यादि० छान्दोग्य०
दहर विद्यायामित्यादि० चेति ।

उस श्रुति का एक अंश दार्ष्टान्त में नहीं मिलने से, वह आपका कहना मिथ्या ही है । सो मैंने कह दिया । पहले उससे जान लेना ।

यह किसने कहा कि—जीवित पुरुष को उपासना का अधिकार नहीं है । सो यह आपका कहना मिथ्या ही है । क्योंकि ब्रह्मविद्या का और पाषाणादिक मूर्तिपूजन का क्या प्रसंग है ? कुछ भी नहीं । इससे यह भी अर्थान्तर है । अर्थान्तर के होने से निग्रहस्थान अर्थात् पराजय स्थान आपका है । सो आप यथावत् विचार करके जान लेवें ।

तर्करत्न—

प्रथमतः अस्माभिः यत् भवत्पक्ष इत्यादि तत्र प्रतिमापि वर्त्तते इत्येवेति।

आप जान लेवें कि साधर्म्य हेतु प्रमाण से ही बोलते हैं । इससे आपके कहे जितने दूषण हैं, वे सब आपके ऊपर ही आ गये ।

स्वामी जी—

क्योंकि आपकी प्रतिज्ञा अर्थात् वाद ही हम करेंगे, ऐसा प्रथमतः कह चुके हैं । फिर जल्प और वितण्डा ही बारम्बार करते हैं । इससे अपना पराजय आप ही कर चुके । क्योंकि आपको जो विद्या और बुद्धि होती तो कभी ऐसी भ्रष्ट बात न करते और निग्रहस्थान में बारम्बार न आते । आपको संस्कृत भाषण करने का भी यथावत् ज्ञान नहीं है । क्योंकि—

प्रथमतः अस्माभिः यत्

ऐसा भ्रष्ट असम्बद्ध भाषण कभी न करते ।

किञ्च—

प्रथमतोऽस्माभिर्यत्

ऐसा श्रेष्ठ और सम्बद्ध संस्कृत ही कहते ।

दृष्टान्ते सर्वविषयाणां साम्यप्रयोजनं नास्तीति ।

यह भी आपका कहना भ्रष्ट ही है । क्योंकि मैंने कब ऐसा कहा था कि सब प्रकार से दृष्टान्त मिलता है । वह श्रुति एक अंश से भी आपके अभिप्राय से मिलती नहीं । इसमें मैंने कहा कि इस श्रुति का पढ़ना आपका

मिथ्या ही है । ऐसा ही आपका कहना सब भ्रष्ट है ।

भवत्पक्ष इत्यादि तत्र प्रतिमापि वर्त्तते० ।

यह आपका जो कहना है, सो प्रतिज्ञान्तर ही है । क्योंकि स्थूलत्व तुल्य जो प्रतिमा में और गर्दभादिकों में है । इस हेतु से ही प्रतिमा-पूजन का स्थापन करा चाहते हो । सो फिर भी जल्प और वितण्डा ही आती है, वाद नहीं। इससे बारम्बार आपका पराजय होता गया । फिर भी आपको बुद्धि वा लज्जा न आई । यह बड़ा आश्चर्य जानना चाहिए कि अभिमान तो पण्डितता का करें; और काम करें अपण्डित का ।

तर्करत्न–

प्रतिमापि वर्त्तते इत्यादि अयं तु प्रकृतविषयस्य साधकः न तु प्रतिज्ञान्तरं इत्यादि ।

स्वामी जी–

प्रकृत विषय यही है कि प्रतिमापूजन का स्थापन, सो स्थापना वाद से और वेदादिक सत्यशास्त्रों के प्रमाण से ही करना । फिर उस प्रतिज्ञा को छोड़ के जल्प तथा वितण्डा और मिथ्या कल्पित वचन ये वाचस्पत्यादिकों के उनसे स्थापन करने में लग गये । अहो इत्याश्चर्य कि ताराचरण जी की बुद्धि विद्या के विना बहुत छोटी है । जो प्रतिज्ञा करके शीघ्र ही भूल जाती है । यह आपका दोष नहीं; किन्तु आपकी बुद्धि का दोष है । और आपके काम, क्रोध, अविद्या, लोभ, मोह, भय, विषयासक्त्यादिक दोषों का दोष है । तर्करत्न जी ! यह आप देख लीजिए कि कितने बड़े-बड़े दोष आप में हैं ?

प्रथम तो प्रतिमा-पूजन का स्थापन पक्ष लेके फिर जब कुछ भी स्थापना न हो सकी ।

उपासनामात्रमेव भ्रममूलम् ।

अपने आप ही खण्डन प्रतिमा-पूजन का करने लगे कि भ्रममूल अर्थात् प्रतिमा-पूजन मिथ्या ही है । इससे अपने पक्ष का आपने ही खण्डन कर दिया। फिर मिथ्या ग्रन्थ, जो पञ्चदशी, उसके प्रमाण देने लग गये । और जो प्रथम वेदादिक जो बीस सनातन ऋषि मुनियों के किये मूल और व्याख्यान तथा परमेश्वर के किये चार वेद इनके प्रमाण से बोलेंगे, सो आपकी प्रतिज्ञा मिथ्या हो गई । प्रतिज्ञा के मिथ्या होने से आपका पराजय भी हो गया फिर–

भ्रान्तिरस्माकं न दूषणीया ।

वह भी पहले आपका कहना है । सो कोई भी पण्डित न कहेगा के भ्रान्तिभूषण होता है । यह तो आपकी भ्रान्त बुद्धि का ही वैभव है और जो

सज्जन लोग हैं, वे तो भ्रान्ति को दूषण ही जानते हैं । तथा–

भ्रमः खलु द्विविधः । इत्यादि०

यह पञ्चदशी का वचन है । यह प्रतिज्ञा से विरुद्ध ही है क्योंकि वेदादि शास्त्रों में इसकी गणना नहीं है ।

पाषाणादि की रचित मूर्ति में देव बुद्धि का जो कर्त्ता है सो दीपप्रभा में मणिभ्रम की नाईं ही है, क्योंकि दीप तो कभी मणि न होगा, और मणि तो सदा मणि ही रहेगा । सो आपने मुख से तो कहा परन्तु हृदय में शून्यता के होने से कुछ भी नहीं जाना । ऐसा ही आपका सब कथन भ्रष्ट है । आपको जो कुछ भी ज्ञान होय, तब तो जान सकते, अन्यथा नहीं ।

तर्करत्न जी ने आगे-आगे जो कुछ कहा है, सो-सो भ्रष्ट ही है । बुद्धिमान् लोग विचार लेवें । ताराचरण जी इस प्रकार के मनुष्य हैं कि कोई बुद्धिमान् के सामने जैसा बालक । और भाषण वा श्रवण करने के योग्य भी नहीं, क्योंकि जिसको बुद्धि और विद्या होती है, सोई कहने वा श्रवण में समर्थ होता है । सो तर्करत्न जी में न बुद्धि है, और न कुछ विद्या है। इससे न कहने, न सुनने में समर्थ हो सकते हैं । इनका नाम जो तर्करत्न किसी ने रखा है सो अयोग्य ही रखा है । क्योंकि–

अविज्ञाते तत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः ।

यह गौतम मुनि जी का सूत्र है । इसका यह अभिप्राय है कि जिस पदार्थ का तत्त्वज्ञान अर्थात् जिसका यथावत् स्वरूप ज्ञान न होवे, उसके ज्ञान के वास्ते कारण अर्थात् हेतु और प्रत्यक्षादि प्रमाणों की उपपत्ति अर्थात् यथावत् युक्ति से ऊह नाम वितर्क अर्थात् विविध विचार और युक्तिपूर्वक विनयपूर्वक श्रेष्ठों से, विविध वाक्य कहना, उसे तर्क कहते हैं । तर्क सो इसका लेशमात्र सम्बन्ध भी ताराचरण जी में नहीं होने से, तर्करत्न तो नाम अनर्थक है ।

किन्तु इनके कथन में थोड़े से दोष मैंने दिखाये हैं । जैसा कि समुद्र के आगे एक विन्दु । किन्तु उनके भाषण में केवल दोष ही हैं, गुण एक भी नहीं सो विद्वान् लोग विचार कर लेवें ।

वे ही ये ताराचरण जी हैं कि जब काशी नगर के पण्डितों से आनन्दबाग में सभा भई थी उसमें बहुत विशुद्धानन्द स्वामी तथा बालशास्त्री इत्यादिक पण्डित आये थे । उनके सामने डेढ़ पहर तक एक बात में मौन करके बैठे रहे थे । दूसरी बात भी मुख से नहीं निकली थी और जो उनका कुछ भी सामर्थ्य होता तो अन्य पण्डित लोग क्यों शास्त्रार्थ करते । जब उसने–

उपासनामात्रमेव भ्रममूलम् ।

कहा, उसी वक्त श्री भूदेव मुखर्ज्या आदिक श्रेष्ठ लोग उठ गये कि पण्डित आये तो प्रतिमा-पूजन का स्थापन करने को, किन्तु वह अपना आप खण्डन कर चुके । पण्डित कुछ भी नहीं जानते हैं । ऐसा कहके उठके चले गये। फिर अन्य पुरुषों से उसने कहा कि पण्डित हार गया ।

स्वामी–

श्रीमत्कथनेनैव प्रतिमापूजनविघातो जात एवेति शिष्टा विचारयन्तु।

ताराचरण जी से मैंने कहा कि आपके कहने से ही प्रतिमा-पूजन का विघात अर्थात् खण्डन हो गया और मैं तो खण्डन करता ही हूं ।

फिर पण्डित जी चुप होके ऊपर के स्थान में चले गये। उसके पीछे मैं भी ऊपर जाने को चला । तब पण्डित सीढ़ी में मिले । मैंने उनका हाथ पकड़ लिया । और, कहा कि ऊपर आओ । फिर ऊपर जाके सब वृन्दावनचन्द्रादिकों के सामने उन पण्डित ताराचरण से मैंने कहा कि आप ऐसा बखेड़ा क्यों करते फिरते हैं ?

तब वे बोले कि मैं तो काक-भाषा का खण्डन करता हूं। और सत्यशास्त्र पढ़ने तथा पढ़ाने का उपदेश भी करता हूं । और पाषाणादिक मूर्तिपूजन भी मिथ्या ही जानता हूं परन्तु मैं जो सत्य-सत्य कहूं तो मेरी आजीविका नष्ट हो जाये तथा काशीराज महाराज जो सुनें तो मुझ को निकाल बाहर कर देवें। इस से मैं सत्य-सत्य नहीं कह सकता हूं । जैसे कि आप सत्य-सत्य कहते हैं ।

देखना चाहिए कि इस प्रकार के मनुष्यों से जगत् का उपकार तो कुछ नहीं बनता; किन्तु अनुपकार ही सदा बनता है। **विना सत्य उपदेश के उपकार कभी नहीं हो सकता ।** इतना मुझ को अवकाश नहीं है कि मिथ्यावादी पुरुषों के साथ सम्भाषण किया करूँ । जो-जो मैंने लिखा है, इसमें इसी से सज्जन लोग जान लेवें ।

(महर्षि के पत्र विज्ञापन, लेखराम पृ० २२३-२२५, दिग्विजयार्क पृ० ११)

प्रतिमा-पूजन विचार

इसके आगे जिन शब्दों के अर्थ के नहीं जानने से, टीकाकारों को भ्रम हो गया है तथा नवीन ग्रन्थ बनाने वाले और कहने वाले तथा सुनने वाले को भी भ्रम होता है । उन शब्दों का शास्त्र रीति तथा प्रमाण और युक्ति से, जो ठीक-ठीक अर्थ है, उन्हीं का प्रकाश संक्षेप से लिखा जाता है । प्रथम तो एक प्रतिमा शब्द है ।

प्रतिमीयते यया सा प्रतिमा ।

अर्थात् प्रतिमानम् जिससे प्रमाण अर्थात् परिमाण किया जाये, उसको कहना प्रतिमा, जैसे कि छटांक, आधपाव, पावसेर, सेर, पसेरी इत्यादि और यज्ञ के चमसादिक पात्र । क्योंकि इन से पदार्थों के परिमाण किये जाते हैं। इससे इन्हों का ही नाम है प्रतिमा । यही अर्थ मनु भगवान् ने मनुस्मृति में लिखा–

तुलामानं प्रतिमानं सर्वं च स्यात् सुलक्षितम् ।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥

पक्ष-पक्ष में, वा मास-मास में, अथवा छठवें-छठवें मास तुला की राजा परीक्षा करे । क्योंकि तराजू की दण्डी में भीतर छिद्र करके पारा उसमें डाल देते हैं । जब कोई पदार्थ को तौल के लेने लगते हैं, तब दण्डी को पीछे नमा देते हैं । फिर पारा पीछे जाने से चीज अधिक आती है । और, जब देने के समय में दण्डी आगे नमा देते हैं उससे चीज थोड़ी जाती है । इससे तुला की परीक्षा अवश्य करनी चाहिए तथा प्रतिमान अर्थात् प्रतिमा की परीक्षा अवश्य करे । राजा जिस से कि अधिक, न्यून प्रतिमा अर्थात् दुकान के बाट जितने हैं, उन्हों का ही नाम प्रतिमा । इसी वास्ते प्रतिमा के भेदक अर्थात् घाट बाढ़ तौलने वाले के ऊपर दण्ड लिखा है–

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥

यह मनु जी का श्लोक है । इसका अभिप्राय यह है कि संक्रम अर्थात् रथ, उस रथ के ध्वजा की यष्टि, जिसके ऊपर ध्वजा बांधी जाती है, और प्रतिमा छटांक आदिक बटखरे, इन तीनों को तोड़ डाले वा अधिक न्यून कर देवे, उनको उससे राजा बनवा लेवे । और जैसा जिसका ऐश्वर्य, उसके योग्य दण्ड करे । जो दरिद्र, होवे तो उससे पांच सौ पैसा राजा दण्ड लेवे । जो कुछ धनाढ्य होवे तो पांच सौ रुपया उससे दण्ड लेवे । और जो बहुत धनाढ्य होवे, उससे पांच सौ अशर्फी दण्ड लेवे । रथादिकों को उसी के हाथ से बनवा लेवे । इससे सज्जन लोग बटखरा तथा चमसादिक यज्ञ के पात्र उन्हीं को ही प्रतिमा शब्द से निश्चित जानें ।

दूसरा पुराण शब्द है–

पुराभवं पुराभवा वा पुराभवश्च इति पुराणं पुराणी पुराणः ।

जो पुराण पदार्थ होवे, उसको कहते हैं पुराणा । सो सदा विशेषण वाची ही रहता है तथा पुरातन, प्राचीन और प्राक्तन आदि शब्द सब हैं तथा उनों के

विरोधी विशेषणवाची नूतन, नवीन, अद्यतन, अर्वाचीन आदिक शब्द हैं । जो विशेषण वाची शब्द होते हैं, वे सब परस्पर व्यावर्तक होते हैं । जैसे कि यह चीज पुरानी है तथा यह चीज नवीन है । पुराण शब्द जो है, सो नवीन शब्द की व्यावृत्ति कर देता है । यह पदार्थ पुराना है अर्थात् नया नहीं । और, यह पदार्थ नया है अर्थात् पुराना नहीं । जहां-जहां वेदादिकों में पुराणादिक शब्द आते हैं, वहां-वहां इन अर्थों के वाचक ही आते हैं, अन्यथा नहीं । ऐसा ही अर्थ गौतम मुनि जी के किये सूत्रों के ऊपर जो वात्स्यायन मुनि का किया भाष्य है, उसमें लिखा है ।

वहां ब्राह्मण पुस्तक जो शतपथादिक उनों का ही नाम पुराण है । तथा शङ्कराचार्य जी ने भी शारीरक भाष्य में, और उपनिषद्भाष्य में, ब्राह्मण और ब्रह्मविद्या का ही पुराण शब्द से ग्रहण किया है । जो देखना चाहे सो उन शास्त्रों में देख लेवे । वह इस प्रकार से कहा है कि जहां-जहां प्रश्न और उत्तरपूर्वक कथा होवे, उसका नाम इतिहास है । और जहां-जहां ब्राह्मण पुस्तकों में वंश-कथा होवे उसका नाम पुराण है । और ऐसे जो कहते हैं कि अठारह ग्रन्थों का नाम पुराण है यह बात तो अत्यन्त अयुक्त है । क्योंकि उस बात का वेदादिक सत्यशास्त्रों में प्रमाण कहीं नहीं है । और कथा भी इन में अयुक्त ही है। इन का नाम कोई पुराण रक्खे तो इन से पूछना चाहिए कि वेद क्या नवीन हो सकते हैं? सब ग्रन्थों से वेद ही पुराने हैं । और यह बात कहते हैं कि अश्वमेध की जो पूर्ति हो जाय, उसके दसवें दिन पुराण की कथा यजमान सुने । सो तो ठीक-ठीक है कि ब्राह्मण पुस्तक की कथा सुने और, जो ऐसा कहे कि ब्रह्मवैवर्तादिकों की क्यों नहीं सुने ? उससे पूछना चाहिये कि सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में जब-जब अश्वमेध भये थे, तब-तब किस की कथा सुनी थी । क्योंकि उस वक्त व्यास जी का जन्म भी नहीं भया था । तब पुराण कहां थे । और जो ऐसा कहे कि व्यास जी युग-युग में थे, यह बात भी उसकी मिथ्या है । क्योंकि अब तक युधिष्ठिरादिकों का निशान दिल्ली आदिकों में देख पड़ता है । उसी वक्त व्यास जी और व्यास जी की माता आदिक वर्तमान थे । इससे यह भी उनका कहना मिथ्या ही है । पुराण जितने ब्रह्मवैवर्त्तादिक वे सब सम्प्रदायी लोगों ने अपने-अपने मतलब के वास्ते बना लिये हैं । व्यास जी का वा अन्य ऋषि-मुनियों का किया एक भी पुराण नहीं है । क्योंकि वे बड़े विद्वान् और धर्मात्मा थे । उनका वचन सत्य ही है तथा छः दर्शनों में उन के सत्य वचन देखने में आते हैं । मिथ्या एक नहीं । और पुराणों में मिथ्या कथा तथा परस्पर विरोध ही है । और, जैसे

वे सम्प्रदायी लोग हैं, वैसे ही उनके बनाये पुराण भी सब नेष्ट हैं। सो सज्जनों को ऐसा ही जानना उचित है, अन्यथा नहीं।

तीसरा देवालय और चौथा देवपूजा शब्द है। **देवालय, देवायतन, देवागार तथा देवमन्दिर, इत्यादिक सब नाम यज्ञशालाओं के ही हैं।** क्योंकि जिस स्थान में देवपूजा होवे, उसके नाम हैं, देवालयादिक। और देव संज्ञा है परमेश्वर की तथा परमेश्वर की आज्ञा जो वेद उसके मन्त्रों की भी देव संज्ञा है। देव जो होता है, सोई देवता है। यह बात पूर्वमीमांसा शास्त्र में विस्तार से लिखी है। जिसको देखने की इच्छा हो, वह उस शास्त्र में देख ले। जो कि शास्त्र कर्मकाण्ड के ऊपर है। वे जैमिनि मुनि के किये सूत्र हैं। यहां तक उसमें लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिक देव जो देवलोक में रहते हैं, उन का भी पूजन कभी न करना चाहिये, एक परमेश्वर के विना। सो वेद में इस प्रकार से निषेध किया है कि–

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन्।

यह यजुर्वेद की श्रुति है। ब्रह्मादिक जो देव वे जब यज्ञ करते हैं, तब उनों से अन्य कौन देव हैं, जो कि उनके यज्ञों में आके भाग लेवें। सो उन से आगे कोई देव नहीं है। और जो कोई मानेगा तो उनके मत में अनवस्था दोष आवेगा। इससे परमेश्वर और वेदों के मन्त्र उन को ही देव और देवता मानना उचित है। अन्य कोई नहीं।

अग्निर्देवतेत्यादिक जो यजुर्वेद में लिखा है, सो अग्नि आदिक सब नाम परमेश्वर ही के हैं। क्योंकि देवता शब्द के विशेषण देने से इसमें मनुस्मृति का प्रमाण है–

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।
आत्मा हि जनयत्येषा कर्मयोगं शरीरिणम् ॥१॥
प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥२॥
एतमग्निं वन्दत्येके मनुमेके प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥३॥

इन श्लोकों से आत्मा, जो परमेश्वर, उसी का देवता नाम है। और अग्न्यादिक जितने नाम हैं, वे भी परमेश्वर के ही हैं। परन्तु जहां-जहां ऐसा प्रकरण हो कि उपासना, स्तुति, प्रार्थना तथा इस प्रकार के विशेषण वहां-वहां परमेश्वर का ही ग्रहण होता है, अन्यत्र नहीं। किन्तु 'सर्वमात्मन्यवस्थितम्' सिवाय परमेश्वर के कोई में सब जगह नहीं ठहर सकता। और 'प्रशासितारं

सर्वेषामित्यादिक' विशेषणों से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है, अन्य का नहीं। क्योंकि सब का शासन करने वाला विना परमेश्वर से कोई नहीं । तथा सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म और पर पुरुष परमेश्वर से भिन्न, ऐसा कोई नहीं हो सकता है । निरुक्त में भी यह लिखा है कि–

यत्र देवतोच्यते तत्र तल्लिङ्गो मन्त्रः ।

जहां-जहां देवता शब्द आवे, वहां-वहां उस नामवाले मन्त्र को ही लेना। जैसा कि 'अग्निर्देवता' इसमें अग्नि शब्द आया, सो जिस मन्त्र में अग्नि शब्द होवे, उस मन्त्र का ही ग्रहण करना । 'अग्निमीडे पुरोहितमिति' यह मन्त्र ही देवता है । अन्य कोई नहीं । **इससे क्या आया कि परमेश्वर और वेदों के मन्त्र ही देव और देवता हैं ।** जिस स्थान में होम, परमेश्वर का विचार, ध्यान और समाधि करें, उसके नाम हैं देवालयादिक । इसमें मनुस्मृति का प्रमाण भी है–

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो देवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिसेवनम् ॥१॥
स्वाध्यायेनार्चयेदर्षीन् होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄन् श्राद्धैर्नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥२॥

इन श्लोकों से क्या आया कि होम जो है, सोई देवपूजा है अन्य कोई नहीं । और होम स्थान जितने हैं, वे ही देवलयादिक शब्दों से लिये जाते हैं ।

पूजा नाम सत्कार । क्योंकि 'अतिथिपूजनम् होमैर्देवानर्चयेत् ।' अतिथियों का पूजन, नाम सत्कार करना तथा देव परमेश्वर और मन्त्र इन्हों का सत्कार इसका नाम है पूजा, अन्य का नहीं । और पाषाणादि मूर्ति स्थान देवालयादिक शब्दों से भी नहीं लेना तथा घण्टा-नादादि पूजा शब्द से भी कभी नहीं लेना। देवल और देवलक शब्द का यह अर्थ है कि–

यद्वित्तं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः ।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं प्रचक्षते ॥१॥

यह मनु का श्लोक है । इसका अभिप्राय है कि जिन्हों का यज्ञ करने का शील अर्थात् स्वभाव होवे, उसका सब धन यज्ञ के वास्ते ही होता है। अर्थात् देवार्थ धन है ।

यद्दैवं तदेव देवस्वम्

अर्थात् होम के लिए जो धन होवे, उसका नाम देवस्व है । सो भिक्षा अथवा प्रतिग्रह करके यज्ञ के नाम से धन लेके यज्ञ तो करें नहीं, और उस

धन से अपना व्यवहार करे, इसका नाम है देवल । सो इसकी शास्त्र में निन्दा लिखी है । देवपितृकार्य में उसको निमन्त्रण कभी न करना चाहिए । ऐसा उसका निषेध लिखा है । और जो यज्ञ के धन की चोरी करता है, वह होता है देवलक ।

कुत्सितो देवलो देवलकः कुत्सिते इत्यनेन कन् प्रत्ययः ।

देवलक तो अत्यन्त निन्दित है ।

एक यह अन्धकार लोगों का देखना चाहिए कि–

विद्वान् भोजनीयः सत्कर्तव्यश्चेति ।

विद्वान् को भोजन कराना चाहिये और उसका सत्कार भी करना चाहिये । इससे कोई की ऐसी बुद्धि न होगी कि पाषाणादिक मूर्ति को भोजन कराना, वा उसका सत्कार करना चाहिये । वह भी बात ऐसी ही है ।

एक बात वे लोग कहते हैं कि पाषाणादिक तो देव नहीं हैं, परन्तु **भाव से वे देव हो जाते हैं ।** उनसे पूछना चाहिये कि भाव सत्य होता है, वा मिथ्या? जो वे कहें कि भाव सत्य होता है, फिर उनसे पूछना चाहिये कि कोई भी मनुष्य दुःख का भाव नहीं करता, फिर उसको क्यों दुःख होता है और सुख का भाव सब मनुष्य सदा चाहते हैं । फिर उनको सुख सदा क्यों नहीं होता? फिर वे कहते हैं कि यह बात तो कर्म से होती है । अच्छा तो आपका भाव कुछ भी नहीं ठहरा । अर्थात् मिथ्या ही हुआ है । सत्य नहीं हुआ । आपसे मैं पूछता हूं कि अग्नि में जल का भाव करके हाथ डाले तो क्या वह न जल जायेगा ? किन्तु जल ही जायेगा । इससे क्या आया पाषाण को पाषाण ही मानना और देव को देव मानना चाहिये, अन्यथा नहीं । इससे जो जैसा पदार्थ है, वैसा ही उसको सज्जन लोग मानें ।

काश्यादिक स्थान, गङ्गादिक तीर्थ, एकादशी आदिक व्रत, राम, शिव, कृष्णादिक नाम स्मरण तथा तोबा शब्द वा यीसू के विश्वास से पापों का छूटना और मुक्ति का होना, तिलक, छाप, माला-धारण तथा शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, क्रिश्चन और मुहम्मदी और नानक, कबीर आदिक सम्प्रदाय, इन्हों से पाप सब छूट जाते हैं । और मुक्ति भी हो जाती है । –यह अन्यथा बुद्धि ही है । क्योंकि इस प्रकार के सुनने और मिथ्या निश्चय के होने से **सब लोग पापों में प्रवृत्त हो जाते हैं ।** कोई न भी होगा । तभी कोई मनुष्य पाप करने में भय नहीं करते हैं । जैसे–

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं, काशीक्षेत्रे विनश्यति ।
काशीक्षेत्रे कृतं पापं पञ्चक्रोश्यां विनश्यति ॥१॥

पञ्चक्रोश्यां कृतं पापमन्तर्गृह्यां विनश्यति ।
अन्तर्गृह्यां कृतं पापमविमुक्ते विनश्यति ॥२॥
अविमुक्ते कृतं पापं स्मरणादेव नश्यति ।
काश्यां तु मरणान्मुक्तिर्नात्र कार्या विचारणा ॥३॥

इत्यादिक श्लोक काशीखण्डादिकों में लिखे हैं । 'काश्यां मरणान्मुक्तिः।' कोई पुरुष इसको श्रुति कहता है । सो यह वचन उसका मिथ्या ही है। क्योंकि चारों वेदों के बीच में कहीं नहीं है । **कोई ने मिथ्या जाबालोपनिषद् रच लिया है ।** किन्तु अथर्ववेद के संहिता में तथा कोई वेद के ब्राह्मण में इस प्रकार की श्रुति है नहीं । इससे यह श्रुति तो कभी नहीं हो सकती। किन्तु कोई ने मिथ्या कल्पना कर ली है । जैसे कि 'अन्यक्षेत्रे कृतं पापं' इत्यादि श्लोक मिथ्या बना लिये हैं । **इस प्रकार के श्लोकों को सुनने से, मनुष्यों की बुद्धि भ्रष्ट होने से सदा पाप में प्रवृत्त हो जाते हैं ।** इससे सब सज्जन लोगों को निश्चित जानना चाहिये कि जितने-जितने इस प्रकार के माहात्म्य लिखे हैं, वे सब मिथ्या ही हैं । इन्हों से मनुष्यों का बड़ा अनुपकार होता है । जो कोई धर्मात्मा बुद्धिमान् राजा होवे तो इन पुस्तकों का पठन-पाठन, सुनना-सुनाना, बन्द कर दे और वेदादि सत्य शास्त्रों की यथावत् प्रवृत्ति करा देवे । तब इस उपद्रव की यथावत् शान्ति होने से सब मनुष्य शिष्ट हो जायें, अन्यथा नहीं ।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ।
(योग० समा० ३५)

इस सूत्र के भाष्य में लिखा है कि-

एतेन चन्द्रादित्यग्रहमणिप्रदीपरत्नादिषु प्रवृत्तिरुत्पन्ना विषयवत्येव वेदितव्येति ।

इससे प्रतिमा-पूजन कभी नहीं आ सकता । क्योंकि इन में देवबुद्धि करना नहीं लिखा । किन्तु जैसे वे जड़ हैं, वैसे ही योगी लोग उनको जानते हैं । और बाह्यमुख जो वृत्ति, उस को भीतर मुख करने के वास्ते योगशास्त्र की प्रवृत्ति है । **बाहर के पदार्थ का ध्यान करना, योगी लोग को नहीं लिखा ।** क्योंकि जितने सावयव पदार्थ हैं, उनमें कभी चित्त की स्थिरता नहीं होती । और जो होवे तो मूर्तिमान् धन, पुत्र, दारादिक के ध्यान में सब संसार लगा ही है । परन्तु चित्त की स्थिरता कोई की भी नहीं होती । इस वास्ते यह सूत्र लिखा-

विशोका वा ज्योतिष्मती (योग०समा० ६६)

इसका यह भाष्य है-

प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनीत्यनुवर्त्तते । हृदयपुण्डरीके धारयतो बुद्धिसंवित् बुद्धिसत्त्वं हि भास्वरमाकाशकल्पं तत्र स्थिति-वैशारद्यात् प्रवृत्तिः सूर्येन्दुग्रहमणिप्रभारूपाकारेण विकल्पते । तथाऽस्मितायां समापन्नं चित्तं निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तमनन्तमस्मितामात्रं भवति । यत्रेदमुक्तम्—तमणुमात्रमात्मानमनुविद्यास्मीति एवं तावत् सम्प्रजानीत इति । एषा द्वयी विशोका विषयवती, अस्मितामात्रा च प्रवृत्ति-र्ज्योतिष्मतीत्युच्यते यया योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति ।

इसमें यह देखना चाहिये कि हृदय में धारणा चित्त की लिखी । इससे निर्मल प्रकाशस्वरूप चित्त होता है । जैसा सूक्ष्म विभु आकाश है, वैसी ही योगी की बुद्धि होती है । तत्र नाम अपने हृदय में विशाल स्थिति के होने से, बुद्धि की जो शुद्ध प्रवृत्ति, सोई बुद्धि सूर्य, चन्द्र, ग्रह, मणि इन्हों की, जैसी प्रभा, वैसे ही योगी की बुद्धि समाधि में होती है ।

तथा अस्मिता मात्रा अर्थात् यही मेरा स्वरूप है, ऐसा साक्षात्कार स्वरूप का ज्ञान बुद्धि को जब होता है, तब चित्त निस्तरङ्ग, अर्थात् निष्कम्प समुद्र की नाईं एकरस व्यापक होता है । तथा शान्त, निरुपद्रव, अनन्त अर्थात् जिसकी सीमा न होवे, यही मेरा स्वरूप है, अर्थात् मेरा आत्मा है, सो विगत अर्थात् शोकरहित जो प्रवृत्ति वही विषयवती प्रवृत्ति कहाती है । उसको अस्मितामात्र प्रवृत्ति कहते हैं । तथा ज्योतिष्मती भी उसी को कहते हैं । योगी का जो चित्त है, सोई चन्द्रादित्य आदिक स्वरूप हो जाता है ।

सू०—स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ (योग० समा० ३८)

भाष्य०—स्वप्नज्ञानालम्बनं निद्राज्ञानावलम्बनं वा तदाकारं योगिन-श्चित्तं स्थितिपदं लभत इति ।

जैसे स्वप्नावस्था में चित्त ज्ञानस्वरूप होके पूर्वानुभूत संस्कारों को यथावत् देखता है, तथा निद्रा अर्थात् सुषुप्ति में आनन्दस्वरूप ज्ञानवान् चित्त होता है । ऐसा ही जागृतावस्था में, जब योगी ध्यान करता है, इस प्रकार आलम्ब से तब योगी का चित्त स्थिर हो जाता है ।

सू०—यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ (योग० समा० ३९)

भाष्य०—यद्वाभिमतं तदेव ध्यायेत् तत्र लब्धस्थितिकमन्यत्रापि स्थितिपदं लभत इति । नासिकाग्रे धारयतो या गन्धसंवित् ।

इससे लेके 'निद्राज्ञानालम्बनं वा' यहां तक शरीर में जितने चित्त के स्थिर करने के वास्ते स्थान लिखे हैं, इन्हों में से कोई स्थान में योगी चित्त को धारण करे ।

जिस स्थान में अपनी अभिमति, उसमें चित्त को ठहराये ।

सू०—देशबन्धश्चित्तस्य धारणा । (योग० विभू० १)

भाष्य०—नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्र इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति । बन्धो धारणा नाभि-हृदय-मूर्द्धा-ज्योतिः ।

अर्थात् नेत्र, नासिकाग्र, जिह्वाग्र, इत्यादिक देशों के बीच में चित्त को योगी धारण करे । तथा बाह्य विषय जैसा कि ओङ्कार वा गायत्री मन्त्र, इनमें चित्त लगावे, हृदय से । क्योंकि—

तज्जपस्तदर्थभावनम् । (योग० स० पाद २८)

यह सूत्र है योग का । इसका योगी जप, अर्थात् चित्त से पुनः पुनः आवृत्ति करे । और इसका अर्थ जो ईश्वर, उसको हृदय में विचारे।

सू०—तस्य वाचकः प्रणवः । (योग० स० २७)

ओङ्कार का वाच्य ईश्वर है । और उसका वाचक ओङ्कार है । बाह्य विषय से इनको ही लेना, और कोई को नहीं । क्योंकि अन्य प्रमाण कहीं नहीं ।

सू०—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् । (योग० विभू० २)

भाष्य०—तस्मिन्देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम् ।

तीन देशों में अर्थात् नाभि आदिकों में, ध्येय जो आत्मा, उस आलम्बन की, और चित्त की एकतानता, अर्थात् परस्पर दोनों की एकता, चित्त आत्मा से भिन्न न रहे तथा आत्मा चित्त से पृथक् न रहे, उसका नाम है, सदृशप्रवाह। जब चित्त प्रत्येक चेतन से ही युक्त रहे, अन्य प्रत्यय कोई पदार्थान्तर का स्मरण न रहे, तब जानना कि ध्यान ठीक हुआ ।

सू०—तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।

(योग० विभू० ३)

जब ध्याता, ध्यान और ध्येय, इन तीनों का पृथक् भाव न रहे, तब जानना कि समाधि सिद्ध हो गई ।

सू०—त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः । (योग० विभू० ७)

यमादिक पांच अङ्गों से धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन अन्तरङ्ग हैं । और यमादिक बहिरङ्ग हैं ।

सू०—भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ (विभू० २६)
चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥
ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥
नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९॥
मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥
प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥

इत्यादिक सूत्रों से यह प्रसिद्ध जाना जाता है कि धारणादिक तीन अङ्ग आभ्यन्तर के हैं । सो हृदय में ही योगी परमाणु पर्यन्त जितने पदार्थ हैं, उनको योग ज्ञान से ही योगी जानता है । बाहर के पदार्थों से किञ्चिन्मात्र भी ध्यान में सम्बन्ध योगी नहीं रखता किन्तु आत्मा से ही ध्यान का सम्बन्ध है, और से नहीं । इस विषय में जो कोई अन्यथा कहे, सो उसका कहना सब सज्जन लोग मिथ्या ही जानें । क्योंकि—

सू०—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ (समा० २)
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ (समा० ३)

जब योगी चित्तवृत्तियों को निरोध करता है, बाहर और भीतर से उसी वक्त द्रष्टा, जो आत्मा उस चेतनस्वरूप में ही स्थिर हो जाता है, अन्यत्र नहीं।

सू०—विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् । (योग० समा० ८)

विपरीत ज्ञान जो होता है, उसी को मिथ्या ज्ञान कहते हैं । उस योगी को तो योग छोड़ के ही विपरीत होता है, अन्यथा कभी नहीं । इससे क्या आया कि कोई **योगशास्त्र से पाषाणादिक मूर्ति का पूजन कहे, सो मिथ्या ही कहता है।** इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ।

श्लोक

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यवचना ।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा राष्ट्रशरणा,
स को दान्तः शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः ॥
श्रीदयानन्दसरस्वती स्वामिना विरचितमिदमिति विज्ञेयम् ॥

मूर्तिपूजा

(पं० जगन्नाथ से छपरा में शास्त्रार्थ—मई, १८७३)

स्वामी जी छपरा पधारे तो जनता को उनके शुभ आगमन की सूचना देने व अवैदिक पाखण्डों पर उनके समर्थकों को शास्त्रार्थ के लिए आहूत

करने के लिये नगर में विज्ञापन वितरण किया गया । छपरा में यदि कोई पं० स्वामी जी से शास्त्रार्थ कर सकता था तो पं० जगन्नाथ थे । पौराणिक वर्ग उन्हीं के पास गये, और उनसे जाकर प्रार्थना की कि महाराज चलिये और नास्तिक दयानन्द से धर्म की रक्षा कीजिये । परन्तु पण्डित जी शास्त्रार्थ के नाम से कानों पर हाथ धर गये । उन्होंने कहा कि शास्त्रार्थ करने से मुझे नास्तिक का मुख देखना पड़ेगा जिसका शास्त्रों में निषेध है और मैंने ऐसा किया भी तो मुझे कठोर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ।

पण्डित जी के यह वचन सुनकर पौराणिक धर्म के पृष्ठपोषकों की आशाओं पर पाला पड़ गया । और वे तेजोहीन और हताश होकर वापस चले आये । महाराज ने जब यह सुना तो उन्होंने पण्डित जगन्नाथ को इस उलझन से निकालने का एक विलक्षण परन्तु सरल उपाय बताया । उन्होंने कहा कि यदि पण्डित महोदय मेरा मुख नहीं देखना चाहते हैं तो **मेरे सामने एक पर्दा डाल दिया जाय और वे उसकी ओट में शास्त्रार्थ कर लें** परन्तु शास्त्रार्थ करें तो सही ।

अब तो पण्डित जी भी निरुपाय हो गये । जो प्रधान आक्षेप उन्हें था वह भी न रहा और उन्हें शास्त्रार्थ के लिये क्षेत्र में आना ही पड़ा । वह सभास्थल में दलबल सहित पधारे । **महाराज के मुख के सामने वास्तव में पर्दा डाला गया ।** एक ओर महाराज बैठे और दूसरी ओर पण्डित जगन्नाथ आसन पर सुशोभित हुए और विचित्र और मनोरंजक ढंग से शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ ।

प्रथम स्वामी जी ने पण्डित जी से कुछ प्रश्न स्मृतियों में से किये, जिनका उत्तर पण्डित जी ने दिया तो सही, परन्तु उनकी संस्कृत व्याकरण की अशुद्धियों से भरी हुई थी और उनका उत्तर भी स्मृतियों के कथनानुसार न था । स्वामी जी ने उनकी अशुद्धियों का भरी सभा में वर्णन किया और उनके उत्तर की पोल खोली । स्वामी जी के बेरोक-टोक, स्पष्ट, सुगम और ललित संस्कृत में भाषण और पण्डित जी के उत्तर की भाषा और भाव की अशुद्धियों और दोषों के स्पष्टीकरण से पण्डित जी के मुंह पर मुहर लग गई और उन्होंने हूं हां तक न की । पण्डित जी की इस दशा व दुर्दशा को देखकर जनता को विश्वास हो गया कि पण्डित जगन्नाथ पाण्डित्य में शून्य हैं और उनका पक्ष भी निर्बल और वेद के प्रतिकूल है । (लेखराम पृ० २२७)

मूर्तिपूजा

(पण्डित दुर्गादास डुमराओं निवासी से शास्त्रार्थ—अगस्त १८७३)

नोट—२६ जौलाई, सन् १८७३ से ८ अगस्त, सन् १८७३ तक स्वामी जी रियासत डुमराओं में ठहरे थे । उसी बीच में पण्डित दुर्गादास डुमराओं निवासी से उनका यह शास्त्रार्थ हुआ था । महाराजा साहब डुमराओं ने रायबहादुर दीवान जयप्रकाश जी के द्वारा पण्डित दुर्गादत्त जी को बुलाया और स्वामी जी को भी रेलवे वाली कोठी से तालाब के ऊपर वाली कोठी पर बुलाया। राजा साहब और दीवान साहब के अतिरिक्त वहां तीन सौ के लगभग मनुष्य थे । पण्डित जी चूंकि महादेव के पुजारी थे और यह निश्चय हो चुका था कि शास्त्रार्थ मूर्तिखण्डन पर नहीं होगा इसलिये पण्डित जी इस विचार से कि मूर्ति के बिना यात्रा करनी पाप है—शिवलिंग की मूर्ति साथ ले गये और अपने सामने कुर्सी पर रख दी और वार्ता आरम्भ हुई—

स्वामी जी—हम द्वैत मानते हैं । **पण्डित जी** ने कहा कि इस श्रुति **''एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म''** से विरोध होता है अर्थात् आप का द्वैत मानना इस के विरुद्ध है ।

स्वामी जी—इसका यह अर्थ नहीं जो आप समझे । इसका यह अर्थ है कि जैसे किसी के घर में कोई उपस्थित न हो तो वह कहता है कि यहां मैं एक ही हूं और कोई नहीं परन्तु गांव वाले और नाते कुटुम्ब का निषेध नहीं । वे विद्यमान हैं, उनका अस्वीकार नहीं । इसलिए सजातीय तथा जाति स्वगत भेद शून्य जो शङ्कराचार्य का मत है वह मिथ्या है, हम उसको नहीं मानते । यहां केवल दूसरे ब्रह्म का निषेध है न कि जीव का ।

पण्डित जी—इस सिद्धान्त को तो हम नहीं मानते ।

स्वामी जी—शङ्कराचार्य के सिद्धान्त को न मानने में हमने तो युक्ति दी है । परन्तु जो आप मानते हो तो आपके पास क्या प्रमाण है ?

इसका उन्होंने कोई उत्तर न दिया ।

स्वामी जी ने मूर्ति के विषय में आक्षेप किया कि मूर्तिपूजा में श्रुति का प्रमाण नहीं ।

पण्डित जी ने—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

(यजु० ३१।११)

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । (यजु० ३।६०)

यह दो श्रुति प्रमाण दीं कि यदि मुख नहीं तो चारों वर्णों की उत्पत्ति कैसे हुई और मूर्ति नहीं तो मुख कहां से आया और दूसरा मन्त्र विशेष शिव की पूजा का है जिसके तीन नेत्र हैं और जाबालोपनिषद् में लिखा है—

धिक् भस्मरहितं भालं धिक् ग्राममशिवालयम् ।

इत्यादि प्रमाणों से मूर्तिपूजा सिद्ध है । आप कैसे कहते हैं कि मूर्तिपूजा में श्रुति प्रमाण नहीं है ।

स्वामी जी ने प्रथम उन दो मन्त्रों का व्याकरण और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार यथार्थ अर्थ करके उनके भ्रम को निवारण करने का प्रयत्न किया और बताया कि प्रामाणिक उपनिषदों में जाबाल नहीं है, वह जालोपनिषद् है—उसमें किसी ने वाक्यजाल रचा है । वेद के विरुद्ध है इसलिए अप्रमाण है । इस पर पण्डित जी ने कुछ उत्तर न दिया । समस्त श्रोतागण परिचित तथा स्वयं दीवान साहब साक्षी हैं ।

फिर गीता के श्लोक ''सर्वधर्मान् परित्यज्य'' पर कुछ बातचीत होकर हंसी खुशी से सभा विसर्जित हुई । (लेखराम २२८-२२९)

अग्नि शब्द का क्या अर्थ है ?

(मोहम्याह नीलकण्ठ घोरी क्रिश्चियन से प्रयाग में संवाद)

बुधवार, १ जौलाई, सन् १८७४ के अन्त तक स्वामी जी प्रयाग में रहे। मोहम्याह नीलकण्ठ घोरी नामक एक क्रिश्चियन मरहठा जेण्टलमैन प्रोफेसर मैक्समूलर का किया हुआ ऋग्वेदभाष्य ले आया । यह बतलाने के लिए कि **अग्नि के अर्थ केवल आग के हैं, ईश्वर के नहीं ।** स्वामी जी ने उसको यह उत्तर दिया कि यदि प्रोफेसर मैक्समूलर ने वेदमन्त्रों का भाष्य करने के लिए केवल इन्हीं अर्थों का प्रयोग किया है तो कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि एक पक्षपातपूर्ण ईसाई होने के कारण उसकी हार्दिक इच्छा है कि वेदार्थ को बिगाड़े ताकि भारतवासी अज्ञानता में फंसकर वेदों को छोड़ दें और बाइबिल को ग्रहण करें । अतः उसके पक्षपातपूर्ण होने के कारण उसका भाष्य प्रामाणिक नहीं हो सकता । तत्पश्चात् स्वामी जी ने हिन्दू मरहठों के सामने जिन्होंने अपने हिन्दू धर्म से भटके हुए भाई को आपना धार्मिक अगुआ (अधिवक्ता) बनाया था—ईसाइयों के ईश्वर के विषय में अज्ञानतापूर्ण विचारों को प्रकट करने के लिये तौरेत बाबल के बुर्ज वाली कहानी की ओर सङ्केत किया जिसमें यह लिखा है कि प्राचीन पाश्चात्य जातियों ने ईसाइयों की देवमाला में आकाश

पर चढ़ने का यत्न किया । उनके इस साहसपूर्ण निश्चय से ईसाइयों का ईश्वर चौंक पड़ा । अत्यन्त भयभीत होकर अपने बचाव के लिये बाबल के बुर्ज बनाने वालों की वाणी में गड़बड़ कर दी जो एक दूसरे की बात को समझने के अयोग्य होकर काम छोड़ बैठे और ईश्वर मनुष्यों के इस बर्बरतापूर्ण आक्रमण से बच गया ।

ईसाइयों के ईश्वर का अपनी ही सृष्टि से डर जाना अत्यन्त अद्भुत और वर्णन से बाहर की बात है । निस्सन्देह वे अत्यन्त ही असभ्य होने चाहियें जिन्होंने कि आकाश की प्रकट और दिखलावे की महराबदार छत को परिमित ऊंचाई समझकर उस पर कृत्रिम साधनों से चढ़ना सम्भव समझा। इससे यह प्रतीत होता है कि ईसाइयों का विश्वास है कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक और द्रष्टा नहीं प्रत्युत इसके विपरीत वह एक विशेष स्थान में सीमित है जिसके विषय में वे ठीक-ठीक नहीं बतला सकते ।

ईसाई मरहठे ने इस आक्षेप का कुछ उत्तर न दिया परन्तु उसके और हिन्दू भाई कुछ बोले और विशेषतया काशीनाथ शास्त्री ने अत्यन्त धृष्टतापूर्ण शब्दों में स्वामी जी से पूछा कि—**किस प्रयोजन के लिये समस्त देश में कोलाहल कर रखा है ।**

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मुझ से पहले पण्डितों ने बड़ी धूर्तता फैलाई है और उनकी बुद्धि पत्थरों के पूजने से पथरा गई है अर्थात् उनकी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं । जिसके कारण वे सत्य के सिद्धान्त को न समझ सके । शास्त्री फिर मौन होकर अपने मित्रों सहित चला गया ।

(लेखराम पृष्ठ २४२)

वल्लभ मत

(वल्लभाचार्य-मतवालों के साथ शास्त्रार्थ बम्बई में— १६ नवम्बर, १८७४)

बम्बई पहुंचकर जब स्वामी जी को वल्लभाचार्य मत का समस्त वृत्तान्त विदित हुआ तो उसका यथार्थ ज्ञान हो जाने के पश्चात् उन्होंने लगातार उस मत के खण्डन और उसकी पोल खोलने के लिये भाषण देने और उपदेश करने आरम्भ किये और ब्रह्म सम्बन्ध वाले मन्त्र की भी जिससे वह चेले और चेलियों का तन मन धन अपने अर्पण कराके ब्रह्म सम्बन्ध कराते हैं अच्छी प्रकार छीछालेदर की । गुसाईं जी की बहुत हानि होने लगी तब जीवन जी गुसाईं ने स्वामी जी के सेवक बलदेवसिंह जी कान्यकुब्ज ब्राह्मण को

बुलाकर कहा कि **तुम को मैं एक हजार रुपया दूंगा यदि स्वामी जी को मार दो।** उसी समय पांच रुपया नकद और ५ सेर मिठाई प्रसाद के रूप में दी और हजार रुपये देने की प्रतिज्ञा करके एक रुक्का (प्रतिज्ञापत्र) लिख दिया। बलदेवसिंह अभी स्वामी जी के पास पहुंचा नहीं था उनको सूचना मिल गई कि तुम्हारा रसोइया जीवन जी के पास खड़ा है। जब वह पहुंचा तब स्वामी जी ने पूछा कि तुम गोकुलियों के मन्दिर में गये थे?

बलदेवसिंह—हां महाराज गया था।

स्वामी जी—क्या ठहरा?

बलदेवसिंह—पांच रुपया नकद और पांच सेर मिठाई और यह रुक्का लिखकर दिया है कि मार दो तो हजार रुपये ले लो।

स्वामी जी—मुझ को कई वार विष दिया गया है परन्तु मरा नहीं। बनारस में विष दिया गया, कर्णवास में राव कर्णसिंह चक्राङ्किती ने पान में विष दिया तब भी नहीं मरा और अब भी नहीं मरूंगा।

बलदेवसिंह—महाराज मेरे कुल का काम विष देना नहीं है और फिर ऐसे को जिससे समस्त जगत् को लाभ पहुंच रहा है।

स्वामी जी ने मिठाई फिंकवा दी और रुक्का फाड़कर फेंक दिया और कहा कि "सावधान, भविष्य में उनके यहां कभी मत जाना।"

(लेखराम पृ० २४६)

अज्ञातनामा के प्रश्नों का उत्तर

बम्बई के रहने वाले किसी अज्ञात "प-ग-न" नाम ने कार्तिक शुक्ल ४, शुक्रवार, संवत् १९३१ को २४ प्रश्न छपवाकर स्वामी जी के पास भिजवाये। स्वामी पूर्णानन्द ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की सम्मति से इन प्रश्नों के उत्तर में निम्नलिखित विज्ञापन-पत्र प्रकाशित किया—

"विज्ञापन-पत्र"

विदित हो कि जैसा स्वामी नारायण है वैसा मैं नहीं हूं और जिस प्रकार जयपुर नगर के गोसाईं की पराजय हुई—ऐसा भी मैं नहीं हूं। बम्बई नगर के निवासी किसी एक हरिभक्तों के चरणों के इच्छुक "प-ग-न" ऐसे गुप्त नाम वाले पुरुष के संवत् १९३१, कार्तिक शुक्ल पक्ष ४, शुक्रवार को "ज्ञानदीपक" यन्त्रालय के छपे हुए २४ प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है—

पहले प्रश्न का उत्तर—प्रत्यक्षादि प्रमाणों को स्वीकार करता हूं।

दूसरे प्रश्न का उत्तर—**चारों वेदों को प्रमाण मानता हूं ।**

तीसरे प्रश्न का उत्तर—चारों संहिताओं को प्रमाण मानता हूं परन्तु परिशिष्ट को छोड़कर (अर्थात् परिशिष्ट को प्रमाण नहीं मानता, वह अप्रमाण है) ब्राह्मणादिकों को मैं मत के रूप में स्वीकार नहीं करता परन्तु उनके रचयिता जो ऋषि हैं उनकी वेद विषय में कैसी सम्मति है, यह जानने के लिए अध्ययन करता हूं कि उन्होंने कैसा अर्थ किया है और उनका क्या सिद्धान्त है ।

चौथे प्रश्न का उत्तर—तीसरे में समझ लेना ।

पांचवें का उत्तर—शिक्षादिक जो वेदाङ्ग हैं और उनके कर्ता जो मुनि हैं उनकी वेद के विषय में कैसी सम्मति है यह जानने के लिये देखता हूं। उनको मत मान के स्वीकार नहीं करता ।

छठे का उत्तर—वेद, वेदाङ्ग, भाष्य और उनके व्याख्यान जो आर्ष अर्थात् ऋषिप्रणीत हैं उनको मत मानकर स्वीकार नहीं करता किन्तु परीक्षा के लिये वे ठीक किये गये हैं वा नहीं किये गये इसलिये देखता हूं, वह मेरा मत नहीं है ।

सातवें का उत्तर—जैमिनिकृत पूर्वमीमांसा, व्यासकृत उत्तरमीमांसा, चरणव्यूह—इनको भी मत मानकर संग्रह नहीं करता किन्तु इनके मत की परीक्षा के लिये देखता हूं, और प्रकार नहीं ।

आठवें का उत्तर—**पुराण, उपपुराण, तन्त्रग्रन्थ, इनके अवलोकन और अर्थ में श्रद्धा ही नहीं करता, इनके प्रमाण की कथा तो क्या कथा है ।**

नववें का उत्तर—**सारा भारत और वाल्मीकिरचित रामायण का प्रमाण नहीं** क्योंकि लोक में बहुत प्रकार व्यवहार है । उनके वृत्तान्त का जानना ही उनका अभिप्राय है क्योंकि वे मर चुके हैं ।

दसवें का उत्तर भी नववें में समझ लेना ।

ग्यारहवें का उत्तर—मनुस्मृति को मनु का मत जानने के लिये देखता हूं । उसको इष्ट समझ कर नहीं ।

बारहवें का उत्तर—याज्ञवल्क्यादि और मिताक्षरादि का तो प्रमाण ही नहीं करता ।

तेरहवें का उत्तर—बारहवें में समझ लेना ।

चौदहवें का उत्तर—विष्णुस्वामी आदि जो सम्प्रदाय हैं उनका प्रमाण मैं लेशमात्र भी नहीं करता प्रत्युत उनका खण्डन करता हूं क्योंकि ये सारे सम्प्रदाय वेद-विरुद्ध हैं ।

पन्द्रहवें का उत्तर चौदहवें में समझ लेना ।

सोलहवें का उत्तर–मैं स्वतन्त्र नहीं हूं प्रत्युत वेद का अनुयायी हूं, ऐसा समझना चाहिये ।

सत्रहवें का उत्तर–जगदुत्पत्ति जैसी वेद में लिखी है और जिसने की है, उस सारे को उसी प्रकार मानता हूं ।

अठारहवें का उत्तर–**जिस समय से सृष्टि का क्रम हुआ है उस काल की कोई संख्या नहीं है, यह जानना चाहिये ।**

उन्नीसवें का उत्तर–वेदोक्त जो यज्ञादि कर्म हैं वे यथाशक्ति सब करने चाहियें ।

बीसवें का उत्तर–वेदोक्त जो विधि है वह माननी चाहिये, और नहीं।

इक्कीसवें का उत्तर–**शाखाओं में जो कर्म कहे हुए हैं वे वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं,** विरुद्ध होने से नहीं ।

बाईसवें का उत्तर–**परमेश्वर का कदाचित् जन्म-मरण नहीं होता।** (जिसके जन्म-मरण होते हैं, वह ईश्वर ही नहीं है।) सर्वशक्तिमान् होने से, अन्तर्यामी होने से, निरवयव होने से, परिपूर्ण होने से, न्यायकारी होने से ।

तेईसवें का उत्तर–मैं संन्यासाश्रम में हूं ।

चौबीसवें का उत्तर–**सत्यधर्म-विचार नामक पुस्तक जिसने यन्त्रालय में छपवाई, उसका मत उसमें है, मेरा उसके मत में आग्रह नहीं ।**

यदि हम आर्य्य लोग वेदोक्त धर्म के विषय में प्रीतिपूर्वक पक्षपात को छोड़कर विचार करें तो सब प्रकार कल्याण ही कल्याण है, यही मेरी इच्छा है । तिसके लिये नित्य सभा होनी चाहिए तो श्रेष्ठ समझो । **जिस प्रकार से बहुत प्रकार के सम्प्रदायों का नाश हो जाये वैसा सब को करना चाहिये ।**

परन्तु १३, १४, १५ प्रश्नों का पीसे को फिर पीसना है। उसके समान पुनरुक्त दोष से दूषित को न समझकर यह मैं ने जाना कि जिसको प्रश्न करने का ज्ञान नहीं उसके समागम में उचित विचार किस प्रकार हो सकेगा। ऐसी मेरी सम्मति है क्योंकि जहां भोजन की ही चिन्ता है वहां धन का एकत्रित होना असम्भव है और जिसने प्रश्न किये उसने अपना नाम भी नहीं लिखा, यह भी एक दोष है । ऐसा सज्जनों को समझना चाहिए । इसमें स्वामी जी की सम्मति है । इसके उपरान्त जो कोई अपना प्रकट नाम लिखने के विना प्रश्न करेगा, उसका उत्तर उसी से दिलाऊंगा और जिस सम्प्रदाय को जो मानता है उसको संक्षेपतया जब तक न कहेगा तब तक उसका भी उसी से दिलाऊंगा। प्रसिद्धकर्त्ता स्वामी पूर्णानन्द, कार्तिक शुक्ल ७, सोमवार, संवत् १९३१,

तदनुसार १६ नवम्बर, सन् १८७४ । उसके पश्चात् न तो उस पहले प्रश्नकर्त्ता ने मुख दिखलाया और न किसी और ने सम्मुख होकर शास्त्रार्थ किया और न गिट्टूलाल शास्त्री आदि वैष्णव मत के विद्वानों ने कभी शास्त्रार्थ करने का नाम लिया और न कभी स्पष्ट अपना नाम लिखकर कोई विज्ञापन प्रकाशित किया । रणक्षेत्र का वीर बनकर सामने आना और मूर्तिपूजा को वेदानुकूल सिद्ध करना तो नितान्त असम्भव और जान का जंजाल हो गया ।

(लेखराम पृ० २४६-२४८)

मूर्तिपूजा

(भडौंच में पण्डितों से शास्त्रार्थ–दिसम्बर, १८७४)

स्वामी जी के व्याख्यान भडौंच में नर्मदा के तट पर भृगु ऋषि की धर्मशाला में हुए । पहले व्याख्यान की समाप्ति पर पण्डित माधवराव त्र्यम्बकराव स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को सम्मुख आये। पण्डित माधव राव दक्षिणी ब्राह्मण थे । और अनेक सम्भ्रान्त लोग उनके शिष्य थे । वे थे तो गृहस्थी, परन्तु महन्त समझे जाते थे और भडौंच के लोग उनका बहुत सम्मान करते थे कट्टर सनातनी और दाम्भिक थे । वे सभा में शास्त्रार्थ करने के अभिप्राय से ही आये थे और अपने अनेक शिष्यों को साथ ले आये थे। उनके एक शिष्य ने स्वामी जी से कहा कि पण्डित माधवराव आपसे शास्त्रार्थ करने के इच्छुक हैं । स्वामी जी के यहां क्या देर थी ? उन्होंने तुरन्त उत्तर दे दिया कि हम उद्यत हैं । इस पर पण्डित माधवराव आगे आये और निम्न प्रकार प्रश्नोत्तर हुए ।

दया०–आपने क्या पढ़ा है ?

माधव०–कौमुदी आदि व्याकरण और कुछ काव्य पढ़ा है ।

दया०–जब आपने वेदादि आर्ष ग्रन्थ पढ़े ही नहीं तो आप उनके विषय में शास्त्रार्थ कैसे करोगे ?

माधव०–मैंने कुछ ऋग्वेद भी पढ़ा है ।

दया०–चारों वेदों में से किसी मन्त्र को लेकर उसका पदच्छेद पूर्वक अर्थ करके दिखलाइये कि उससे मूर्तिपूजा सिद्ध होती है । **फिर मैं आर्ष ग्रन्थों की रीति के अनुकूल उसका अर्थ करूंगा** और तत्पश्चात् आपके और अपने अर्थ काशी आदि स्थानों के बड़े-बड़े पण्डितों के पास भेज दिये जायेंगे कि वे किसके अर्थों का अनुमोदन करते हैं ।

स्वामी जी के इतना कहते ही पण्डित कृष्णराम ने चारों वेदों के पुस्तक स्वामी जी के सामने लाकर रख दिये । तब स्वामी जी ने कहा कि चारों वेदों में से किसी वेद का कोई मन्त्र निकालकर अर्थ कीजिए। पं० माधवराव ने ऋग्वेद का एक मन्त्र निकाला और उसका अर्थ करने लगे स्वामी जी ने पद-पद पर उनके अर्थों की अशुद्धि दिखानी आरम्भ की । परिणाम यह हुआ कि पण्डित माधवराव थोड़ी ही देर में चुप होकर बैठ गये । तब स्वामी जी ने उनसे कहा कि अभी आप कुछ और पढ़िए और तब शास्त्रार्थ करने आइए। माधवराव ने समझा कि स्वामी जी मेरा अपमान करते हैं, विशेषकर शिष्यों के सामने, इस प्रकार के पराजय से वह बहुत क्रोध में आये और उसी दशा में अपने शिष्यों सहित सभा से उठकर चले गये । शास्त्रार्थ के बीच में ही माधवराव का एक शिष्य स्वामी जी की ओर हाथ करके उनके लिए कुछ अपशब्द कह बैठा था । इस पर बलदेवसिंह को इतना आवेश आया कि वह खड़े हो गये और कड़क कर बोले कि क्या तुम श्रीमहाराज का अपमान करने आये हो, मेरी उपस्थिति में ऐसा नहीं हो सकता । स्वामी जी माधवराव के शिष्य के असभ्य व्यवहार से तनिक भी धैर्य्यच्युत नहीं हुए । वे गम्भीर जलवत् शान्त रहे । उन्होंने बलदेवसिंह को यह कहकर शान्त कर दिया कि क्यों क्रोध करते हो, यह भी तो हमारा भाई है ।

(देवेन्द्रनाथ १।३०९)

मूर्तिपूजा और अद्वैतवाद

(पं० महीधर व पं० जीवनराम शास्त्री से शास्त्रार्थ राजकोट में– जनवरी १८७५)

महाराज के उपदेशों से लाभ उठाने अनेक लोग उनके पास आते थे । कोई-कोई किसी विषय पर वाद-प्रतिवाद भी करते थे । एक दिन पं० महीधर और जीवनराम शास्त्री उनके साथ मूर्तिपूजा और अद्वैतवाद पर शास्त्रार्थ करने आये । पण्डित महीधर ने पहले मूर्तिपूजा सिद्ध करने का प्रयास किया, परन्तु स्वामी जी ने शीघ्र ही उन्हें निरुत्तर कर दिया । फिर उन्होंने वेदान्त पर बातचीत की । स्वामी जी ने उनसे कहा कि **यदि आप ब्रह्म हैं तो अपने शरीर के साढ़े तीन करोड़ लोमों में से एक को उखाड़ कर पुनः स्थापित कर दीजिये ।** ब्रह्म सर्वज्ञ और आप अल्पज्ञ हैं, फिर आप ब्रह्म कैसे हो सकते हैं ? इस पर पं० महीधर कुछ न कह सके और निरुत्तर हो गये ।

(देवेन्द्रनाथ १।३१७, लेखराम पृ० २५३)

मूर्तिपूजा

(अहमदाबाद में पण्डितों से शास्त्रार्थ–जनवरी १८७५)

२७ जनवरी को राव बहादुर विट्ठलदास के गृह पर एक सभा हुई। जिसका उद्देश्य स्वामी जी की विदासूचक संवर्द्धना करना और आर्यसमाज-स्थापना के विषय में परामर्श करना था । सभा में बेचरदास अम्बाईदास, गोपालराव हरि देशमुख, भोलानाथ साराभाई, अम्बालाल सागरलाल प्रभृति महानुभाव उपस्थित थे । इसके अतिरिक्त शास्त्रीगण भी थे । जिनमें से कुछ के नाम ये हैं–शास्त्री सेवकराम, लल्लूभाई बापू जी, भोलानाथ भगवान् ।

शास्त्रीगण कहते थे कि मूर्तिपूजा हमारे शास्त्रों के अनुकूल है । इस पर बेचरदास अम्बाईदास ने उनसे कहा कि स्वामी जी आपसे शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हैं, आप उनसे शास्त्रार्थ क्यों नहीं कर लेते ? परन्तु शास्त्री लोग इस पर सहमत नहीं हुए । उनसे शास्त्रार्थ न करने का कारण पूछा गया । उन्होंने कहा कि स्वामी जी ने–

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ।
हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

यजु० ३३।४३॥

वेदमन्त्र का अर्थ अशुद्ध किया है । इस पर सब लोगों ने पण्डितों से अपना अर्थ करने का अनुरोध किया और कहा कि यह प्रतिपादित करो कि स्वामी जी ने भूल की है और आपका अर्थ ठीक है । अपने किए हुए अर्थों के नीचे अपने हस्ताक्षर कर दो । कुछ पण्डित तो सहमत हो गये और उन्होंने अर्थ करके हस्ताक्षर कर दिये और कुछ इस पर भी सहमत न हुए । स्वामी जी ने निम्न अर्थ करके उस पर हस्ताक्षर कर दिये ।

स्वामी जी के किये अर्थ–

(आकृष्णेन) आकर्षणात्मना (रजसा) रजोरूपेण रजतस्वरूपेण वा (रथेन) रमणीयेन (देवः) द्योतनात्मकः (सविता) प्रसवकर्त्ता वृष्ट्यादेः (मर्त्यम्) मर्त्यलोकम् (अमृतम्) ओषध्यादिरसं (निवेशयन्) प्रवेशयन् (भुवनानि पश्यन्) दर्शयन् (याति) रूपादिकं विभक्तं प्रापयतीत्यर्थः (हिरण्ययेन) ज्योतिर्मयेन ।

(सविता) सर्वस्य जगत्–उत्पादकः (देवः) सर्वस्य प्रकाशकः (मर्त्यम्) मर्त्यलोकस्थान् मनुष्यान् (अमृतम्) सत्योपदेशरूपम् (निवेशयन्) प्रवेशयन् सर्वाणि (भुवनानि) सर्वज्ञतया (पश्यन्) सन् (आकृष्णेन) सर्वस्याकर्षणस्वरूपेण परमाणूनां धारणेन वा (रथेन) रमणीयेनानन्दस्वरूपेण वर्त्तमानः सन् (याति)

धर्म्मात्मनः स्वान् भक्तान् सकामान् प्रापयतीत्यर्थः ।

संवत् १९३१ पौष बदि षष्ठी, बुधवार, ७ काल, ४० मिनट सही सम्मतिरत्र दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः ।

शास्त्रियों के किये अर्थ–

(आकृष्णेन) ईषत्कृष्णेन (रजसा वर्तमानः) सहितः (सविता देवः) सूर्य्यः (अमृतम्) स्वर्गं (मर्त्यम्) भूलोकं (निवेशयन्) स्वस्वप्रदेशेषु स्थापयन् (हिरण्ययेन रथेन) स्यन्दनेन (भुवनानि पश्यन् याति) गच्छति ।

सही– लल्लूभाई बापूशास्त्रिणः सम्मतोऽयमर्थः ।
शास्त्री सेवकराम रामनाथः ।
सम्मतिरत्र भास्करशास्त्रिणः ।
सम्मतिरत्र अमृतरामशास्त्रिणः ।

इसके पश्चात् स्वामी जी ने एक वक्तृता दी जिसमें कहा कि सब को वेदों का अनुकरण करना चाहिये ।

गोपालरावहरि, भोलानाथ, अम्बालाल आदि ने दोनों के अर्थों को देख और समझकर कहा कि शास्त्री अविवेकी और दुराग्रही हैं, स्वामी जी का किया अर्थ ही ठीक है ।

इस मन्त्र का जो अर्थ स्वामी जी ने किया था, उस पर उन निष्कारण वैरी पण्डित विष्णुपरशुराम शास्त्री ने बहुत आक्षेप किया और उसे अशुद्ध बताया था । उसके सम्बन्ध में स्वामी जी ने अपने एक पत्र में संवत् १९३१, फाल्गुन शुक्ला ९ को गोपालराव हरि देशमुख को लिखा था कि उस विष्णु शास्त्री के विषय में एक बानगी लिखते हैं कि 'ऋ गतिप्रापणयोः' इस धातु से रथ शब्द सिद्ध होता है । 'रमु क्रीडायाम्' इस धातु से नहीं, इससे यह अर्थ निर्युक्त और निर्मूल है । ऐसी मूर्खता कोई विद्यार्थी भी नहीं करेगा । स्वामी जी ने लिखा है कि पाणिनिमुनिरचित उणादिगण का सूत्र प्रमाण है–

'हनि-कुषि-नी-रमि-काशिभ्यः' क्थन् । हथः, कुष्ठः, निथः, रथः, काष्ठम् ।

यास्को निरुक्तकारः–रथो रंहतेर्गतिकर्मणः इत्यत्र रममाणो-ऽस्मिंस्तिष्ठतीति वेति ॥

इससे 'रम' धातु से ही रथ शब्द सिद्ध होने से ''रमणीयो रथो रमतेऽस्मिन्निति वा ।''

इन प्रमाणों को देखते हुए कौन कह सकता है कि विष्णुपरशुराम शास्त्री ने स्वामी जी पर रथ शब्द की निरुक्ति को अशुद्ध कहकर अपने नाम और

विद्वत्ता को कलङ्कित नहीं किया ? उनका ऐसा करना केवल छिद्रान्वेषण करने के अभिप्राय से ही था ।

उपर्युक्त प्रचार से वेदार्थविषयक बातचीत होने के पश्चात् शास्त्रियों का स्वामी जी से मूर्तिपूजा और वर्णाश्रम पर भी वार्तालाप हुआ था । शास्त्रियों ने भोलानाथ साराभाई और अम्बालाल सागरमल को मध्यस्थ बनाया था । विचार की समाप्ति पर दोनों ही मध्यस्थों ने अपनी सम्मति स्वामी जी के पक्ष में व शास्त्रियों के विरुद्ध दी थी । अन्त में लोगों ने स्वामी जी को धन्यवाद दिया और गोपालराव हरि देशमुख ने उनके भाषण से सन्तुष्ट होकर उन्हें एक सुन्दर पीताम्बर भेंट किया ।

रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुख पहले वेदों के विरोध में लेख और पुस्तक लिखा करते थे । स्वामी जी के बम्बई में दर्शन, सत्संग और व्याख्यान-श्रवण से उनका संशयोच्छेदन हो गया और वे स्वामी जी के भक्त बन गये । स्वामी जी उन्हीं के निमन्त्रण पर अहमदाबाद गये थे ।

(देवेन्द्रनाथ १।३२३, लेखराम पृ० २५८)

व्याकरण एवं नियोग

(बम्बई में पण्डितों से शास्त्रार्थ–मार्च, १८७५)

किसी कारण से बम्बई के पण्डितों की यह धारणा हो गई थी कि स्वामी जी व्याकरण में बहुत व्युत्पन्न नहीं हैं । अतः उन्होंने सोचा कि यदि **दयानन्द को व्याकरण विषयक शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया जायेगा** तो उनकी ख्याति और प्रभाव मन्द पड़ जायेंगे और फिर धर्म्म-विषय में भी लोग उनके कथन में श्रद्धा और विश्वास न करेंगे । अतः उन्होंने उक्त विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए स्वामी जी को आहूत किया । ज्यों ही शास्त्रीगण के यह शब्द महाराज के कर्णगोचर हुए, त्यों ही उन्होंने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और शास्त्रार्थ की तिथि १० मार्च, सन् १८७५ नियत हो गई ।

नियत दिवस और समय पर सभा-मण्डप में अपूर्व चहल-पहल दिखाई देने लगी । बड़े-बड़े सेठ आये, साहूकार आये, बैरिस्टर और सालिसिटर आये, कालेजों के महोपाध्याय और स्कूलों के उपाध्याय आये, शिक्षित लोग भी आये और अशिक्षित भी, उष्णीषमण्डित पण्डित आये और दयानन्द को पराजित करने की आशा साथ लाये । दयानन्द भी आये, उनका मुखमण्डल सदा की भांति प्रसन्न था, उस पर न चिन्ता की रेखा थी और न भय का चिह्न । सभास्थल में एक बड़ा सिंहासन बनाया गया था और उस पर वेदादि की पुस्तकें प्रमाण

के लिये रक्खी गई थीं। स्वामी जी आकर सिंहासन पर विराजमान हो गये। पण्डितों ने इस पर आपत्ति की तो स्वामी जी ने कहा कि हम संन्यासी होने के कारण बैठे हैं । आप लोग हम से कुछ प्रश्न करें, यदि हम उत्तर न दे सकेंगे तो हम सिंहासन से उतर जायेंगे और आप बैठ जाना ।

श्री आत्माराम बापू-दल शास्त्रार्थ-सभा के सभापति पद पर प्रतिष्ठित हुए । पण्डितों की ओर से पण्डित खेम जी बाल जी जोशी ने भाषण आरम्भ किया । जोशी जी वाक्पटु समझे जाते थे, अतः श्रोतृवर्ग उनके कथन को उत्कण्ठा और आशा से सुनने लगे । परन्तु जोशी जी ने प्रकृत विषय पर तो कुछ नहीं कहा, इधर-उधर की बातें कहनी आरम्भ कर दीं । श्रोता उकताने लगे और उनकी ओर से जोशी जी को चुप कराने की चेष्टा होने लगी । परन्तु वे चुप होने वाले न थे, वे अप्रासङ्गिक बातें कहते ही रहे । अन्त में श्रोतृगण उनकी बातों से सर्वथा विरक्त हो गये और उन्हें अधिक समय नष्ट करने का अवकाश देने से श्रोताओं ने इन्कार कर दिया । इस पर जोशी जी को चुप होना ही पड़ा । तत्पश्चात् **पण्डित इच्छाशंकर सुकुल ने स्वामी जी से व्याकरण सम्बन्धी प्रश्न आरम्भ किये । स्वामी जी उनके उत्तर देते रहे ।** जब पण्डित इच्छाशङ्कर के प्रश्न समाप्त हो गये और वे स्वामी जी के उत्तरों पर कोई आपत्ति न कर सके तो फिर स्वामी जी ने उनसे प्रश्न करने आरम्भ किये । पण्डितों के उत्तर लिखे गये और स्वामी जी ने महाभाष्यादि ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा उनके उत्तरों को भ्रमपूर्ण सिद्ध कर दिया । पण्डितगण स्वामी जी के आक्षेपों का निराकरण न कर सके और विवश होकर उन्हें अपनी भ्रान्ति स्वीकार करनी पड़ी । सब लोगों को प्रतीत हो गया कि पण्डित वर्ग तो स्वामी जी से क्या उनके शिष्यों से भी तर्क करने की योग्यता नहीं रखता ।

तत्पश्चात् पण्डितों ने नियोग पर कुछ आक्षेप किया जिन का उत्तर स्वामी जी ने इस ढंग से और ऐसी योग्यता और प्रबल युक्तियों से दिया कि पण्डितों को अनन्योपाय होकर मौन ही धारण करना पड़ा । पण्डितों की इस बार भी स्वामी जी को परास्त करने की आशा निराशा में ही परिणत हुई और वे खिन्न और विषादपूर्ण हृदयों के साथ घरों को लौटकर आये ।

(देवेन्द्रनाथ १।३२८, लेखराम पृष्ठ २५१)

मूर्तिपूजा

(बम्बई में शास्त्रार्थ आचार्य कमलनयन जी से—१२ जून, १८७५)

बम्बई में नियमपूर्वक समाज स्थापित करके स्वामी जी द्वितीय बार अहमदाबाद पधारे और वहां प्रबल युक्तियों से स्वामी जी ने नारायणमत की

समीक्षा की । बम्बई से स्वामी जी के चले आने के पश्चात् वहां के पौराणिक पण्डितों ने यह प्रसिद्ध किया कि स्वामी जी शीघ्र यहां से चले गये नहीं तो हम उनसे शास्त्रार्थ करने को उद्यत थे । जब इनके मिथ्या प्रवाद से लोगों में कुछ भ्रान्ति सी होने लगी तो समाज के मन्त्री ने बम्बई से तार भेजकर स्वामी जी को अहमदाबाद से बुलवाया । स्वामी जी के आते ही पौराणिक पण्डितों को मुंह दिखाना कठिन हो गया। लोगों के आग्रह करने पर भी शास्त्रार्थ से जी चुराने लगे । पं० कमलनयन आचार्य भी जो बम्बई के पौराणिक पण्डितों के शिरोमणि माने जाते थे शास्त्रार्थ से बचने लगे । निदान बहुत से प्रतिष्ठित सभ्य लोगों के बाधित करने पर उन्होंने बड़ी कठिनता से स्वामी जी के सम्मुख आना स्वीकार किया । १२ जून शास्त्रार्थ की तिथि नियत हुई ।

शास्त्रार्थ का स्थान फ्राम जी क्राउस जी इन्स्टीट्यूट' नियत हुआ । नियत समय पहले से लोग आने लगे । दोपहर के तीन बजे पश्चात् स्वामी जी पधारे और उन्हें बड़ी प्रतिष्ठा के साथ एक उच्च स्थान पर कुरसी पर बिठाया गया । उनके सामने ही एक कुरसी आचार्य कमलनयन जी के लिए बिछायी गई । बीच में लगभग डेढ़ सौ प्रामाणिक संस्कृत की पुस्तकें रखी गईं जिससे कि दोनों पक्षों को प्रमाणों के देखने का सुभीता रहे । चौंतरे के नीचे आठ कुर्सियां समाचार-पत्रों के पत्र-प्रेषकों के लिए क्रम से लगाई गई थीं । ये वास्तव में दोनों ओर की उक्तियां लिखने के लिये आये थे । इस सभा में बम्बई के लगभग समस्त सेठ, साहूकार, अधिकारी और प्रतिष्ठित शिक्षित पुरुष उपस्थित थे । यथा रायबहादुर बेचरदास अलबाईदास, सेठ लक्ष्मीदास खेम जी, सेठ मथुरादास लोजी, राव बहादुर दादूबा पाण्डुरङ्ग, भाई शङ्करनाना, भाई गङ्गादास किशोरदास, हरगोविन्ददास, राणा मनसुखराम सूरजराम, रणछोड़ भाई उदयराम, विष्णु परशुराम इत्यादि प्रायः श्रीमान् और विद्वान् उपस्थित थे। इस समय यह खबर उड़ी कि आचार्य कमलनयन जी यहां इसलिए नहीं आवेंगे कि यह जगह एक पारसी की है । कारण यह था कि रामानुज सम्प्रदाय के यह आचार्य थे और इनके अनुयायी नहीं चाहते थे कि हमारे आचार्य के गौरव में अन्तर पड़े । परन्तु ज्यों त्यों आध घण्टे के पीछे आचार्य जी अपने २५-३० शिष्यों के सहित सभा में सुशोभित हुए और स्वामी जी के सामने वाली कुर्सी पर विराजमान हो गये, निदान राव बहादुर बेचरदास अलबाईदास जी को सभापति बनाया गया और उन्होंने आरम्भ में एक उपयुक्त वक्तृता की जिसका सार यह था कि वास्तव में हम सब पौराणिक और मूर्तिपूजक हैं और मैं स्वयं मूर्तिपूजा किया करता हूं । परन्तु हम सब यहां पर शास्त्रार्थ सुनने एकत्र हुए हैं । आग्रह और पक्ष को अपने चित्त से हटाकर स्वामी जी और आचार्य

जी की विद्यापूरित और सारगर्भित वक्तृताओं को सुनें और सत्य को ग्रहण करें। हठ और विवाद से काम न लें। इस समय सब से प्रधान विषय मूर्तिपूजा है। स्वामी जी का यह पक्ष है कि मूर्तिपूजा वेदों से निषिद्ध है और इसलिए वह पापकर्म है। आचार्य जी का पक्ष इसके सर्वथा विपरीत है अर्थात् वे मूर्तिपूजा को वेद-विहित समझते हैं। बस अब हमें दोनों महाशयों की उचित उक्ति-प्रत्युक्तियों को एकाग्र मन होकर बड़े ध्यान से सुनना चाहिए। किसी प्रकार का क्रोध, आवेग और कोलाहल नहीं करना चाहिए। अन्त में सेठ साहब ने यह भी विज्ञापित कर दिया था कि वास्तव में यह शास्त्रार्थ दो महाशयों की परस्पर प्रतिज्ञा का परिणाम है। जिन्होंने इसके व्यय का सारा भार परस्पर आधा बांटकर अपने ऊपर लिया है उनके नाम ठक्कर जीवनदयालु जी और मारवाड़ी शिवनारायण वेनीचन्द हैं। ठक्कर जी ने मारवाड़ी शिवनारायण वेनीचन्द से (जो सदा आचार्य कमलनयन जी के पक्ष का आश्रय लिया करते हैं।) यह कहा था कि यदि आचार्य जी शास्त्रार्थ में स्वामी जी को जीत लेंगे तो मैं आचार्य जी का शिष्य हो जाऊंगा अन्यथा आपको स्वामी जी का भक्त होना पड़ेगा। शास्त्रार्थ का विषय मूर्तिपूजा है। मैं फिर निवेदन करता हूं कि आप सब महाशय स्वस्थचित्त होकर आचार्य जी और स्वामी जी की पाण्डित्य भरी वक्तृताओं को सुनें और अपने लिए उसका परिणाम निकालें।

सेठ साहब अपनी वक्तृता समाप्त करके बैठ गये। तदनन्तर मारवाड़ी शिवनारायण वेनीचन्द ने यह विवाद उपस्थित किया कि ठक्कर जी से मैंने यह भी कह दिया था कि मूर्तिपूजा की सिद्धि में पुराणों के भी प्रमाण दिये जावेंगे। परन्तु ठक्कर जी के प्रतिज्ञा-पत्र प्रस्तुत करने पर वे मौन हो गये, यह प्रतिज्ञा-पत्र सेठ साहब ने सभा में उच्चैः स्वर से सब को सुना दिया। उसमें इस बात की गन्ध भी नहीं थी। निदान मारवाड़ी जी को चुप होना पड़ा। अब आचार्य कमलनयन जी की बारी आई, वे कहने लगे कि कितने पण्डित इस सभा में उपस्थित हैं, पहले वे मुझे अपने-अपने मत से सूचना देवें कि किन-किन सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखते हैं। यह सुनकर विचारशील पुरुषों ने कहा कि यह एक अत्यन्त असङ्गत और व्यर्थ प्रश्न है। आपको इस समय साधारण रीति पर किसी के विश्वास वा मत से कुछ प्रयोजन न होना चाहिए। सभापति आप की सम्मति से नियत हो चुके हैं बाकी सब शेष श्रोतागण हैं उनको शास्त्रार्थ की समाप्ति पर अधिकार है कि कुछ सम्मति निर्धारण करें। परन्तु आचार्य जी ऐसी युक्ति युक्त बातों को कब सुनते थे कहने लगे कि हम कैसे समझें कि ये लोग किन-किन सम्प्रदायों के और ठीक-ठीक सम्मति निर्धारण कर सकेंगे या नहीं ? यह सुनकर पं० कालिदास

गोविन्द जी शास्त्री खड़े हुए और आचार्य जी को सम्बोधन करके कहने लगे कि आप व्यर्थ इस प्रकार की बातों से अपना और उपस्थित लोगों का समय नष्ट करना चाहते हैं । मैं आप के सम्मुख प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं निष्पक्ष और सत्य-सत्य जो कुछ मेरी समझ में आवेगा अन्त में प्रकट कर दूंगा और जो कुछ शास्त्रार्थ सुनने के बाद मेरी सम्मति होगी वह भी नहीं छिपाऊंगा और आप दोनों की वक्तृता अक्षरशः लिखता जाऊंगा । शोक कि आचार्य जी ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया । तब स्वामी जी ने कोमलता और प्रीति के साथ आचार्य जी से कहा कि आज का दिन मैं अत्यन्त माङ्गलिक समझता हूं कि आप धर्म के एक आवश्यक विषय पर मुझ से वार्तालाप करने के लिए यहां पधारे हैं और लोगों के इतने संग्रह से यह प्रकट है कि लोगों में सत्यासत्य के निर्णय करने का सच्चा और प्रबल उत्साह है । मेरा जो पक्ष है वह सभापति महाशय ने बड़ी उत्तमता के साथ सर्व साधारण को अभी सुना दिया है इसी प्रकार आपका भी । अब आप को उचित है कि मूर्तिपूजा को वेदों में सिद्ध करें, प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रमाण देवें जिससे प्रकट हो कि प्रमाण और प्रतिष्ठा (मूर्ति में प्राण का संचार हो जाता है) आवाहन (जिससे उनको बुलाया जाता है) विसर्जन (जिससे उन को विदा किया जाता है) पूजन (जिससे उन्हें प्रसन्न और आनन्दित किया जाता है) इत्यादि करना सार्थक और उचित है । यों तो इस समय एक सज्जन और विचारशील सेठ साहब सभापति हैं परन्तु मेरी सम्मति में मेरे और आपके वास्तविक मध्यस्थ चारों वेद हैं । आप विश्वास रखें हम में से लेशमात्र भी किसी का पक्ष न करेंगे। उचित रीति यह है कि हमारे कथोपकथन अक्षरशः पीछे से प्रकाशित कर दिये जावें जिससे कि सर्वत्र पण्डितों को अपनी स्वतन्त्र सम्मति निर्धारण करने का अवसर मिल सके। स्वामी जी की यह समीचीन उक्ति सुनकर भी आचार्य जी की समझ में नहीं आया और वे अपना हठ करते रहे कि हमने जो कुछ कहा है जब तक वह नहीं होगा शास्त्रार्थ नहीं हो सकता । जिसका स्पष्ट यह आशय था कि हम शास्त्रार्थ नहीं करते । यह व्यवस्था देखकर सेठ मथुरादास लोजी खड़े हुए और उन्होंने आदि से अन्त तक वह कार्यवाही सुनायी जो उन्होंने कुछ प्रतिष्ठित पुरुषों की प्रेरणा से आचार्य कमलनयन जी से शास्त्रार्थ के विषय में की थी ।

आचार्य जी में इतना साहस कब हो सकता था कि सेठ जी के एक शब्द का भी प्रत्याख्यान करें । निदान अत्यन्त लज्जित होकर विना कुछ कहे सुने सभा से उठकर चल दिये । इस पर प्रधान सभा ने आचार्य जी को सम्बोधन करके कहा कि आप इस प्रकार विना कुछ कहे जाते हैं यह उचित

नहीं है । सहस्त्रों मनुष्य आज बड़े उत्साह से आपके पाण्डित्य का चमत्कार देखने आये थे, उनको बड़ी भारी निराशा होगी । स्वामी जी ने फिर आचार्य जी से कहा कि आजकल मूर्तिपूजा से लाखों मनुष्यों का निर्वाह होता है यदि आप उनकी आजीविका स्थिर रखना चाहते हैं तो इससे बढ़कर और कौन-सा अवसर होगा । परन्तु आचार्य जी को तो वहां एक क्षण भर ठहरना भी कठिन हो गया था । वे अपने मन में कहते थे कि वह कौन-सी घड़ी हो जो मैं अपने घर पहुंच जाऊं । परिणाम यह हुआ कि आचार्य जी जैसे कोरे आये थे वैसे ही चले गये । आचार्य जी के चले जाने के पश्चात् सेठ छबीलदास लल्लूभाई और राजमोहन राजेश्वरी बोल जी ठाकुर ने रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य की इस उदासीनता पर अत्यन्त शोक प्रकट किया । इसी सभा में सेठ गोविन्ददास बाबा ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि मूर्तिपूजा सनातन से चली आती है वा यह आधुनिक है । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि बहुत थोड़े काल से यह प्रवृत्त हुई है । बौद्ध और जैन के पश्चात् बहुत से कम समझ मनुष्यों ने इसको चला दिया था । नहीं तो संस्कृत के प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थों में इसका कहीं नाम तक नहीं पाया जाता । इसके पश्चात् स्वामी जी ने इसी सभा में अपना यौक्तिक व्याख्यान मूर्तिपूजा के खण्डन में प्रारम्भ किया और वेदादि सच्छास्त्रों के प्रमाणों से मूर्तिपूजा को महापाप सिद्ध कर दिया। समाप्ति पर सभापति ने स्वामी जी के गले में फूलों का हार डाला और सेठ छबीलदास लल्लूभाई इन्हें अपनी जोड़ी में सवार कराकर इनके आश्रम तक पहुंचा आये ।

(आर्यधर्मेन्द्र जीवन, रामविलास शारदा पृ० ११७)

मूर्तिपूजा

(बम्बई में पण्डितों से शास्त्रार्थ—मार्च, १८७६)

जब बम्बई के शास्त्रीगण सब प्रकार से तैयारी कर चुके तो स्वामी जी को शास्त्रार्थ के लिये आहूत किया गया । उन्होंने तत्क्षण शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया । शास्त्रार्थ का विषय वही पुराना विषय था कि मूर्तिपूजा वेदविहित है वा नहीं । शास्त्रार्थ की तिथि २७ मार्च, सन् १८७६ और स्थान भाई जीवन जी का हाल नियत हुआ ।

नियत तिथिपर शास्त्रार्थ-सभा सङ्गठित हुई । दर्शकों से हाल इतना खचाखच भर गया था कि खड़े होने तक को जगह न रही थी और बहुत से लोगों को घर लौट जाना पड़ा था । स्वामी जी यथासमय विना किसी आडम्बर के सभा में उपस्थित हो गये । पण्डित रामलाल भी पधारे और बड़े दलबल और घोर गर्ज के साथ पधारे । उनके साथ अनेक स्थानीय शास्त्री और उनके

शिष्य तथा श्रद्धालु जन थे । शास्त्रार्थ–सभा में मध्यस्थ का आसन श्री भूझाऊ जी शास्त्री ने ग्रहण किया । शास्त्रार्थ उचित भावानुकूल और ऐसे ढंग से हुआ कि उसमें भाग लेने वालों के लिये वह प्रशंसनीय था ।

पण्डित गट्टूलाल जी ने भी शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया था, परन्तु वे सभास्थल में नहीं पधारे । उनके लाने के लिए गाड़ी भी भेजी गई परन्तु उन्होंने कहला भेजा कि हम को वमन हो गया है, हम नहीं आ सकते, हमारी ओर से पण्डित रामलाल ही शास्त्रार्थ करेंगे ।

स्वामी जी ने प्रथम ही पण्डित रामलाल से यह स्वीकार करा लिया कि आर्य्यों का मौलिक धर्म–ग्रन्थ वेद है और फिर उनसे वेद का कोई मन्त्र वा पंक्ति दिखाने को कहा कि जिसमें मूर्तिपूजा की ओर सङ्केत हो । पण्डित रामलाल ने पुराण और स्मृतियों के प्रमाण उपस्थित किये । स्वामी जी ने कहा कि ये ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं, यदि कोई वेदमन्त्र स्मरण हो तो कहिये। इस पर पण्डित रामलाल ने फिर मनुस्मृति के प्रमाण प्रस्तुत किये । स्वामी जी ने कहा कि **इन प्रमाणों में आये हुए प्रतिमा और देव शब्दों से मूर्तिपूजा का कोई सम्बन्ध नहीं है** और उनके यथार्थ अर्थ करके दिखाये और यह भी कहा कि पण्डित जी के बताए हुए ग्रन्थों में पण्डितों ने अपनी स्वार्थसिद्धि के निमित्त बहुत से असत्य भाग प्रक्षिप्त कर दिये हैं । अतः वह उन ग्रन्थों का प्रमाण उक्त असत्य भागों को छोड़कर ही स्वीकार करते हैं । मौलिक धर्म्म–ग्रन्थ वेद में एक शब्द भी नहीं है, जिससे मूर्तिपूजा का प्रतिपादन होता हो, अन्य ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं हो सकते ।

तदनन्तर पण्डित रामलाल ने फिर भी स्मृतियों और पुराणों के प्रमाण उपस्थित किये । इस पर मध्यस्थ ने कहा कि पण्डित जी ! स्वामी जी प्रश्न कुछ और करते हैं और आप उत्तर कुछ और ही देते हैं । यह सभा और पण्डितों का नियम नहीं । जैसे किसी से द्वारिका का मार्ग पूछा और उसने कलकत्ते का मार्ग बतलाया, ऐसा ही आपका यह शास्त्रार्थ है । अन्त में पण्डित रामलाल ने कहा कि हम मूर्तिपूजा को वेद से सिद्ध नहीं कर सकते परन्तु मनुस्मृति, ब्राह्मण ग्रन्थों और पुराणों के प्रमाणों से सिद्ध करते हैं । इसी पर शास्त्रार्थ समाप्त हो गया ।

शास्त्रार्थ–सभा साढ़े ग्यारह बजे रात्रि के विसर्जन हुई । शास्त्रार्थ के अन्त में अनेक लोगों ने भाई जीवन जी को धन्यवाद दिया कि उनके उद्योग से ऐसा चामत्कारिक परिणाम प्राप्त हुआ । सब लोग यह विश्वास लेकर घरों को लौटे कि आर्य्यों के मौलिक धर्मग्रन्थ वेद में मूर्तिपूजा की कोई आज्ञा नहीं है । (देवेन्द्रनाथ १।३६५, लेखराम पृ० २४९–२५०)

मूर्तिपूजा

(पं० रामलाल शास्त्री से बम्बई में शास्त्रार्थ–२७ मार्च, १८७६)

जब स्वामी जी बम्बई से पूर्व की ओर जाने को उद्यत हुए उस समय यहां के पण्डितों ने स्वयं दूर रहकर रामलाल जी को जो नदियां शान्ति के विद्वान् थे, शास्त्रार्थ क्षेत्र में आने के लिए उद्यत किया । उसने एक हूकाभाई जीवन जी के घर में बहुत झगड़े के पश्चात् चैत सुदि संवत् १९३३ सोमवार के दिन शास्त्रार्थ आरम्भ किया। बहुत से भद्रपुरुष उस शास्त्रार्थ के समय उपस्थित थे । दोनों पक्षों की सम्मति से पण्डित बहुजाऊ जी शास्त्री घारीपुरी निवासी सभापति निश्चित हुए ।

स्वामी जी–वेद के किस मन्त्र से मूर्तिपूजा का विधान है सो बतलाइये?

पण्डित रामलाल जी पुराण और स्मृतियों के श्लोक बोलने लगे ।

स्वामी जी–ये ग्रन्थ मानने के योग्य नहीं हैं । वेद का यदि कोई मन्त्र स्मरण हो तो कहिए–

पण्डित जी ने मनुस्मृति के वे श्लोक जिनमें प्रतिमा, देव शब्द थे, बोले।

स्वामी जी ने सब श्लोकों के यथार्थ प्रमाण सहित अर्थ कर दिये कि इनका मूर्तिपूजा से कोई सम्बन्ध नहीं था ।

पण्डित जी फिर और स्मृतियों और पुराणों के श्लोक बोलने लगे परन्तु अन्त तक वेद का कोई मन्त्र न बोले (तब मध्यस्थ जी बोले) ।

मध्यस्थ पण्डित बहुजाऊ जी शास्त्री बोले कि रामलाल जी ! स्वामी जी प्रश्न कुछ और करते हैं और आप उत्तर कुछ और ही देते हैं । यह सभा और पण्डित का नियम नहीं है जैसे किसी ने किसी से द्वारिका का मार्ग पूछा और बतलाने वाले ने कलकत्ते का मार्ग बतलाया । इसी प्रकार का यह आपका शास्त्रार्थ है। ऐसा कहने पर भी रामलाल ने कोई वेद का प्रमाण नहीं दिया। तब सब की सम्मति से सभा विसर्जित हुई और सभापति ने सब से स्पष्ट कह दिया कि "आज पण्डित रामलाल पाषाण-पूजन वेदोक्त सिद्ध न कर सके ।"

इस प्रकार सत्य कह देने पर इस सत्यवक्ता शास्त्री को कितने ही स्वार्थी पण्डितों ने सताने में कोई कमी न रखी ।

फिर चैत संवत् १९४० में इन्हीं पण्डित महोदय की मैनेजर वेदभाष्य तथा वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से भेंट हुई और वह सारी की सारी "देशहितैषी" पत्रिका चैत मास उक्त संवत् में प्रकाशित हो गई जो रोचकता से रहित नहीं है ।

मैनेजर—आपने संस्कृत विद्या का बहुत दिन तक अध्ययन किया है और आप इस भाषा के विद्वान् हैं और धर्म्मशास्त्र के ग्रन्थ देखे होंगे और आपके अतिरिक्त काशी आदि स्थानों में और भी बहुत विद्वान् हैं और स्वामी दयानन्द सरस्वती भी बड़े विद्वान् हैं सो आप सब लोग जानते होंगे । फिर क्या कारण है कि आप लोगों और स्वामी जी की धर्म-सम्बन्धी विषयों में बातें नहीं मिलती हैं । स्वामी जी चारों वेदों को प्रामाणिक मानते हैं तब उनमें लिखी बातों को क्या आप लोग सिद्ध नहीं कर सकते ? जो स्वामी जी सत्य कहते हैं तो आप लोगों को उनका कहना मानना और जो असत्य कहते हैं तो उनकी बातों का सभा करके खण्डन करना चाहिए । सो आप लोग दोनों बातों में से एक भी नहीं करते इसका क्या कारण है ?

पण्डित रामलाल जी—स्वामी जी संन्यासी हैं, उन को किसी की पर्वाह नहीं । उन्होंने वेदादि शास्त्रों का अध्ययन बहुत दिनों तक किया है । वे समर्थ हैं उनकी बुद्धि बड़ी प्रबल है । वे कहते सो शास्त्रानुसार सत्य ही कहते हैं परन्तु हमारी शक्ति नहीं कि उनका सामना कर सकें क्योंकि हम लोग गृहस्थी हैं, हमें अनेक बातों की अपेक्षा बनी रहती है फिर हम स्वामी जी की सी बातें कैसे कह सकते हैं ? संसार में और भी चर्चा फैली हुई है जो उसके विरुद्ध कहें तो हमारे कहने से भी कुछ न हो और लोग विमुख हो जावें, **फिर आजीविका ही जाती रहे, तब निर्वाह कैसे होय ?**

मैनेजर—इससे सिद्ध हुआ कि आप अधर्म की जीविका करते हैं क्योंकि आप जानते हैं कि यह बात मिथ्या है फिर उससे द्रव्योपार्जन करना अधर्म है। देखो ! स्वामी जी ने असत्य को छोड़कर सत्य ग्रहण किया तो थोड़े काल में उनका कितना मान हुआ है । इसी प्रकार जो आप लोग भी सत्य को स्वीकार करें तो वैसा ही सम्मान और नाम आप लोगों का क्यों न हो ?

पण्डित जी—क्या करें, सर्व संसार में ऐसी ही प्रवृत्ति हो रही है, उससे विरुद्ध हम लोग कहें तो कोई नहीं मानता । इस प्रकार तो स्वामी जी का ही निर्वाह हो सकता है, हम गृहस्थियों का नहीं । (पृष्ठ ८-९)

(लेखराम पृष्ठ २७२ से २७३)

मोक्ष एवम् ईसा पर विश्वास

(फर्रुखाबाद में दो पादरियों से प्रश्नोत्तर—मई, १८७६)

एक दिन स्वामी जी से दो पादरियों की धर्म-विषय पर बातचीत हो रही थी । उनमें से एक पादरी का नाम लूकस था । दूसरा देशी ईसाई था।

लूकस–आपके मत से मोक्ष का क्या उपाय है ?

स्वामी दया०–हम से पादरी विल्सन ने भी यही प्रश्न किया था । उन्होंने कहा मोक्ष का साधारण मनुष्यों के लिये एक प्रकार का उपाय है अर्थात् ईश्वरप्राप्ति और ईसाइयों के लिए अन्य प्रकार का अर्थात् ईसा पर विश्वास लाना। हमने इस पर उनसे कहा था कि पहला ही उपाय ठीक है।

लूकस–मनुष्य ईसा पर विश्वास करने से ही मुक्ति पा सकता है, क्योंकि वह ईश्वर का पुत्र और मनुष्यों का परित्राता था और इसलिए ईश्वर ने उसे भेजा था । इसका प्रमाण यह है कि ईसा ने बहुत से मृत पुरुषों को जिलाया था ।

दया०–सत्य वेदोक्त धर्म में ईश्वर के अवलम्बन से ही मोक्ष होता है। महाभारत में लिखा है कि **शुक्राचार्य ने सञ्जीवनी विद्या से मृत पुरुषों को जिलाया था ।** अब हम शुक्राचार्य को ईश्वर का अवतार मानें या उन्हें ईश्वर का भेजा हुआ मानें । यदि उत्तम उपदेश देने से ही ईसा को परित्राता कहते हो तो बायबिल की अपेक्षा भगवद्गीता में अधिक उत्तम उपदेश हैं, इसलिए भगवद्गीता के वक्ता श्रीकृष्ण भी परित्राता थे कि उन्होंने उत्तम कर्म किये थे तो शङ्कराचार्य अपेक्षाकृत उत्तमोत्तम कर्म कर गये हैं, इसलिये शङ्कराचार्य भी परित्राता हैं ।

पादरी साहब इन बातों का कुछ उत्तर न दे सके ।

स्वामी जी ने पादरी साहब से यह भी कहा था कि तुम्हारे देश में बहुत धन है इसलिये तुम्हारी परिश्रम में अनास्था हो गई है । अतएव तुम्हारी मध्यस्थ अवस्था नहीं रही है और तुम क्रमशः अवनति की ओर जा रहे हो । इसके पश्चात् स्वामी जी ने शरबतादि से सत्कार करके पादरी साहब को विदा किया।

(देवेन्द्रनाथ २।२)

विविध प्रश्नोत्तर

(ला० ब्रिजलाल साहब रईस, लखनऊ से प्रश्नोत्तर–सितम्बर-अक्तूबर १८७६)

प्रश्न १–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र किस प्रकार हैं, कब से हैं और किसके बनाये हैं ?

उत्तर–कर्मों की दृष्टि से चारों वर्ण ठीक हैं और लोकव्यवहार से ठीक नहीं हैं अर्थात् जो जैसा कर्म करे वैसा ही उसका वर्ण है । उदाहरणार्थ जो ब्रह्मविद्या जाने वह ब्राह्मण, जो युद्ध करे वह क्षत्रिय, लेन-देन हिसाब-किताब

करे वह वैश्य, जो सेवा करे वह शूद्र है। यदि ब्राह्मण क्षत्रिय या शूद्र का काम करे तो ब्राह्मण नहीं, सारांश यह कि वर्ण कर्मों से होता है, जन्म से नहीं । जन्म से चारों वर्ण (वर्तमान अवस्था में) लगभग बारह सौ वर्ष से बने हैं । जिसने बनाये उसका नाम इस समय स्मरण नहीं परन्तु महाभारतादि से पीछे बने हैं ।

प्रश्न २—क्या ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से और क्षत्रिय भुजा से उत्पन्न हुए हैं ?

उत्तर—इसका अभिप्राय यह है कि जैसे शरीर में मुख श्रेष्ठ है ऐसे सब वर्णों में ब्रह्म का जानने वाला श्रेष्ठ है । इसी कारण कह दिया कि ब्राह्मण मुख से हुआ इसी प्रकार और वर्णों का समझ लो ।

प्रश्न ३—ब्राह्मण यज्ञोपवीत किस लिए रखते हैं ?

उत्तर—यज्ञोपवीत केवल विद्या का एक चिह्न है ।

प्रश्न ४—कोई कर्म करना चाहिए या नहीं ?

उत्तर—**उत्तम कर्म करना चाहिए ।**

प्रश्न ५—उत्तम कर्म कौन से हैं ?

उत्तर—सत्य बोलना, परोपकारादि उत्तम कर्म हैं ।

प्रश्न ६—सत्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिह्वा से सत्य बोलना, जो मन में होवे वह वाणी से कहना या ऐसा विचार करके कहना जो कभी झूठ न हो ।

प्रश्न ७—मूर्ति पूजना कैसा है ?

उत्तर—बुरा है । कदापि मूर्ति-पूजन न करना चाहिए । इस मूर्तिपूजा के कारण संसार में अन्धकार फैल गया ।

प्रश्न ८—**विना मूर्ति के किस का ध्यान करें और किस प्रकार?**

उत्तर—जैसे सुख दुःख का ध्यान मन में होता है वैसे परमेश्वर का ध्यान मन में होना चाहिए, मूर्ति की कुछ आवश्यकता नहीं ।

प्रश्न ९—क्या कर्म करना चाहिए ?

उत्तर—दो समय सन्ध्या करे और सत्य बोले और जो श्रेष्ठ कर्म परोपकार के हों वे करें ।

प्रश्न १०—सन्ध्या दो समय करनी चाहिए या तीन समय ?

उत्तर—**केवल दो समय प्रातः-सायं, तीन समय नहीं ।**

प्रश्न ११—बार बार या प्रत्येक बार मन्त्र जपना या परमेश्वर का नाम लेना चाहिए या नहीं और जैसे ब्राह्मण लाख दो लाख मन्त्र या परमेश्वर के

नाम का जाप और पुरश्चरण करते हैं यह ठीक है या नहीं है ?

उत्तर—पहचानना चाहिए । जाप और पुरश्चरण करना कुछ आवश्यक नहीं ।

प्रश्न १२—परमेश्वर का कोई और रूप है या नहीं ?

उत्तर—उसका कोई रूप और रंग नहीं है, वह अरूप है और जो कुछ इस संसार में दिखलाई देता है उसी का रूप है क्योंकि केवल एक अर्थात् वही एक सब का बनाने और उत्पन्न करने वाला है ।

प्रश्न १३—ईश्वर संसार में दिखलाई क्यों नहीं देता है ?

उत्तर—यदि दिखलाई देता तो कदाचित् सब कोई अपना मनोरथ पूर्ण करने को कहते और उसे तंग करते । दूसरे जिन तत्त्वों से मनुष्य का यह शरीर बना है उनसे उसका देखना असम्भव है । तीसरे जिसने जिस को उत्पन्न किया उस को वह क्योंकर देख सकता है ?

प्रश्न १४—जब दिखाई नहीं देता तो किस प्रकार उसको पहचानें ?

उत्तर—दिखलाई तो देता है अर्थात् यह मनुष्य, पशु, वृक्षादि सब वस्तुएं जो संसार में दिखलाई देती हैं उन सब का कोई एक अर्थात् वही एक बनाने वाला प्रतीत होता है, यही उसका देखना है और जैसे सुख-दु:ख पहचाना जाता है वैसे ही उसको पहचानें ।

प्रश्न १५—ब्रह्म हम में और सब में है या नहीं ?

उत्तर—सब में है और हम में भी है ।

प्रश्न १६—किस प्रकार विदित हो ?

उत्तर—जिस प्रकार दु:ख-सुख का प्रभाव मन में विदित होता है उसी प्रकार वह भी विदित हो सकता है ।

प्रश्न १७—सब स्थानों पर एक समान है या न्यूनाधिक ?

उत्तर—सर्वत्र एक समान है परन्तु यह बात है कि जितना जिसके आत्मा में उस चेतन का प्रकाश है अर्थात् जिस को जितना ज्ञान है उतना उस को अनुभव होता है ।

प्रश्न १८—देव किस को कहते हैं ?

उत्तर—जो मनुष्य विद्यावान् और बुद्धिमान् पण्डित हो उसको देव कहते हैं ।

प्रश्न १९—क्या रामलीला देखना दोष है ?

उत्तर—**हाँ दोष है । हजार हत्या के समान दोष है और इसी प्रकार मूर्तिपूजा करना हजार हत्या के समान पाप है । क्योंकि विना आकृति**

के प्रतिबिम्ब नहीं उतर सकता और जबकि उसकी आकृति नहीं तो मूर्ति कैसी? यदि किसी का फोटोग्राफ से या और किसी प्रकार यथार्थ प्रतिबिम्ब उतारकर संस्मरण को और देखने को सम्मुख रखा जाये तो वह ठीक है परन्तु उस की अर्थात् ब्रह्म की मूर्ति और आकृति बनाना और प्रतिलिपि की प्रतिलिपि बनाकर कुछ का कुछ कर देना नितान्त अशुद्ध और अनुचित है ।

प्रश्न २०–संस्कृत भाषा कब से है और क्यों उसको अच्छा कहते हैं?

उत्तर–**संस्कृत भाषा सदा से है और अत्यन्त शुद्ध है।** इसके समान कोई भाषा अच्छी नहीं है । उदाहरणार्थ यदि, फारसी और अंग्रेजी में केवल "ब" प्रकट किया चाहें तो शुद्ध प्रकट नहीं किया जा सकता अर्थात् फारसी में "बे" और अंग्रेजी में "बी" है परन्तु जिसमें और कोई सम्मिलित न हो यह केवल संस्कृत भाषा में ही प्रकट करने का गुण है ।

प्रश्न २१–**वेद में परमेश्वर की स्तुति है तो क्या उसने अपनी प्रशंसा लिखी ?**

उत्तर–जैसे माता पिता अपने पुत्र को सिखाते हैं कि माता, पिता और गुरु की सेवा करो, उनका कहा मानो । उसी प्रकार भगवान् ने सिखाने के लिये वेद में लिखा है ।

प्रश्न २२–**भगवान् का जब स्वरूप और शरीर नहीं तो मुख कहां से आया कि जिससे वेद कहा ?**

उत्तर–भगवान् ने चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा के हृदय में प्रकाश करके वेद बताया ।

प्रश्न २३–अब विदित हुआ कि चार वेद उन चार ऋषियों के बनाये हुए हैं ।

उत्तर–नहीं, नहीं, भगवान् के वेद बनाये और कहे हैं क्योंकि वे चारों कुछ पढ़े न थे और न कुछ जानते थे । उनके द्वारा आप ही कहे हैं ।

प्रश्न २४–भगवान् ने उनके हृदय में किस प्रकार आकर वेद कहा?

उत्तर–जैसे कोई मनुष्य पित्त वा सन्ताप में आप ही आप जलने लगता है उसी प्रकार उस भगवान् ने उन चारों के घट में जिह्वा में प्रकाश करके कहा और उन्होंने उसकी शक्ति से विवश होकर कहा । इसलिये प्रकट है कि भगवान् ने वेद कहे हैं ।

प्रश्न २५–जीव एक है या अनेक ?

उत्तर–**जीव का प्रकार एक है और जाति अर्थात् योनियां अनेक हैं।** उदाहरणार्थ मनुष्य की एक जाति है और पशु की दूसरी जाति है। इसी

प्रकार और जातियां भी समझ लो ।

प्रश्न २६—यह जीव प्रत्येक देह में जाता है और छोटा-बड़ा हो जाता है ।

उत्तर—जैसे जल में जो रंग मिला दोगे वैसा ही जल हो जावेगा । इसी प्रकार जिस देह में यह जीव जावेगा वैसा ही उसका रूप, रंग और छोटा-बड़ा देह होगा परन्तु **जीव सब का एक सा है जैसा चींटी का वैसा ही हाथी का ।** (लेखराम पृष्ठ २७७ से २८०)

सृष्ट्युत्पत्ति आदि

(पादरी पार्कर साहब से मुरादाबाद में शास्त्रार्थ—नवम्बर, १८७६)

पहली बार स्वामी जी सन् १८७६ में मुरादाबाद पधारे । यहां स्वामी जी का पादरी पार्कर साहब से कई दिन तक प्रातःकाल लिखित शास्त्रार्थ होता रहा।

साहू श्यामसुन्दर जी रईस मुरादाबाद ने वर्णन किया कि पादरी पार्कर साहब का शास्त्रार्थ राजा जयकिशनदास साहब बहादुर की कोठी पर कम से कम १५ दिन तक होता रहा । मैं नित्य जाया करता था । कुंवर परमानन्द, रूपकिशोर अध्यापक मिशन स्कूल, मास्टर हरिसिंह तथा और भी कई सज्जन जाया करते थे । अन्तिम दिन का विषय था कि **सृष्टि कब उत्पन्न हुई** ? पादरी साहब का कथन था कि सृष्टि पांच हजार वर्ष से उत्पन्न हुई और स्वामी जी इसका खण्डन करते थे ।

इसी समय में ब्रिटिश इण्डियन ऐसोसियेशन कमेटी की सभा उस कोठी के एक कमरे में हुआ करती थी । उस अन्तिम दिन स्वामी जी दूसरे कमरे में जाकर एक बिल्लौर का पत्थर उठाकर लाये कि आप लोग विज्ञान जानते हैं, इसको विज्ञान से सिद्ध करें कि कितने वर्ष में यह पत्थर इस रूप में आया । अन्त में खोज से यही सिद्ध हुआ कि वह कई लाख वर्ष में बना है। फिर कहा कि जब सृष्टि नहीं थी तो यह पत्थर कैसे बन गया ? जिस पर पादरी साहब ने यह निकम्मा बहाना किया कि हम मनुष्य की उत्पत्ति को पांच हजार वर्ष कहते हैं । इस पर स्वामी जी ने कहा कि जब सृष्टि की उत्पत्ति की चर्चा है तो सृष्टि के भीतर मनुष्यादि सब आ गये । इसी पर शास्त्रार्थ समाप्त हुआ था । पादरी साहब ने इस शास्त्रार्थ का वृत्तान्त किसी समाचारपत्र में भी प्रकाशित कराया था परन्तु उसका नाम मुझे ज्ञात नहीं और यह भी सुना कि पादरी साहब ने एक चिट्ठी अमरीका भेजी कि हम ने आजतक ऐसा विद्वान् पण्डित कोई नहीं देखा ।

बाबू रूपकिशोर जी ने वर्णन किया कि रैवरेण्ड डब्ल्यू पार्कर साहब और स्वामी जी के मध्य जो शास्त्रार्थ हुआ था वह मैंने लिखा था, परन्तु खेद है कि मेरे पुत्र के प्रमाद से वे कागज नष्ट हो गये । अब जो कण्ठस्थ मुझे ज्ञात है वह लिखवाता हूं । इस शास्त्रार्थ में तीन अंग्रेज सज्जन उपस्थित थे। एक पादरी पार्कर, दूसरे मिस्टर बेली साहब और तीसरे एक और पादरी साहब। इनके अतिरिक्त डिप्टी इमदाद अली, बाबू रामचन्द्र बोस, कुंवर परमानन्द, मास्टर हरिसिंह और इसी प्रकार ४०-५० मनुष्य थे । शास्त्रार्थ लिखा जाता था । १४-१५ दिन शास्त्रार्थ होता रहा । बेली साहब अब अलीगढ़ में रजिस्ट्रार हैं । प्रतिदिन प्रातः दो तीन घण्टे बैठते थे ।

अन्त में एक बात मुझे स्मरण है कि स्वामी जी ने सिद्ध कर दिया था कि मसीह मूर्तिपूजा की शिक्षा देता था क्योंकि ईश्वर को किसी के द्वारा मानता तथा किसी के द्वारा इच्छापूर्ति की प्रार्थना करता है वह मूर्तिपूजक है और हम मूर्तिपूजक नहीं हैं । (लेखराम पृष्ठ ४४१)

विविध प्रश्नोत्तर

(अम्बहटा निवासी मुंशी चण्डीप्रसाद के प्रश्न तथा स्वामी दयानन्द जी के उत्तर) १५ मार्च, १८७७

प्रश्न–वेद शास्त्र के अनुसार हिन्दुओं को किस किस की उपासना करनी चाहिए और जन्मदिवस से लेकर मृत्यु पर्यन्त क्या-क्या काम करने चाहिए।

उत्तर–नारायण के अतिरिक्त और किसी की उपासना नहीं करनी चाहिए। विद्या प्राप्त करके मन की शुद्धि करनी चाहिए । और सत्य व्यवहार पूर्वक आजीविकार्थ तथा अन्य सांसारिक कार्य करने उचित हैं ।

प्रश्न–प्रायः हिन्दू और उदाहरणार्थ कायस्थ, क्षत्रिय आदि मद्य और शिकार खाते-पीते हैं सो यह काम भी करने उचित हैं वा नहीं ?

उत्तर–मद्य और शिकार का खाना-पीना न चाहिए और बुद्धि के अनुसार भी प्राणधारी का खाना अत्याचार में सम्मिलित है और वेद तथा शास्त्र की दृष्टि से भी निषिद्ध है ।

प्रश्न–भूत, चुड़ैल, जिन्न और परी की छाया कहीं कुछ है या नहीं? क्योंकि लोग प्रायः ऐसी घटना होने पर मुल्लाओं, स्थानों और कब्रों आदि से उनकी भगाने की इच्छा करते हैं ।

उत्तर–भूत और चुड़ैल और जिन्न और परी की छाया कहीं कुछ नहीं है, यह लोगों का भ्रममात्र है । यदि ये होते तो फिरंगियों की छाया अवश्य होती।

प्रश्न–शरीर के नष्ट होने पर यह आत्मा कहां जाती है ?

उत्तर–मृत्यु के पश्चात् आत्मा शरीर से पृथक् होकर 'यमराज' अर्थात् वायु के यहां चली जाती है ।

प्रश्न–मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म होता है या नहीं और स्वर्ग और नरक का क्या वर्णन है ? कोई ऐसी बुद्धिगम्य युक्ति नहीं है कि जिससे आवागमन तथा स्वर्ग और नरक का वृत्तान्त भली प्रकार विदित हो जाय, कारण यह है कि जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात् का वृत्तान्त किसी को विदित नहीं हुआ ।

उत्तर–पुनर्जन्म अवश्य होता है और स्वर्ग और नरक भी सर्वत्र विद्यमान हैं। जिस प्रकार मनुष्य बुद्धि के द्वारा पहचान सकता है कि पृथिवी और आकाश तथा मनुष्यों और पशुओं को उत्पन्न करने वाला परमात्मा है; इसी प्रकार विद्या प्राप्ति के द्वारा वह स्वर्ग और नरक की परिस्थिति को यहाँ जान सकता है।

प्रश्न–**ईश्वर ने सृष्टि को क्यों उत्पन्न किया ?** और उत्पन्न करने में उसका क्या उद्देश्य था ?

उत्तर–जैसे आंख का काम है देखना और कान का काम है सुनना और देखने या सुनने में आंख या कान का कोई उद्देश्य नहीं होता परन्तु वह तो उनका प्राकृतिक स्वभाव ही है । इसी प्रकार सृष्टि की रचना करना नारायण का काम ही है और उत्पन्न करने और उसके संहार करने में उसका उद्देश्य कोई नहीं है ।

प्रश्न–आवागमन कब तक होता रहेगा ?

उत्तर–इस विषय में तुम्हारा सन्तोष सत्यार्थप्रकाश तथा वेदभाष्य के एक दो ग्रन्थ पढ़ने पर ही हो सकेगा मौखिक रूप से बतलाने पर तुम्हारा सन्तोष नहीं हो सकता ।

प्रश्न–ईश्वर ने सृष्टि कब उत्पन्न की थी ? और चारों युगों अर्थात् सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग में से प्रत्येक की कितनी-कितनी अवधि है।

उत्तर–ऐसी बातें वेदों से भली प्रकार सिद्ध हो सकती हैं । प्रत्येक युग की अवधि भिन्न है, वेदशास्त्र के भाष्य से तुम स्वयं देख लोगे ।

प्रश्न–स्त्री और पुरुष का विवाह कितनी आयु में करना चाहिए और उसकी क्या विधि होनी चाहिए ?

उत्तर–विवाह के समय पुरुष की आयु कम से कम २४ वर्ष और स्त्री की आयु १६ वर्ष होनी चाहिए ।.......... और विवाह स्त्री-पुरुष को अपनी रुचि के अनुसार करना चाहिए ।.......... नहीं तो माता और पिता का पसन्द

किया हुआ सम्बन्ध स्त्री–पुरुष को कब पसन्द हो सकता है ?

प्रश्न–वेद के दृष्टिकोण से विधवा स्त्री अथवा पुरुष का पुनः विवाह होना उचित है या नहीं ? और यह कि अपनी स्त्री के जीवित रहते अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरा और तीसरा विवाह करने से पुरुष को कुछ दोष तो नहीं लगता ?

उत्तर–विधवा स्त्री का पुनर्विवाह होना चाहिए और अपनी स्त्री के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह का पात्र नहीं है; परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् उस को अधिकार है कि वह पुनः विवाह चाहे करे या न करे । ऐसा ही अधिकार विधवा स्त्री को भी होना चाहिए ।

प्रश्न–गुरु किसको बनाना चाहिए और वह कितने गुणों से युक्त हो?

उत्तर–गुरु पिता आदि को बनाना चाहिए । और उनकी आज्ञा का पालन करे और उनकी प्रसन्नता का अभिलाषी रहे ।

प्रश्न–यदि कोई ब्राह्मण या वैश्य या कोई अन्य व्यक्ति हिन्दुओं के धर्म में से हानि और लाभ को समझे विना अथवा किसी मनुष्य के कहने सुनने से मुसलमान या ईसाई हो जावे और उसके पश्चात् यदि वह व्यक्ति अपने अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हो तो उसको अपनी जाति में सम्मिलित कर लेना चाहिए या नहीं ?

उत्तर–निस्सन्देह, यदि वह अपने अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हो तो समाज को चाहिए कि उस को अपनी बिरादरी में सम्मिलित कर लें ।

प्रश्न–ईश्वर किस स्थान पर रहता है क्योंकि प्रकटरूप में तो उसका कोई रंग रूप किसी की दृष्टि में आता नहीं ।

उत्तर–नारायण सर्वव्यापक है अर्थात् सर्वत्र विद्यमान तथा द्रष्टा है । जो कोई मनुष्य ज्ञान से अपने हृदय–दर्पण को शुद्ध रखता है वह उसे देख सकता है । वस्तुतः तो अज्ञानियों की दृष्टि से वह दूर है ।

प्रश्न–ब्रह्मा के चार मुख थे या नहीं ? और वेद को ब्रह्मा ने किसी कागज पर लिखा था या उसको वे पूरे पूरे चारों वेद कण्ठस्थ थे ?

उत्तर–ब्रह्मा के चार मुख नहीं प्रत्युत चारों वेद उसके मुख में (कण्ठस्थ) थे । यदि उसके चारों ओर चार मुख होते तो उसको सोना और विश्राम करना कठिन हो जाता । मूर्खों ने चारों वेद कण्ठस्थ थे इसके स्थान पर चार मुंह कल्पित कर लिये ।

प्रश्न–ईश्वर ने जो पृथिवी तथा आकाश, सूर्य तथा नक्षत्र दिन तथा रात, मनुष्य तथा पशु और भिन्न भिन्न प्रकार की भिन्न भिन्न वर्णों और

आकृतियों की वस्तुएँ बनायी हैं वे किसी सामग्री या मसाले से बनायी हैं या और किसी प्रकार बनायी हैं ?

उत्तर–नारायण को किसी मसाले की आवश्यकता नहीं है । वह तो स्वयं निर्विवाद रचयिता है और ये सारी वस्तुएं उसने माया या प्रकृति से बनाई हैं ।

प्रश्न–आपके कथन से विदित हुआ कि ब्रह्मा के चार मुख नहीं थे और न किसी का कोई वर्ण था परन्तु कर्म के अनुसार वर्ण निश्चित हुए। अर्थात् जो वेद शास्त्र पढ़कर उसके अनुसार उपदेश करता था वह ब्राह्मण, और जो बाहुबल में वीर और प्रजा का पालन करता था वह क्षत्रिय और जो व्यवहार अर्थात् कृषि करता था वह वैश्य और जो मजदूरी चाकरी करता था वह शूद्र कहलाता था । इस लेख के बाद यह बात अवश्य माननीय हो जाती है कि यदि किसी चमार या भंगी या कसाई जिसने विद्याप्राप्त की तो वह भी पण्डित के तुल्य है । अब प्रश्न यह उठता है कि यदि वह चमार या भंगी या कसाई, जिसने विद्या प्राप्त की है यह चाहे कि मैं किसी ब्राह्मण के घर में अपना विवाह करूं तो ब्राह्मण को भी उचित है या नहीं कि अपना कन्या उसको विवाह दे ?

उत्तर–यदि इन छोटे व्यवसाय करने वालों में से किसी ने विद्या प्राप्त की हो तो वह वस्तुतः पण्डित के तुल्य है परन्तु एक कारण कि बहुत समय तक उच्च व्यवसायी मनुष्यों में उसका पालन होना आवश्यक है कि नीचता की गन्ध उसके मस्तिष्क से न जावे तो उसका ब्राह्मण की कन्या से सम्बन्ध होना उचित नहीं ।

प्रश्न–हिन्दुओं में विवाह के पश्चात् जो मुकाबले अर्थात् गौने की प्रथा प्रचलित है, वह भी होनी चाहिए या नहीं क्योंकि और जातियों में यह प्रथा बिल्कुल नहीं है; अर्थात् मुसलमान और ईसाई इस प्रथा को नहीं मानते ।

उत्तर–यह प्रथा व्यर्थ है; यदि वेद में युक्ति-युक्त कारणों से इस प्रथा का उल्लेख होता तो उसका करना आवश्यक हो सकता था । जिन जातियों में यह प्रथा नहीं है उनमें क्या बुराई है ?

प्रश्न–दशहरा, होली, दीवाली और हिन्दुओं के त्यौहारों में जो प्रथाएँ अब प्रचलित हैं वे भी ठीक हैं या नहीं ?

उत्तर–होली, और दीवाली आदि उचित रूप से मनानी चाहिए ।

प्रश्न–स्त्रियों को भी विद्या प्राप्त करनी चाहिए या नहीं ?

उत्तर–स्त्रियों को विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए । क्योंकि विना विद्या

के मनुष्य की बुद्धि पशु की बुद्धि के तुल्य होती है ।

प्रश्न–हिन्दू लोग जो पण्डितों से जन्मपत्र लिखवाते हैं और पण्डित लोग भी इन कुम्भ, धन, मकर की राशियों का वृत्तान्त शास्त्रीय पत्रे से जानकर मङ्गल, सूर्य और शनि की खोटी दशा और हानि लाभ बतलाते हैं जिनमें से प्राय: बातें तो ठीक निकलती हैं बहुत सी अशुद्ध होती हैं इसका क्या कारण है ?

उत्तर–यह जन्मपत्र नहीं प्रत्युत रोगपत्र है। पण्डित किसी को खोटी दशा के जप करने के लिए अवश्य कुछ न कुछ बतलाता है । बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी बातों को नहीं माना करते ।

प्रश्न–भारत के लोग स्त्रियों को इस प्रयोजन से कि वे व्यभिचारिणी न हों परदे में रखते हैं और ईसाई अपनी स्त्रियों को परदे में नहीं रखते और स्थान-स्थान पर भ्रमण कराते हैं । इतना होने पर भी भारत की स्त्रियां ईसाई स्त्रियों से अधिक व्यभिचारिणी दिखाई देती हैं । इसका क्या कारण है ?

उत्तर–स्त्रियों को परदे में रखना आजन्म कारागार में डालना है । जब उनको विद्या होगी वे स्वयम् अपनी विद्या द्वारा बुद्धिमती होकर प्रत्येक प्रकार के दोषों से रहित और पवित्र रह सकती हैं ।······· (लेखराम पृष्ठ २८७, २८८)

।। ओं खम्ब्रह्म ।।

मेला चांदापुर

सत्यधर्मविचार

(अनेक विषयों पर विचार)

१९-२० मार्च, १८७७ में (संवत् १९३७ छपे के अनुसार) जिसको मुन्शी बख्तावरसिंह एडीटर आर्यदर्पण ने शोध कर भाषा और उर्दू में वैदिक यन्त्रालय काशी में अपने प्रबन्ध से छापकर प्रकाशित किया था ।

धर्मचर्चा ब्रह्मविचार मेला चांदापुर* कि जिसमें बड़े बड़े विद्वान्** आर्य्यों, ईसाइयों और मुसलमानों की ओर से एक सत्य के निर्णय के लिए इकट्ठे हुए

*** यहां यह मेला मुन्शी प्यारेलाल साहब की ओर से प्रतिवर्ष हुआ करता है।**

**** इस धर्मचर्चा में आर्य्यों की ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मुन्शी इन्द्रमणि जी, ईसाइयों की ओर से पादरी स्काट साहब, पादरी नोबिल साहब, पादरी पार्कर साहब और पादरी जान्सन साहब और मुसलमानों की ओर से मौलवी मौहम्मद कासिम साहब, सैयद अब्दुल मंसूर साहब विचार के लिए आये थे ।**

थे; सज्जन पाठकगणों के हितार्थ मुद्रित किया जाता है कि जिससे प्रत्येक मतों का अभिप्राय सब पर प्रकाशित हो जावे । सब सज्जनों को; किसी मत के क्यों न हों; उचित है कि पक्षपातरहित होकर इस को सुहृद्भाव से देखें ।

विदित हो कि यह मेला दो दिन रहा । मेले के आरम्भ से पूर्व कई लोगों ने स्वामी जी के समीप जाकर कहा कि आर्य और मुसलमान मिल के ईसाइयों का खण्डन करें तो अच्छा है । इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह मेला सत्य और असत्य के निर्णय के लिए किया गया है । **इसलिये हम तीनों को उचित है कि पक्षपात छोड़कर प्रीतिपूर्वक सत्य का निश्चय करें ।** किसी से विरोध करना कदापि योग्य नहीं ।

इसके पश्चात् विचार का समय नियत किया गया । पादरियों ने कहा कि–**हम दो दिन से अधिक नहीं ठहर सकते** और यही विज्ञापन में भी छापा गया था । इस पर **स्वामी जी** ने कहा कि हम इस प्रतिज्ञा पर आये थे कि मेला कम से कम पांच और अधिक से अधिक आठ दिन तक रहेगा। क्योंकि इतने दिनों में सब मतों का अभिप्राय अच्छे प्रकार ज्ञात हो सकता है । जब इस पर वे लोग प्रसन्न न हुए तब **मुन्शी इन्द्रमणि जी** ने कहा कि स्वामी जी ! आप निश्चिन्त रहें । सच्चा मत एक दिन में प्रकट हो जावेगा। फिर निम्नलिखित पांच प्रश्नों पर विचार करना सब ने स्वीकार किया ।

पहले दिन की सभा

मुन्शी प्यारेलाल साहब ने खड़े होकर सब से पहले कहा–

''प्रथम ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये कि जो सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है । हम लोगों के बड़े भाग्य हैं कि उसने हम सब को ऐसे **राजप्रबन्ध समय में उत्पन्न किया कि जिसमें सब लोग निर्विघ्नता से निर्भय होकर मत-मतान्तरों का विचार कर सकते हैं ।** धन्य है इस आज के दिन को और बड़े भाग्य हैं इस भूमि के कि ऐसे सज्जन पुरुष और ऐसे ऐसे विद्वान् मतमतान्तरों के जानने वाले यहां सुशोभित हुए हैं । आशा है कि सब विद्वान् अपने अपने मतों की वार्ताओं को कोमल वाणी से कहेंगे कि जिससे सत्य और असत्य का निर्णय होकर मनुष्यों की सत्य मार्ग में प्रवृत्ति हो जावेगी ।''

इसके पश्चात् जब मुसलमानों और ईसाइयों की ओर से पांच-पांच मनुष्य और आर्य्यों की ओर से **स्वामी जी** और **मुन्शी इन्द्रमणि जी** दो ही विचार के लिए नियत किये गये तब मौलवियों और पादरियों ने हठ किया

कि आर्य्यों की ओर से भी पांच मनुष्य होने चाहियें । इस पर **स्वामी जी** ने कहा कि आर्य्यों की ओर से हम दो ही बहुत हैं। तब मौलवियों ने पण्डित लक्ष्मण शास्त्री का नाम अपने ही आप पादरियों से लिखवाना चाहा । तब स्वामी जी ने उनसे यह कहा कि आप लोगों को अपनी अपनी ओर के मनुष्यों के लिखवाने का अधिकार है; हमारी ओर का कुछ नहीं । और पण्डित से यह कहा कि आप नहीं जानते ये लोग हमारे और तुम्हारे बीच विरोध कराके आप तमाशा देखना चाहते हैं । इस बात के कहने पर भी एक मौलवी ने पण्डित जी का हाथ पकड़ के उनसे कहा कि तुम भी अपना नाम लिखवा दो । इनके कहने से क्या होता है। तिस पर स्वामी जी ने कहा कि अच्छा जो सब आर्य्य लोगों की सम्मति हो तो इनका भी नाम लिखवा दो, नहीं तो केवल आप लोगों के कहने से इनका नाम नहीं लिखा जावेगा । फिर एक **मौलवी साहब** उठकर बोले कि सब हिन्दुओं से पूछा जावे कि इन दोनों के नाम लिखाने में सब की सम्मति है वा नहीं । इस पर **स्वामी जी** ने कहा कि जैसे आपको सिवाय फिर्के सुन्नत जमात के अहलेशिया आदि फिर्कों ने सम्मति करके नहीं बिठलाया और जैसे कि पादरी साहब को रोमन कैथोलिक फिर्कों ने नियत नहीं किया; ऐसे ही आर्य्य लोगों में भी बहुत सों की हमारे बिठलाने में सम्मति और बहुत सों की असम्मति होगी । परन्तु आप लोगों को हमारे बीच गड़बड़ मचाने का कुछ अधिकार नहीं है । **मुन्शी इन्द्रमणि जी** ने कहा कि हम सब आर्य्य लोग वेदादि शास्त्रों को मानते हैं और पण्डित जी भी इन्हीं को मानते हैं। जो किसी का मत आर्य्य लोगों से वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध हो तो चौथा पन्थ नियत करके भले ही बिठला दीजियेगा ।

इन बातों से मौलवियों का यह अभिप्राय था कि ये लोग आपस में झगड़ें तो हम तमाशा देखें । पण्डित जी का नाम लिखना आर्य्य लोगों ने योग्य न समझा । फिर मौलवी लोग नमाज पढ़ने को चले गये और जब लौटकर आये तब उनमें से मौलवी मुहम्मद कासिम साहब ने कहा कि प्रथम मैं एक घण्टे तक उन प्रश्नों के सिवाय और कुछ अपने मत के अनुसार कहना चाहता हूं । उसमें जो किसी को कुछ शङ्का होगी तो उसका मैं समाधान करूंगा। इसको सब ने स्वीकार किया । मौलवी साहब के कथन का तात्पर्य यह है–

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब–परमेश्वर की स्तुति के पश्चात् यह कहा कि जिस–जिस समय में जो–जो हाकिम हो उसी की सेवा करनी उचित है । जैसे कि इस समय जो गवर्नर है उसी की सेवा करते और उसी की आज्ञा मानते हैं और जिसकी आज्ञापालन का समय व्यतीत हो गया, न कोई

उसकी सेवा करता है और न उसकी आज्ञा को मानता है । और जैसे जब कोई कानून व्यर्थ हो जाता है तो उसके अनुसार कोई नहीं चलता परन्तु जो कानून उसकी जगह नियत किया जाता है उसी के अनुसार सब को चलना होता है । तो इन्हीं दृष्टान्तों के समान जो-जो अवतार और पैगम्बर पूर्व समय में थे और जो-जो पुस्तकें तौरेत, जबूर, बाइबिल उनके समय में उतरी थीं अब उनके अनुसार न चलना चाहिये । इस समय के सब से पिछले पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब हैं । इस लिये उनको पैगम्बर मानना चाहिये। और जो ईश्वरवाक्य अर्थात् कुरान उनके समय में उतरा है उस पर विश्वास करना चाहिये । और हम श्री राम और श्री कृष्ण आदि और ईसा मसीह की निन्दा नहीं करते । क्योंकि वे अपने-अपने समय में अवतार और पैगम्बर थे । परन्तु इस समय तो हजरत मुहम्मद साहब का ही हुकुम चलता है; दूसरे का नहीं। जो कोई हमारे मजहब वा कुरानशरीफ वा हजरत मुहम्मद साहब को बुरा कहेगा, वह मारे जाने के योग्य है ।

पादरी नोबिल साहब—मुहम्मद साहब के पैगम्बर और कुरान के ईश्वरीय वाक्य होने में सन्देह है क्योंकि कुरान में जो-जो बातें लिखी हैं सो-सो बाइबिल की हैं । **इसलिये कुरान अलग आसमानी पुस्तक नहीं हो सकता।** और हजरत ईसामसीह के अवतार होने में कुछ सन्देह नहीं । क्योंकि उसके व्याख्यान से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह सत्यमार्ग बतलाने वाला था । केवल उसके व्याख्यान से ही मनुष्य मुक्ति पा सकता है और उसने चमत्कार भी दिखलाये थे ।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—हम हजरत ईसा को अवतार तो मानते हैं और बाइबिल को आसमानी पुस्तक भी मानते हैं **परन्तु ईसाइयों ने उसमें बहुत कुछ घटत-बढ़त कर दी है** इसलिये यह वही मूल नहीं है । और जो कि उसका कुरान ने खण्डन भी कर दिया है इसलिये वह विश्वास के योग्य नहीं रही । और हमारे हजरत पैगम्बर साहब का अवतार सब से पिछला है, इसलिये हमारा मत सच्चा है ।

फिर और मौलवियों ने बाइबिल में से एक आयत पादरी साहब को दिखलाई और कहा कि देखिये आप ही लोगों ने लिखा है कि इस आयत का पता नहीं लगता ।

पादरी नोबिल साहब—जिस मनुष्य ने यह लिखा है वह सत्यवादी था। जो उसने लेखक-भूल को प्रसिद्ध कर दिया तो कुछ बुरा नहीं किया । और हम लोग सत्य को चाहते हैं असत्य को नहीं, इसलिये हमारा मत सत्य है ।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—यह तो ठीक है कि कुछ बुरा नहीं किया परन्तु जब कि किसी पुस्तक में वा दस्तावेज में एक भी बात झूठ लिखी हुई विदित हो जावे तो वह पुस्तक कदाचित् माननीय नहीं रहती और न वह दस्तावेज ही अदालत में स्वीकार हो सकता है ।

पादरी नोबिल साहब—क्या कुरान में लेखकदोष नहीं हो सकता । इस बात पर हठ करना अच्छा नहीं । और जो हम सत्य ही को मानते हैं और सत्य ही की खोज करते हैं इस कारण उस लेखक-भूल को हमने स्वीकार कर लिया । और तुम्हारे कुरान में बहुत घटत-बढ़त हुई । जिसके प्रमाण में एक मौलवी ईसाई ने अरबी भाषा में बहुत कुछ कहा और सूरतों के प्रमाण दिये ।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—आप बड़े सत्य के खोजी हैं ! (मुख बनाकर) जो आप सत्य ही को स्वीकार करते हैं तो तीन ईश्वर क्यों मानते हो?

पादरी नोबिल साहब—हम तीन ईश्वर नहीं मानते । वे तीनों एक ही हैं अर्थात् केवल एक ईश्वर से ही प्रयोजन है। ईसामसीह में मनुष्यता और ईश्वरता दोनों थीं । इस कारण वह दोनों व्यवहारों को करता है । अर्थात् मनुष्य के आत्मा से मनुष्यों का व्यवहार और ईश्वर के आत्मा से ईश्वर का व्यवहार अर्थात् चमत्कार दिखलाना ।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—वाह वाह ! एक घर में दो तलवार क्योंकर रह सकती हैं ? यह कहना पादरी साहब का अत्यन्त मिथ्या है। उसने तो कहीं नहीं कहा कि मैं ईश्वर हूं । तुम हठ से उसको ईश्वर बनाते हो।

पादरी नोबिल साहब—एक आयत अंजील की पढ़ी और कहा कि यह एक आयत है जिसमें मसीह ने अपने आपको ईश्वर कहा है और कई एक चमत्कार भी दिखलाये हैं। इससे उसके ईश्वर होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—जो वह ईश्वर था तो अपने आपको फांसी से क्यों न बचा सका ?

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब—कुरान में कई एक आयतों का परस्पर विरोध दिखलाया और कहा कि हुकुम का खण्डन हो सकता है; समाचार का नहीं हो सकता । सो आप के कुरान में समाचारों का खण्डन है । पहले बैतूल-मुकद्दस की ओर शिर नमाते थे फिर काबे की ओर नमाने लगे । और कई आयतों का अर्थ भी सुनाया और कहा कि ईसामसीह पर विश्वास लाये विना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती । और तुम्हारे कुरान में बाइबिल का और ईसामसीह का मानना लिखा है । तुम लोग क्यों नहीं मानते हो ?

ऐसी ही बातों के होते होते सन्ध्या हो गई ।

दूसरे दिन की सभा

प्रात:काल के साढ़े सात बजे सब लोग आये, और वे पांच प्रश्न कि जो स्वीकार हो चुके थे पढ़े गये। **वे पांच प्रश्न ये हैं–**

१–सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज से, किस समय और किसलिये बनाया ?

२–ईश्वर सब में व्यापक है वा नहीं ?

३–ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?

४–वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ?

५–मुक्ति क्या है और किस प्रकार मिल सकती है ?

इसके पश्चात् कुछ देर तक यह बात आपस में होती रही कि एक दूसरे को कहता था कि पहले वह वर्णन करे। तदनन्तर **पादरी स्काट साहब** ने पहले प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ किया और यह भी कहा कि यद्यपि यह प्रश्न किसी काम का नहीं। मेरी समझ में ऐसे प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ है। परन्तु जब कि सब की सम्मति है तो मैं इसका उत्तर देता हूं–

पादरी स्काट साहब–यद्यपि हम नहीं जानते कि ईश्वर ने यह संसार किस चीज से बनाया है। परन्तु इतना हम जान सकते हैं कि अभाव से भाव में लाया है। क्योंकि पहले सिवाय ईश्वर के दूसरा पदार्थ कुछ न था। उसने अपने हुकुम से सृष्टि को रचा है। यद्यपि यह भी हम नहीं जान सकते कि उसने कब इस संसार को रचा परन्तु उसका आदि तो है। वर्षों की गणना हम को नहीं जान पड़ती और न सिवाय ईश्वर के कोई जान सकता है। इसलिये इस बात पर अधिक कहना ठीक नहीं।

ईश्वर ने किसलिये इस जगत् को रचा। यद्यपि इसका भी उत्तर हम लोग ठीक-ठीक नहीं जान सकते परन्तु इतना हम जानते हैं कि संसार के सुख के लिये ईश्वर ने यह सृष्टि की है कि जिसमें हम लोग सुख पावें और सब प्रकार के आनन्द करें।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब–उसने अपने शरीर से प्रकट अर्थात् उत्पन्न किया। उससे हम अलग नहीं। जो अलग होते तो उस की प्रभुता में न होते। कब से यह संसार बना यह कहना व्यर्थ है। क्योंकि हम को रोटी खाने से काम है; न यह कि रोटी कब बनी है। यह जगत् सृष्टि के लिये रचा गया है, क्योंकि सब पदार्थ मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचे हैं। और हम को अपनी भक्ति के लिये ईश्वर ने रचा है। देखो ! पृथिवी हमारे लिये है; हम पृथिवी के लिये नहीं। क्योंकि जो हम न हों तो पृथिवी की कुछ

हानि नहीं परन्तु पृथिवी के न होने से हमारी बड़ी हानि होती है । ऐसे ही जल, वायु, अग्नि आदि सब पदार्थ मनुष्य के लिये रचे गये हैं । मनुष्य सब सृष्टि में श्रेष्ठ है । उसको बुद्धि भी इसी श्रेष्ठता की परीक्षा के लिये दी है अर्थात् मनुष्य को अपनी भक्ति के लिये और इस जगत् को मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचा है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—पहले मेरी सब मुसलमानों और ईसाइयों और सुनने वालों से यह प्रार्थना है कि यह मेला केवल सत्य के निर्णय के लिये किया गया है । और यह ही मेला करने वालों का प्रयोजन है कि देखें सब मतों में कौन सा मत सत्य है । जिसको सत्य समझें उस को अङ्गीकार करें । इसलिये यहां हार और जीत की अभिलाषा किसी को न करनी चाहिये। क्योंकि सज्जनों का यह ही मत होना चाहिये कि सत्य की सर्वदा जीत और असत्य की सर्वदा हार होती रहे । परन्तु जैसे मौलवी लोग कहते हैं कि पादरी साहब ने यह झूठ कही । ऐसे ही ईसाई कहते हैं कि मौलवी साहब ने यह बात झूठी कही, ऐसी वार्ता करना उचित नहीं । विद्वानों के बीच यह नियम होना चाहिये कि अपने-अपने ज्ञान और विद्या के अनुसार सत्य का मण्डन और **असत्य का खण्डन कोमल वाणी के साथ करें** कि जिससे सब लोग प्रीति से मिलकर सत्य का प्रकाश करें । एक दूसरे की निन्दा करना, बुरे-बुरे वचनों से बोलना, द्वेष से कहना कि वह हारा और मैं जीता, ऐसा नियम कदाचित् न होना चाहिये । सब प्रकार पक्षपात छोड़कर सत्यभाषण करना सब को उचित है । और एक दूसरे से विरोधवाद करना यह अविद्वानों का स्वभाव है; विद्वानों का नहीं । मेरे इस कहने का यह प्रयोजन है कि कोई इस मेले में अथवा और कहीं कठोर वचन का भाषण न करें ।

अब मैं पहले प्रश्न का उत्तर कि–"ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से और किस समय और किस लिये रचा है ?" अपनी छोटी सी बुद्धि और विद्या के अनुसार देता हूं–

परमात्मा ने सब संसार को प्रकृति से अर्थात् जिसको अव्यक्त अव्याकृत और परमाणु नामों से कहते हैं; रचा है । सो यह ही जगत् का उपादान कारण है। जिसका वेदादि शास्त्रों में नित्य करके निर्णय किया है और यह सनातन है । जैसे ईश्वर अनादि है वैसे ही सब जगत् का कारण भी अनादि है। जैसे ईश्वर का आदि और अन्त नहीं वैसे ही इस जगत् के कारण का भी आदि अन्त नहीं है । जितने इस जगत् में पदार्थ दीखते हैं उनके कारण से एक परमाणु भी अधिक वा न्यून कभी नहीं होता । जब ईश्वर इस जगत् को रचता

है तब कारण से कार्य रचता है । सो जैसा कि यह कार्यजगत् दीखता है वैसा ही इसका कारण है । सूक्ष्म द्रव्यों को मिलाकर स्थूल द्रव्यों को रचता है तब स्थूल द्रव्य होकर देखने और व्यवहार के योग्य होते हैं । और यह जो अनेक प्रकार का जगत् दीखता है उसको इसी कारण से ईश्वर ने रचा है। **जब प्रलय करता है तब इस स्थूल जगत् के पदार्थों के परमाणुओं को पृथक्-पृथक् कर देता है ।** क्योंकि जो-जो स्थूल से सूक्ष्म होता है वह आंखों से दीखने में नहीं आता । तब बालबुद्धि लोग ऐसा समझते हैं कि वह द्रव्य नहीं रहा । परन्तु वह सूक्ष्म होकर आकाश में ही रहता है क्योंकि कारण का नाश कभी नहीं होता और नाश अदर्शन को कहते हैं अर्थात् वह देखने में न आवे । जब एक-एक परमाणु पृथक्-पृथक् हो जाते हैं जब उनका दर्शन* नहीं होता । फिर जब वे ही परमाणु मिलकर स्थूल द्रव्य होते हैं तब दृष्टि में आते हैं । यह नाश और उत्पत्ति की व्यवस्था ईश्वर सदा से करता आया है और ऐसे ही सदा करता जायेगा । इसकी संख्या नहीं कि कितनी वार ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की और कितनी बार कर सकेगा । इस बात को कोई नहीं कह सकता ।

अब इस विषय को जानना चाहिये कि जो लोग 'नास्ति' अर्थात् अभाव से 'अस्ति' अर्थात् भाव मानते हैं और शब्द से जगत् की उत्पत्ति जानते हैं उनका कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं हो सकता क्योंकि अभाव से भाव का होना सर्वथा असम्भव है । जैसे कोई कहे कि वन्ध्या के पुत्र का विवाह मैंने आंखों से देखा तो जो उसके पुत्र होता तो वन्ध्या क्यों कहलाती ? फिर उसके पुत्र का अभाव होने से उसके पुत्र का विवाह कब हो सकता है ? और जैसे कोई कहे कि मैं किसी स्थान में नहीं था और यहां आया हूं अथवा

*** जब कोई वस्तु अत्यन्त छोटी हो जाती है तो फिर उसे और छोटा करना असम्भव है । जो किसी वस्तु के टुकड़े करते-करते उसको इतना छोटा कर दें कि फिर उसके टुकड़े होना असम्भव हो जावे तो उसको परमाणु कहते हैं । जितनी वस्तुएं संसार में हैं वे सब परमाणु से बनती हैं । जब किसी पत्थर को तोड़ डालते हैं और उसके अत्यन्त छोटे-छोटे टुकड़ों को पृथक्-पृथक् कर देते हैं तो वे परमाणु कि जिनके इकट्ठे होने से फिर पत्थर बनता है; सदा किसी न किसी स्वरूप से बने रहते हैं। एक परमाणु का भी इस संसार में से अभाव नहीं होता । केवल स्वरूप और गुणों में भेद हुआ करता है । जब मोम की बत्ती को जलाते हैं तो देखने में यह जान पड़ता है कि थोड़ी देर में सब बत्ती नहीं रहती । न जाने कि क्या हो गई परन्तु वे परमाणु जितने बत्ती में थे और ही रूप के वायु के सदृश हो जाते हैं । उनमें के एक परमाणु का भी अभाव कदाचित् नहीं होता ।**

सर्प बिल में न था और निकल भी आया तो ऐसी वार्ता विद्वानों की नहीं होती । इसमें कोई प्रमाण नहीं क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं फिर वह क्योंकर हो सकती है । जैसे कि हम लोग अपने-अपने स्थानों में न होते तो यहां चांदापुर में कभी न आ सकते । देखो शास्त्र में भी लिखा है–''नासत आत्म-लाभः । न सत आत्महानम्'' अर्थात् जो है सो आगे को होता है और जो नहीं है वह कभी नहीं हो सकता । इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि विना भाव के भाव कभी नहीं हो सकता । क्योंकि इस जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसका कारण कोई न हो ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि भाव से भाव अर्थात् अस्ति से अस्ति होती है । नास्ति से अस्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती । यह ''वदतो व्याघात'' अर्थात् अपनी बात को आप ही काटने के सदृश बात है । पहले किसी वस्तु का अन्यथाभाव कहकर फिर यह कहना कि उसका भाव हो गया; पूर्वापर विरोध है । इसको कोई भी विद्वान् नहीं मान सकता और न किसी प्रमाण से ही सिद्ध कर सकता है कि विना कारण के कोई कार्य हो सके । इसलिये अभाव से भाव तथा अर्थात् नास्ति से वा हुकुम से जगत् की उत्पत्ति का होना सर्वथा असम्भव है । इससे यह ही जानना चाहिये कि ईश्वर ने जगत् के अनादि उपादान कारण से ही सब संसार को रचा है; अन्यथा नहीं ।

यहां दो प्रकार का विचार स्थित होता है । **एक**–यह कि जो जगत् का कारण ईश्वर हो तो ईश्वर ही सारे जगत् का रूप हुआ तो ज्ञान, सुख, दुःख, जन्म, मरण, हानि, लाभ, नरक, स्वर्ग, क्षुधा, तृषा, ज्वर आदि रोग बन्ध और मोक्ष सब ईश्वर में ही घटते हैं । फिर कुत्ता, बिल्ली, चोर, दुष्ट आदि सब ईश्वर ही बन गये । **दूसरा**–यह कि जो सामग्री मानें तो ईश्वर कारीगर के समान होता है तो उत्तर यह है कि कारण तीन प्रकार का होता है। एक उपादान–कि जिसको ग्रहण करके किसी पदार्थ को बनावे । जैसे मिट्टी लेकर घड़ा और सोना लेकर गहना और रूई लेकर कपड़ा बनाया जाय । दूसरा निमित्त–जैसे कुम्हार अपनी विद्या और सामर्थ्य के साथ घड़े को बनाता है। तीसरा साधारण–जैसे चाक आदि साधन और दिशा, काल इत्यादि ।

अब जो ईश्वर को जगत् का उपादान कारण मानें तो ईश्वर ही जगत्‌रूप बनता है क्योंकि मिट्टी से घड़ा अलग नहीं हो सकता । और जो निमित्त मानें तो जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बना सकता और जो साधारण मानें जैसे मिट्टी से अपने आप बिना कुम्हार घड़ा नहीं बन सकता। इन दोनों व्यवस्थाओं में वह पराधीन वा जड़ ठहरता है। इस लिये जो यह

कहते हैं कि ईश्वर जगत् रूप बन गया है तो उनके कहने से चोर आदि होने का दोष ईश्वर में आता है । इससे ऐसी व्यवस्था माननी चाहिये कि **जगत् का कारण अनादि है और नाना प्रकार के जगत् को बनाने वाला परमात्मा है । और इसी प्रकार जीव भी अपने स्वरूप से अनादि हैं और स्थूल कार्य जगत् तथा जीवों के कर्म नित्यप्रवाह से अनादि हैं। ऐसे माने बिना किसी प्रकार से निर्वाह नहीं हो सकता ।**

अब यह कि ईश्वर ने किस समय जगत् को बनाया अर्थात् संसार को बने कितने वर्ष हो गये ? इसका **उत्तर** दिया जाता है–

सुनो भाइयो ! इस प्रश्न का हम लोग तो उत्तर दे सकते हैं आप लोग नहीं दे सकते । क्योंकि जब आप लोगों के मतों में से कोई अठारह सौ वर्ष से, कोई तेरह सौ वर्ष से और कोई पांच सौ वर्ष से उत्पत्ति कहता है तो फिर आप लोगों के मत में इतिहास के वर्षों का लेख किसी प्रकार नहीं हो सकता । और **हम आर्य लोग सदा से कि जब से यह सृष्टि हुई बराबर विद्वान् होते चले आये हैं ।** देखो ! इस देश से और सब देशों में विद्या गई है । इस बात में सब देश वालों के इतिहासों का प्रमाण है कि आर्यावर्त्त देश से मिस्र देश में और वहां से यूनान और यूनान से योरोप आदि में विद्या फैली है । इसलिये इसका इतिहास किसी दूसरे मत में नहीं हो सकता ।

देखो ! हम आर्य लोग संसार की उत्पत्ति और प्रलय विषय में वेद आदि शास्त्रों की रीति से सदा से जानते हैं कि हजार चतुर्युगी का एक ब्राह्मदिन और इतने ही युगों की एक ब्राह्म-रात्रि होती है । अर्थात् जगत् की उत्पत्ति होके जब तक कि वर्तमान होता है उसका नाम ब्राह्मदिन है । और प्रलय होके जब तक हजार चतुर्युगीपर्य्यन्त उत्पत्ति नहीं होती उसका नाम ब्राह्म-रात्रि है । एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं और एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का होता है सो इस समय सातवां वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान हो रहा है । और इससे पहले ये छः मन्वन्तर बीत चुके हैं–स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत और चाक्षुष । अर्थात् १९६०८५२९७९ वर्षों का भोग हो चुका है और अब २३३३२२७०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं। सो हमारे देश के इतिहास में यथार्थ क्रम से सब बातें लिखी हैं । और ज्योतिष शास्त्र में भी मिति, वार प्रति संवत् घटाते बढ़ाते रहे हैं । और ज्योतिष की रीति से जो वर्ष पत्र बनता है उसमें भी यथावत् सब को क्रम से लिखते चले आते हैं । अर्थात् एक-एक वर्ष घटाते और एक-एक वर्ष भोगने में आज तक बढ़ाते आये हैं । इस बात में सब आर्य्यावर्त्त देश के इतिहास एक हैं।

किसी में कुछ विरोध नहीं ।

फिर जब कि जैन मतवाले और मुसलमान इस देश के इतिहासों को नष्ट करने लगे तब आर्य लोगों ने सृष्टि के इतिहास को कण्ठ कर लिया। सो बालक से लेके वृद्ध तक नित्यप्रति उच्चारण करते हैं कि जिसको सङ्कल्प कहते हैं और वह यह है–

ओं तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे आर्य्यावर्त्तान्तरैकदेशेऽमुकनगरेऽमुकसंवत्सरायनर्तुमास-पक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्त्तेऽत्रेदं कार्य कृतं क्रियते वा ।।

जो इसको ही विचार लें तो इससे सृष्टि के वर्षों की गणना बराबर जान पड़ती है ।

जो कोई यह कहे कि हम इस बात को नहीं मान सकते तो उसको उत्तर यह है कि जो परम्परा से मिति, वार, दिन चढ़ाते चले आते हैं और जब कि इतिहासों और ज्योतिष शास्त्रों में भी इसी प्रकार लिखा है तो फिर इसको मिथ्या कोई नहीं कह सकता । जैसे कि बहीखाते में प्रतिदिन मिति, वार लिखते हैं और उसको कोई झूठ नहीं कह सकता । और जो यह कहता है उससे भी पूछना चाहिए कि तुम्हारे मत में सृष्टि की उत्पत्ति को कितने वर्ष हुए हैं ? तब वह या तो छः हजार या सात हजार या आठ हजार वर्ष बतलायेगा । तो वह भी अपने पुस्तकों के अनुसार कहता है तो इसी प्रकार उसको भी कोई नहीं मानेगा क्योंकि यह पुस्तक की बात है ।

और देखो भूगर्भविद्या से जो देखा जाता है तो उससे भी यह ही गणना ठीक-ठीक आती है । इसलिए हम लोगों के मत में तो जगत् के वर्षों की गिनती बन सकती है और किसी के मत में कदाचित् नहीं । इसलिये यह व्यवस्था सृष्टि की उत्पत्ति के वर्षों की सब को ठीक माननी उचित है ।

अब यह कि ईश्वर ने किस लिए सृष्टि को उत्पन्न किया ? इसका उत्तर दिया जाता है–

जीव और जगत् का कारण स्वरूप से अनादि, और जीव के कर्म तथा कार्यजगत् नित्यप्रवाह से अनादि हैं । जब प्रलय होता है तब जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो उनके भोग कराने के लिए और फल देने के लिए ईश्वर सृष्टि को रचता है और अपने पक्षपातरहित न्याय को प्रकाशित करता है । ईश्वर में जो ज्ञान, बल, दया आदि और रचने की अत्यन्त शक्ति है उनके सफल करने के लिये उसने सृष्टि रची है। जैसे आंख देखने के लिए और कान सुनने के लिए हैं वैसे रचनाशक्ति रचने के लिये है । सो अपनी

सामर्थ्य की सफलता करने के लिए ईश्वर ने इस जगत् को रचा है कि सब लोग सब पदार्थों से सुख पावें। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए जीवों के नेत्र आदि साधन भी रचे हैं । इसी प्रकार सृष्टि के रचने में और भी अनेक प्रयोजन हैं कि जो समय कम रहने से अब नहीं कहे जा सकते । विद्वान् लोग आप जान लेंगे ।

पादरी स्काट साहब—जिसकी सीमा होती है वह अनादि नहीं हो सकता। जगत् की सीमा का निरूपण है इसलिये वह अनादि नहीं हो सकता। कोई पदार्थ अपने आपको नहीं रच सकता परन्तु ईश्वर ने जगत् को अपनी सामर्थ्य से रचा है । कोई नहीं जानता कि ईश्वर ने किस पदार्थ से रचा है और पण्डित जी ने भी नहीं बताया कि किस पदार्थ से जगत् को रचा ।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—जब कि सब पदार्थ सदा से हैं तो ईश्वर को मानना व्यर्थ है । कोई उत्पत्ति का समय नहीं कह सकता ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—(पादरी साहब के उत्तर में)—पादरी साहब मेरे कहने को नहीं समझे । मैं तो केवल जगत् के कारण को ही अनादि कहता हूं और जो कार्य है सो अनादि नहीं होता । जैसे मेरा शरीर साढ़े तीन हाथ का है सो उत्पन्न होने से पहले ऐसा न था और न नाश होने के पश्चात् ही ऐसा रहेगा । पर इसमें जितने परमाणु हैं वे नष्ट नहीं होते। इस शरीर के परमाणु पृथक्-पृथक् होकर आकाश में बने रहते हैं और उन परमाणुओं में जो संयोग और वियोग* की शक्ति है तो वह सदा उनमें रहती

*** सब लोग देखते हैं कि अग्नि में बहुत से पदार्थ जल जाते हैं । अब विचार करना चाहिये कि जब कोई पदार्थ जल जाता है तो क्या हो जाता है । देखने में आता है कि लकड़ी जलकर थोड़ी सी राख रह जाती है । तो अब यह विचारना चाहिए कि जलने से वह पदार्थ ही नष्ट हो जाता है वा उसका स्वरूप ही बदल जाता है ? जब मोमबत्ती जलाते हैं तो देखने में वह मोम नहीं रहता । यह जान नहीं पड़ता कि कहां गया परन्तु उस मोम का स्वरूप बदलकर वायु के सदृश हो जाता है और इसी कारण वायु में मिल जाने से दृष्टि में नहीं आता ।**

इस की परीक्षा के लिये एक बोतल के भीतर मोमबत्ती जलाओ और उसका मुख बन्द कर दो तो उस बत्ती का जितना भाग वायु के सदृश हो जावेगा वह बोतल से बाहर नहीं जा सकेगा । पर थोड़ी देर के पीछे यह दिखलाई देगा कि वह बत्ती बुझ गई । अब यह सोचना चाहिए कि बत्ती क्यों बुझ गई और बोतल के वायु में अब कुछ भेद हुआ वा नहीं ? इस बात की परीक्षा इस प्रकार होगी कि थोड़ा सा चूने का पानी उस बोतल में और एक और बोतल में जिसमें केवल वायु भरा हुआ हो और उसमें कोई बत्ती न जली हो, डालो; तो यह दिखलाई देगा कि जिस बोतल में जली है उसमें चूने का रंग दूध सा हो जावेगा और दूसरी बोतल का जैसे का तैसा

है । जैसा मिट्टी से घड़ा बनाया जो कि बनाने के पहले नहीं था और नाश होने के पश्चात् भी नहीं रहेगा परन्तु जो मिट्टी है वह नष्ट नहीं होती । और जो गुण अर्थात् चिकनापन उसमें है कि जिससे वह पिण्डाकार होता है वह भी मिट्टी में सदा से है । वैसे ही संयोग और वियोग होने की योग्यता परमाणुओं में सदा से है । इससे यह समझना चाहिए कि जिन परमाणु द्रव्यों से यह जगत् बना है वे द्रव्य अनादि हैं, कार्य द्रव्य नहीं । और मैंने यह कब कहा था कि जगत् के पदार्थ स्वयम् अपने को बना सकते हैं मेरा कहना तो यह था कि ईश्वर ने उस कारण से जगत् को रचा है ।

और जो पादरी साहब ने कहा कि शक्ति से जगत् को रचा है तो मैं पूछता हूं कि शक्ति कोई वस्तु है वा नहीं ? जो कहो कि है तो वह अनादि हुई । और जो कहो कि नहीं तो उससे आगे को दूसरी कोई वस्तु भी नहीं बन सकती । और जो पादरी साहब ने कहा कि पण्डित जी ने यह नहीं बताया कि किस से यह जगत् बना है उसको प्रकृति आदि नामों से कि जिसको परमाणु भी कहते हैं; कहा था ।

(मौलवी साहब के उत्तर में)–**सब पदार्थों का कारण अनादि है तो भी ईश्वर को मानना अवश्य है** क्योंकि मिट्टी में यह सामर्थ्य नहीं कि आप से आप घड़ा बन जाये । जो कारण होता है वह आप कार्यरूप नहीं बन सकता क्योंकि उसमें बनने का ज्ञान नहीं होता । और कोई जीव भी उसको नहीं बना सकता । आज तक किसी ने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई जैसा कि यह मेरा रोम है । ऐसी वस्तु कोई नहीं बना सकता । और आज तक ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ और न है कि जो परमाणुओं को पकड़ के किसी युक्ति से उनसे ऐसी वस्तु बना सके । कोई दो त्रसरेणुओं का भी संयोग नहीं कर सकता । इससे यह सिद्ध हुआ कि केवल उस परमेश्वर की ही यह सामर्थ्य है कि सब जगत् को रचे ।

देखो ! एक आंख की रचना में ही कितनी विद्या का दृष्टान्त है । आज तक बड़े-बड़े वैद्य अपनी बुद्धि लगाते चले आते हैं तो भी आंख की विद्या अधूरी ही है । कोई नहीं जानता कि किस-किस प्रकार और क्या-क्या गुण ईश्वर ने उसमें रक्खे हैं । इसलिये सूर्य, चांद आदि जगत् का रचना और

रहेगा। इससे सिद्ध हुआ कि बत्ती के जलाने से कोई नई वस्तु बोतल के वायु में मिल गई है । वह एक वस्तु वायु के सदृश है कि जो दृष्टि में नहीं आती। अब देखना चाहिए कि मोमबत्ती का कोई परमाणु नष्ट नहीं होता पर जिन पदार्थों से वह बत्ती बनी है उनका स्वरूप भिन्न हो जाता है।।

धारण करना ईश्वर ही का काम है । तथा जीवों के कर्म्मों के फल का पहुंचाना यह भी परमात्मा ही का काम है किसी दूसरे का नहीं । इससे ईश्वर को मानना अवश्य है ।

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब—जब दो वस्तु हैं—एक कार्य, दूसरा कारण तो दोनों अनादि नहीं हो सकते । इससे ईश्वर ने नास्ति से अस्ति अपनी सामर्थ्य से की है ।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—गुण दो प्रकार के होते हैं—एक अन्तःस्थ दूसरे बाह्य । अन्तःस्थ तो अपने में होते हैं और बाह्य दूसरे से अपने में आते हैं । और अन्तःस्थ गुण दूसरे में जाकर वैसे ही बन जाते हैं परन्तु जिसके गुण होते हैं वह उससे पृथक् होता है। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जिस बर्तन में पड़ता है वैसा ही बन जाता है परन्तु सूर्य नहीं हो जाता । वैसे ही ईश्वर ने हम को अपनी इच्छा से बनाया है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—(ईसाई साहब के उत्तर में)—आप दोनों के अनादि होने में क्यों शङ्का करते हैं ? क्योंकि जितने पदार्थ इस जगत् में बने हैं उन सब का कारण अर्थात् परमाणु आदि सब अनादि हैं । और जीव भी अनादि हैं कि जिनकी संख्या कोई नहीं बता सकता । और नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती सो मैं पहले कह चुका हूं । परन्तु आप जो कहते हैं कि शक्ति से बनाया तो बतलाओ कि शक्ति क्या वस्तु है ? जो कहो कि कोई वस्तु है तो फिर वही कारण ठहरने से अनादि हुई । और ईश्वर के नाम, गुण, कर्म सब अनादि हैं; कोई अब नहीं बने ।

(मौलवी साहब के उत्तर में)—आप जो यह कहो कि भीतर के गुणों से जगत् बना है तो भी नहीं हो सकता क्योंकि गुण द्रव्य के विना अलग नहीं रह सकते और गुण द्रव्य से बन भी नहीं सकता । जब भीतर के गुणों से जगत् बना है तो जगत् भी ईश्वर हुआ । जो यह कहो कि बाहर के गुणों से जगत् बना तो ईश्वर के सिवाय आपको भी वे गुण और द्रव्य अनादि मानने पड़ेंगे । और जो यह कहो कि इच्छा से हम लोग बन गये तो मेरा यह प्रश्न है कि इच्छा कोई वस्तु है वा गुण है ? जो वस्तु कहोगे तो वह अनादि ठहर जायेगी और जो गुण मानोगे तो जैसे केवल इच्छा से घड़ा नहीं बन सकता परन्तु मिट्टी से बनता है तो वैसे ही इच्छा से हम लोग नहीं बन सकते ।

पादरी स्काट साहब—हम लोग इतना जानते हैं कि नास्ति से अस्ति को ईश्वर ने बनाया। यह हम नहीं जानते कि किस पदार्थ से और किस प्रकार यह जगत् बनाया । इसको ईश्वर ही जानता है । मनुष्य कोई नहीं जान सकता।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—ईश्वर ने अपने प्रकाश से जगत् बनाया है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—(पादरी साहब के उत्तर में) कार्य को देखकर कारण को देखना चाहिये कि जो वस्तु कार्य है वैसा ही उसका कारण होता है । जैसे घड़े को देखकर उसका कारण मिट्टी जान लिया जाता है कि जो वस्तु घड़ा है वही वस्तु मिट्टी है । आप कहते हैं कि अपनी शक्ति से जगत् को रचा, सो मेरा यह प्रश्न है कि वह शक्ति अनादि है वा पीछे से बनी है ? जो अनादि है तो द्रव्यरूप उसको मान लो तो उसी को जगत् का अनादि कारण मानना चाहिये ।

(मौलवी साहब के उत्तर में)—नूर कहते हैं प्रकाश को, उस प्रकाश से कोई दूसरा द्रव्य नहीं बन सकता। परन्तु वह नूर मूर्तिमान् द्रव्य को प्रसिद्ध दिखला सकता है और वह प्रकाश करने वाले पदार्थ के विना अलग नहीं रह सकता। इससे जगत् का जो कारण प्रकृति आदि अनादि है उसको माने विना किसी प्रकार से किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। और हम लोग भी कार्य को अनादि नहीं मानते परन्तु जिससे कार्य बना है उस कारण को अनादि मानते हैं ।

एक हिन्दुस्तानी ईसाई साहब—जो ईश्वर ने अपनी प्रकृति से सब संसार को रचा तो उसकी प्रकृति में सब संसार सनातन था । और वह उसकी प्रकृति में अनादि था तो ईश्वर की सीमा हो गई ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—जबकि ईश्वर की प्रकृति में सब जगत् था तब ही तो वह अनादि हुआ और वही अनादि वस्तु रचने से सीमा में आई। अर्थात् लम्बा-चौड़ा, बड़ा-छोटा आदि सब प्रकार का ईश्वर ने उसमें से बनाया। इसलिये रचे जाने से केवल जगत् ही की सीमा हुई; ईश्वर की नहीं ।

अब देखिये मैंने जो पहले कहा था कि नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती किन्तु भाव से ही भाव होता है सो आप लोगों के कहने से भी वह बात सिद्ध हो गई कि जगत् का कारण अनादि है ।

ईसाई साहब—सुनो भाई मौलवी साहबो ! कि पण्डित जी इसका उत्तर हजार प्रकार से दे सकते हैं । हम और तुम हजारों मिलकर भी इन से बात करें तो भी पण्डित जी बराबर उत्तर दे सकते हैं । इसलिये इस विषय में अधिक कहना उचित नहीं ।

ग्यारह बजे तक यह वार्ता सिद्ध हुई । फिर सब लोग अपने-अपने डेरों को चले गये । और सब जगह मेले में यही बातचीत होती थी कि जैसा पण्डित जी को सुनते थे उससे सहस्त्रगुणा पाया ।

दोपहर के पश्चात् की सभा

फिर एक बजे सब लोग आये और इस पर विचार किया कि अब समय बहुत थोड़ा और बातें बहुत बाकी हैं इसलिये केवल **मुक्ति विषय पर विचार करना उचित है ।** प्रथम थोड़ी देर तक ये बातें होती रहीं कि पहले कौन वर्णन करे ? एक दूसरे पर टालता था । तब स्वामी जी ने कहा कि उसी क्रम से भाषण होना चाहिये । अर्थात् पहले पादरी साहब, फिर मौलवी साहब और फिर मैं । परन्तु जब पादरी साहब और मौलवी साहब दोनों ने कहा कि हम पहले न बोलेंगे तब स्वामी जी ने ही पहले कहना स्वीकार किया ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—मुक्ति कहते हैं छूट जाने को अर्थात् जितने दु:ख हैं उनसे सब छूटकर एक सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहना, फिर जन्म-मरण आदि दु:खसागर में नहीं गिरना। इसी का नाम मुक्ति है । वह किस प्रकार से होती है ? इसका पहला साधन सत्य का आचरण है और वह सत्य आत्मा और परमात्मा की साक्षी से निश्चय करना चाहिये अर्थात् जिसमें आत्मा और परमात्मा की साक्षी न हो, वह असत्य है । जैसे किसी ने चोरी की । जब वह पकड़ा गया उससे राजपुरुष ने पूछा कि तू ने चोरी की या नहीं ? तब तक वह कहता है कि मैंने चोरी नहीं की । परन्तु उसका आत्मा भीतर से कह रहा है कि मैंने चोरी की है। तथा जब कोई झूठ की इच्छा करता है तब अन्तर्यामी परमेश्वर उसको जता देता है कि यह बुरी बात है । इसको तू मत कर और लज्जा, शङ्का और भय आदि उसके आत्मा में उत्पन्न कर देता है । और जब सत्य की इच्छा करता है तब उसके आत्मा में आनन्द कर देता है । और प्रेरणा करता है कि यह काम तू कर । अपना आत्मा जैसे सत्य काम करने में निर्भय और प्रसन्न होता है वैसे झूठ में नहीं होता । **जब परमात्मा की आज्ञा को तोड़कर बुरा काम कर लेता है तब उस की मुक्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती।** और उसी को असुर, दुष्ट, दैत्य और नीच कहते हैं । इसमें वेद का प्रमाण है कि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

यजुर्वेद, अध्याय ४० । मन्त्र ३ ॥

आत्मा का हिंसन करने वाला अर्थात् जो परमेश्वर की आज्ञा को तोड़ता है और अपने आत्मा के ज्ञान के विरुद्ध बोलता, करता और मानता है **उसी का नाम असुर, राक्षस, दुष्ट, पापी, नीच आदि होता है ।**

मुक्ति के मिलने के साधन ये हैं १—सत्य आचरण । २—सत्यविद्या अर्थात् ईश्वरकृत वेदविद्या को यथावत् पढ़कर ज्ञान की उन्नति और सत्य का पालन यथावत् करना । ३—सत्यपुरुष ज्ञानियों का सङ्ग करना । ४—योगाभ्यास करके अपने मन, इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से हटाकर सत्य में स्थिर करना और ज्ञान को बढ़ाना । ५—परमेश्वर की स्तुति करना अर्थात् उसके गुणों की कथा सुनना और विचारना । ६—प्रार्थना कि जो इस प्रकार होती है कि—हे जगदीश्वर ! हे कृपानिधे ! हे अस्मत्पितः ! असत्य से हम लोगों को छुड़ा के सत्य में स्थिर कर और हे भगवन् ! हम को अन्धकार अर्थात् अज्ञान और अधर्म आदि दुष्टकामों से अलग करके विद्या और धर्म आदि श्रेष्ठ कामों में सदा के लिये स्थापन कर । और हे ब्रह्म ! हम को जन्म-मरणरूप संसार के दुःखों से छुड़ाकर अपने कृपाकटाक्ष से अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर ।

जब सत्य मन से अपने आत्मा, प्राण और सब सामर्थ्य से परमेश्वर को जीव भजता है तब वह करुणामय परमेश्वर उसको अपने आनन्द में स्थिर कर देता है । जैसे जब कोई छोटा बालक घर के ऊपर से अपने माता-पिता के पास नीचे आना चाहता है वा नीचे से ऊपर उनके पास जाना चाहता है तब हजारों आवश्यकता के कामों को भी माता पिता छोड़कर और दौड़कर अपने लड़के को उठाकर गोद में लेते हैं कि हमारा लड़का कहीं गिर पड़ेगा तो उसको चोट लगने से उसको दुःख होगा । और जैसे माता-पिता अपने बच्चों को सदा सुख में रखने की इच्छा और पुरुषार्थ सदा करते रहते हैं वैसे ही परम कृपानिधि परमेश्वर की ओर जब कोई सच्चे आत्मा के भाव से चलता है, तब वह अनन्तशक्तिरूप हाथों से उस जीव को उठाकर अपनी गोद में सदा के लिए रखता है । फिर उसको किसी प्रकार का दुःख नहीं होने देता है और वह सदा आनन्द में रहता है ।

पक्षपात को छोड़कर सत्य ग्रहण और असत्य का परित्याग कर के अर्थ को सिद्ध करना चाहिए । **देखो ! सब अन्याय और अधर्म पक्षपात से होता है।** जैसे कि मौलवी साहब का वस्त्र बहुत अच्छा है । मुझ को मिले तो मैं उसको ओढ़कर सुख पाऊं । इसमें अपने सुख का पक्षपात किया और मौलवी साहब के सुख-दुःख का कुछ विचार न किया । इसी प्रकार पक्षपात से ही नित्य अधर्म होता है । **अधर्म से काम को सिद्ध करना इसी को अनर्थ कहते हैं ।** और **धर्म और अर्थ से कामना अर्थात् अपने सुख की सिद्धि करना इस को काम कहते हैं ।** और अधर्म अर्थात् अनर्थ से

काम की सिद्धि करना इसको कुकाम कहते हैं । इसलिए इन तीनों अर्थात् **धर्म, अर्थ और काम से मोक्ष को सिद्ध करना उचित है ।** इसमें यह बात है कि **ईश्वर की आज्ञा का पालन करना इसको धर्म,** और उसकी आज्ञा का तोड़ना इसको अधर्म कहते हैं । सो धर्म आदि ही मुक्ति के साधन हैं और कोई नहीं । और मुक्ति सत्य पुरुषार्थ से सिद्ध होती है; अन्यथा नहीं ।

पादरी स्काट साहब–पण्डित जी ने कहा कि सब दु:खों से छूटने का नाम मुक्ति है, परन्तु मैं कहता हूं कि सब पापों से बचने और स्वर्ग में पहुंचने का नाम मुक्ति है। कारण यह कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने उसको बहका के उससे पाप करा दिया। इससे उसकी सब सन्तान भी पापी है। जैसे घड़ी बनाने वाले ने उसकी चाल स्वतन्त्र रक्खी है और वह आप ही चलती है। ऐसे मनुष्य भी अपनी इच्छा से पाप करते हैं तो फिर अपने ऐश्वर्य से मुक्ति नहीं पा सकते और न पापों से बच सकते हैं। इसलिए प्रभु ईसामसीह पर विश्वास किये बिना मुक्ति नहीं हो सकती। जैसे हिन्दू लोग कहते हैं कि कलियुग मनुष्यों को पाप कराके बिगाड़ता है इससे उनकी मुक्ति नहीं हो सकती । परन्तु ईसामसीह पर विश्वास करने से वे भी बच सकते हैं ।

प्रभु ईसामसीह जिस–जिस देश में गये अर्थात् उसकी शिक्षा जहां–जहां गई है वहां–वहां मनुष्य पापों से बचते जाते हैं । देखो ! इस समय सिवाय ईसाइयों के और किसी के मत में भलाई और अच्छे गुणों की उन्नति है ? मैं एक दृष्टान्त देता हूं कि जैसे पण्डित जी बलवान् हैं ऐसे ही इंगलिस्तान में एक मनुष्य बलवान् था । परन्तु वह मद्यपान, चोरी, व्यभिचार आदि बुरे काम करता था। जब वह ईसामसीह पर विश्वास लाया तब वह सब बुराइयों से छूट गया । और मैंने भी जब मसीह पर विश्वास किया तब मुक्ति को पाया और बुरे कामों से बच गया । सो ईसामसीह की आज्ञा के विरुद्ध आचरण से मुक्ति नहीं हो सकती । इसलिये सब को ईसामसीह पर विश्वास लाना चाहिए। उसी से मुक्ति हो सकती है और किसी प्रकार नहीं ।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब–हम लोग यह नहीं कह सकते कि पण्डित जी ने जो मुक्ति के साधन कहे केवल उन से ही मुक्ति हो सकती है। क्योंकि ईश्वर की इच्छा है जिसको चाहे उसको मुक्ति दे और जिसको न चाहे न दे । जैसे समय का हाकिम जिस अपराधी से प्रसन्न हो उसको छोड़ दे और जिससे अप्रसन्न हो उसको कैद में डाल दे । उसकी इच्छा है जो चाहे सो करे । उस पर हमारा ऐश्वर्य नहीं है । न जाने ईश्वर क्या करेगा।

पर समय के हाकिम पर विश्वास रखना चाहिए । इस समय का हाकिम हमारा पैगम्बर है। उस पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है। हाँ ! यह बात अवश्य है कि विद्या से अच्छे काम हो सकते हैं परन्तु मुक्ति तो केवल उसी के हाथ में है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी–(पादरी साहब के उत्तर में)–आपने जो यह कहा कि दु:खों से छूटना मुक्ति नहीं, पापों से छूटने का नाम मुक्ति है। सो मेरे अभिप्राय को न समझकर यह बात कही है । क्योंकि मैं तो और पहले साधन में ही सब पापों अर्थात् असत्य कामों से बचना कह चुका हूं। और बुरे कामों का फल भी दु:ख कहाता है अर्थात् जब पाप करेगा तो दु:ख से नहीं बच सकता । इसके अनन्तर और साधनों में भी स्पष्ट कहा है कि अधर्म छोड़कर धर्म का आचरण करना मुक्ति का साधन है । जो पादरी साहब इन बातों को समझते तो कदाचित् ऐसी बात न कहते ।

दूसरे, जो आप यह कहते हैं कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने बहकाकर पाप करा दिया तो उसकी सन्तान भी इसी कारण से पापी हो गई । सो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि आप लोग ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते ही हैं । सो जब कि ईश्वर के पवित्र बनाये आदम को शैतान ने बिगाड़ दिया और ईश्वर के राज्य में विघ्न करके ईश्वर की व्यवस्था को तोड़ डाला तो इससे ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं रह सकता । और ईश्वर की बनाई हुई वस्तु को कोई नहीं बिगाड़ सकता है।

और एक आदम ने पाप किया तो उसकी सारी सन्तान पापी हो गई यह सर्वथा असम्भव और मिथ्या है । जो पाप करता है वही दु:ख पाता है दूसरा कोई नहीं पा सकता और ऐसी बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा । और देखो एक आदम और हव्वा से किसी प्रकार इस जगत् की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती क्योंकि बहन और भाई का विवाह होना बड़े दोष की बात है। इसलिए ऐसी व्यवस्था मानना चाहिए कि सृष्टि के आदि में बहुत से पुरुष और स्त्री परमेश्वर ने रचे ।

और जो यह कहा कि शैतान बहकाता है तो मेरा यह प्रश्न है कि जब शैतान ने सब को बहकाया तो फिर शैतान को किस ने बहकाया ? जो कहो कि शैतान आप से आप ही बहक गया तो सब जीव भी आप से आप ही बहक गये होंगे फिर शैतान को बहकाने वाला मानना व्यर्थ है । जो कहो कि शैतान को भी किसी ने बहकाया है तो सिवाय ईश्वर के दूसरा कोई बहकाने वाला शैतान को नहीं है । तो फिर जब ईश्वर ने ही सब को बहकाया

तब मुक्ति देनेवाला कोई भी आप लोगों के मत में न रहा और न मुक्ति पाने वाला । क्योंकि जब परमात्मा ही बहकाने वाला ठहरा तो बचाने वाला कोई भी नहीं हो सकता । और यह बात परमात्मा के स्वभाव से भी विरुद्ध है क्योंकि वह न्यायकारी और सत्य कामों का ही कर्त्ता है तथा अच्छे कामों से ही प्रसन्न होता है। वह किसी को दु:ख देनेवाला और बहकाने वाला नहीं।

और देखो ! कैसे आश्चर्य की बात है कि यदि शैतान ईश्वर के राज्य में इतना गड़बड़ करता है फिर भी ईश्वर उसको दण्ड न देता है, न मारता है, न कारागृह में डालता है । इससे स्पष्ट परमात्मा की निर्बलता पायी जाती है और विदित होता है कि परमात्मा ही को बहकाने की इच्छा है । इससे यह बात ठीक नहीं और न शैतान कोई मनुष्य है । जब तक शैतान के मानने वाले शैतान का मानना न छोड़ेंगे तब तक पाप करने से नहीं बच सकते क्योंकि वे समझते हैं कि हम तो पापी ही नहीं । जैसा शैतान ने आदम को और उसकी सन्तान को बहका के पापी किया वैसा ही परमात्मा ने आदम की सन्तान के पाप के बदले में अपने एकलौते बेटे को शूली पर चढ़ा दिया। फिर हम को क्या डर है । और जो हम से कुछ पाप भी होता है तो हमारा विश्वास ईसामसीह पर है वह आप क्षमा करा देगा । क्योंकि उसने हमारे पापों के बदले में जान दी है । इसलिये ऐसी व्यवस्था मानने वाले पापों से नहीं बच सकते ।

और जो घड़ी का दृष्टान्त दिया था सो ठीक है । क्योंकि सब अपने-अपने काम करने में स्वतन्त्र हैं परन्तु ईश्वर की आज्ञा अच्छे कामों के करने के लिये है; बुरे के लिये नहीं । और जो आपने यह कहा कि स्वर्ग में पहुंचना मुक्ति है । शैतान के बहकाने के कारण मनुष्यों में शक्ति नहीं कि पापों से छूटकर मुक्ति पा सकें यह बात भी ठीक नहीं । क्योंकि जब मनुष्य स्वतन्त्र हैं और शैतान कोई मनुष्य नहीं तो आप दोषों से बचकर परमात्मा की कृपा से मुक्ति को पा सकते हैं । और स्वर्ग से आदम गेहूं खाने के कारण निकाला गया और यह ही आदम को पाप हुआ कि गेहूं खाया तो मैं आप से पूछता हूं कि आदम ने तो गेहूं खाया और पापी हो गया और स्वर्ग से निकाला गया। आप लोग जो उस स्वर्ग की इच्छा करते हैं तो क्या आप लोग वहां सब पदार्थ खावेंगे ? तो क्या पाप नहीं होगा ? और वहां से निकाले नहीं जाओगे ? इससे यह बात भी ठीक नहीं हो सकती ।

और आप लोगों ने ईश्वर को मनुष्य के सदृश माना होगा अर्थात् जैसे मनुष्य सर्वज्ञ नहीं वैसे ही आपने परमात्मा को भी माना होगा कि जिससे

आप वहां गवाही और वकील की आवश्यकता बतलाते हैं । परन्तु आपके ऐसे कहने से ईश्वर की ईश्वरता सब नष्ट हो जाती है । वह सब कुछ जानता है उसको गवाही और वकील की कुछ आवश्यकता नहीं है । और उसको किसी की सिफारिश की भी आवश्यकता नहीं । क्योंकि सिफारिश न जानने वाले से की जाती है । और देखिये ! आपके कहने से परमात्मा पराधीन ठहरता है क्योंकि विना ईसामसीह की गवाही वा सिफारिश के वह किसी को मुक्ति नहीं दे सकता और कुछ भी नहीं जानता । इससे परमात्मा में अल्पज्ञता आती है कि जिससे वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ किसी प्रकार नहीं हो सकता। और देखो ! जबकि वह न्यायकारी है तो किसी की सिफारिश और मिथ्या प्रशंसा से न्याय के विरुद्ध कदाचित् नहीं कर सकता **जो विरुद्ध करता है तो न्यायकारी नहीं ठहर सकता ।**

इसी प्रकार जो आप मनुष्य हाकिम के सदृश **ईश्वर के दरबार में भी फरिश्तों का होना मानोगे तो और बहुत से दोष ईश्वर में आवेंगे।** इससे ईश्वर सर्वव्यापक नहीं हो सकता क्योंकि जो सर्वव्यापक है तो शरीर वाला न होना चाहिये । और जो सर्वव्यापक नहीं है तो अवश्य है कि शरीर वाला हो । और शरीर वाला होने से उसकी शक्ति सब पर घेरने वाली न हुई। और शरीर वाला जितना दूर का ज्ञान रखता है पर उसको पकड़ और मार नहीं सकता । और जो शरीर वाला होगा उसका जन्म और मरण भी अवश्य होगा । इसलिये ईश्वर को किसी एक जगह पर और फरिश्तों का उसके दरबार में होना, ऐसी बातें मानना किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता। नहीं तो ईश्वर की सीमा हो जायेगी ।

देखो ! हम आर्य्य लोगों के शास्त्रों को यथावत् पढ़े बिना लोगों को उलटा निश्चय हो जाता है अर्थात् कुछ का कुछ मान लिया जाता है । जो पादरी साहब ने कलियुग के विषय में कहा सो ठीक नहीं । क्योंकि हम आर्य्य लोग युगों की व्यवस्था इस प्रकार से नहीं मानते । ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि—

कलिश्शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥

(ऐत० पञ्जिका ७ । कण्डिका १५)

अर्थात् जो पुरुष सर्वथा अधर्म करता है और नाममात्र धर्म करता है उसको कलि, और जो आधा अधर्म और आधा धर्म करता है उसको द्वापर और एक हिस्सा अधर्म और तीन हिस्से धर्म करता है उसको त्रेता और जो

सर्वथा धर्म करता है उसको सतयुग कहते हैं ।

इसके जाने विना कोई बात कह देना ठीक नहीं हो सकती । इससे जो कोई बुरा काम करता है वह दु:ख पाने से कदाचित् नहीं बच सकता। और जो कोई अच्छा काम करता है वह दु:ख पाने से बच जाता है, किसी भी देश में चाहे क्यों न हो ।

क्या ईसामसीह के विना ईश्वर अपने सामर्थ्य से अपने भक्तों को नहीं बचा सकता है ? वह अपने भक्तों को सब प्रकार से बचा सकता है । उसको किसी पैगम्बर की आवश्यकता नहीं । हाँ ! यह सच है कि जब जिस-जिस देश में शिक्षा करनेवाले धर्मात्मा उत्तम पुरुष होते हैं उस-उस देश के मनुष्य पापों से बच जाते हैं । और उन्हीं देशों में सुख और गुणों की वृद्धि होती है । यह भी सब लोगों के लिये सुधार है । इसका कुछ मत से प्रयोजन नहीं। देखो ! आर्य लोगों में पूर्व उपदेश की व्यवस्था अच्छी थी । इससे उस समय में वे सुधरे हुए थे । इस समय में अनेक कारणों से सत्य उपदेश कम होने से जो किसी बात का बिगाड़ हो तो इससे आर्य लोगों के सनातन मत में कोई दोष नहीं आ सकता । क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति के समय से लेके आजतक आर्यों ही का मत चला आता है । वह अब तक कुछ नहीं बिगड़ा ।

देखो ! जितने १८०० वा १३०० वर्षों के भीतर **ईसाइयों और मुसलमानों** के मतों में आपस के विरोध से फिरके हो गये हैं । उनके सामने जो **१९६०८५२९७६ वर्षों के भीतर आर्यों के मत में बिगाड़ा हुआ तो वह बहुत ही कम है ।** और आप लोगों में जितना सुधार है सो मत के कारण नहीं किन्तु पार्लिमेण्ट आदि उत्तम प्रबन्ध से है, जो ये न रहें, मत से कुछ भी सुधार न हो । और पादरी साहब ने जो इंगलिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टान्त मेरे साथ मिलाकर दिया सो इस प्रकार कहना उनको योग्य न था । परन्तु न जाने किस प्रकार से यह बात भूल से उनके मुख से निकली।

(मौलवी साहब के उत्तर में)–**ईश्वर चाहे सो करे ऐसा ठीक नहीं।** क्योंकि वह पूर्ण विद्या और ठीक-ठीक न्याय पर सदा रहता है । किसी का पक्षपात नहीं करता । इस कहने से कि जो चाहे सो करे यह भी आता है कि ईश्वर ही बुराई भी करता होगा और उसी की इच्छा से बुराई होती है, यह कहना ईश्वर में नहीं बनता । ईश्वर जो कोई मुक्ति का काम करता है उसी को मुक्ति देता है । मुक्ति के काम के विना किसी को मुक्ति नहीं देता, क्योंकि वह अन्याय कभी नहीं करता । जो विना पाप-पुण्य के देखे जिसको चाहे दु:ख देवे और जिसको चाहे सुख तो ईश्वर में अन्याय आदि

प्रमाद लगता है। सो वह ऐसा कभी नहीं करता। जैसे अग्नि का स्वभाव प्रकाश और जलाने का है । इनके विरुद्ध नहीं कर सकता । वैसे ही परमात्मा भी अपने न्याय के स्वभाव से विरुद्ध पक्षपात से कोई व्यवस्था नहीं कर सकता।

सब समय का हाकिम मुक्ति के लिए परमेश्वर ही है; दूसरा कोई नहीं। और जो कोई दूसरे को माने, उसका मानना व्यर्थ है । मुक्ति दूसरे पर विश्वास करने से कभी नहीं हो सकती । क्योंकि ईश्वर जो मुक्ति देने में दूसरे के आधीन है या दूसरे के कहने से दे सकता है तो **मुक्ति देने में ईश्वर पराधीन है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता।** वह किसी का सहाय अपने काम में नहीं लेता क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है । मैं जानता हूं कि सब विद्वान् ऐसा ही मानते होंगे । जो पक्षपात से औरों के दिखाने को न मानते हों तो दूसरी बात है ।

इसमें मुझ को बड़ा आश्चर्य है कि परमात्मा को "लाशरीक" भी मानते हैं और फिर पैगम्बरों को भी मुक्ति देने में उसके साथ मिला देते हैं । यह बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा । इससे यह सिद्ध होता है कि परमेश्वर धर्मात्मा मनुष्यों को मुक्ति के काम करने से मुक्ति स्वतन्त्रता से दे सकता है किसी की सहायता के आधीन नहीं । मनुष्य को ही आपस में सहायता की आवश्यकता है; ईश्वर को नहीं । न वह मिथ्या प्रसन्न होने वाला है । जो मिथ्या प्रसन्न होकर अन्याय करे । वह तो अपने सत्य धर्म और न्याय से सदा युक्त है और अपने सत्य प्रेम से भरे हुए भक्तों को यथावत् मुक्ति देकर और सब दु:खों से बचाकर सदा के लिये आनन्द में रखता है । इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।

इतने में चार बज गये । स्वामी जी ने कहा कि हमारा व्याख्यान बाकी है । मौलवी साहब ने कहा कि हमारे नमाज का समय आ गया । पादरी स्काट साहब ने स्वामी जी से कहा कि हम को आप से एकान्त में कुछ कहना है सो वे दोनों तो उधर गये । इधर एक ओर तो एक मौलवी मेज पर जूता पहने हुए खड़े होकर और दूसरी ओर पादरी अपने मत का व्याख्यान देने लगे ।

और कितने ही लोगों ने यह उड़ा दिया कि मेला हो चुका । तब स्वामी जी ने पादरी और आर्य लोगों से पूछा कि यह क्या गड़बड़ हो रहा है ? मौलवी लोग नमाज पढ़कर आये वा नहीं ? उन्होंने उत्तर दिया कि मेला तो हो चुका। इस पर **स्वामी जी** बोले कि ऐसे झटपट मेला किसने समाप्त कर दिया ? न किसी की सम्मति ली गई न किसी से पूछा गया । अब आगे कुछ बातचीत होगी वा नहीं ?

जब वहां बहुत गड़बड़ देखी और संवाद की कोई व्यवस्था न जान

पड़ी तो लोगों ने स्वामी जी से कहा कि आप भी चलिये । मेला तो पूरा हो ही गया । इस पर **स्वामी जी** ने कहा कि हमारी इच्छा तो यह थी कि कम से कम पांच दिन मेला रहता । इसके उत्तर में **पादरी साहबों** ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं रह सकते । फिर स्वामी जी आकर अपने डेरे पर धर्मसंवाद करने लगे। उस दिन रात को पादरी स्काट साहब और दो पादरियों के साथ स्वामी जी के डेरे पर आये। स्वामी जी ने कुरसियां बिछवा कर आदरपूर्वक उनको बिठलाया और आप भी बैठ गये । फिर आपस में बातचीत होने लगी–

पादरी साहबों ने पूछा कि–आवागमन सत्य है वा असत्य ? और इसका क्या प्रमाण है ?

स्वामी जी ने कहा कि–आवागमन सत्य है और जैसे कर्म करता है वैसा ही शरीर पाता है जो अच्छे काम करता है तो मनुष्य का और जो बुरे करता है तो पक्षी आदि का शरीर पाता है । और जो बहुत उत्तम काम करता है वह देवता अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है । देखो ! जब बालक उत्पन्न होता है तब उसी समय अपनी माता का दूध पीने लगता है । कारण यही है कि उसको पहले जन्म का अभ्यास बना रहता है । यह भी एक प्रमाण है और धनाढ्य, कङ्गाल, सुखी, दुःखी अनेक प्रकार के ऊंच–नीच देखने से विदित है कि कर्मों का फल है । कर्म से देह और देह से आवागमन सिद्ध है । जीव अनादि हैं कि जिनका आदि और अन्त नहीं । जिस योनि में जीव जन्म लेता है उसका कुछ स्वभाव भी बना रहता है । इसी कारण मनुष्य आदि विचित्र स्वभाव और प्रकृति आदि के होते हैं । इससे भी आवागमन सिद्ध होता है ।

इसी प्रकार और बहुत से प्रमाण आवागमन के हैं । परन्तु जीव का एक बार उत्पन्न होना और फिर कभी न होना इसका कुछ प्रमाण नहीं हो सकता । क्योंकि जो मैंने कहा उसके विरुद्ध होना चाहिये था, सो ऐसा होना असम्भव है । और फिर यह बात कि मरा और हवालात हुई अर्थात् जब कयामत होगी तब उसका हिसाब और किताब होगा तब तक बेचारा हवालात में रहा मानना अच्छा नहीं ।

फिर पादरी साहब चले गये । मौलवियों ने शाहजहांपुर जाकर मुन्शी इन्द्रमणि जी को लिखा कि जो आप यहां आवें तो हम आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं परन्तु जब स्वामी जी और मुन्शी जी वहां पहुंचे तो किसी ने शास्त्रार्थ का नाम तक भी न लिया ।

(दिग्विजयार्क पृ० ४१, लेखराम २९२ से ३१४)

श्रीकृष्ण तथा ईसाईमत

(लुधियाना में पादरी बेरी साहब से प्रश्नोत्तर—अप्रैल, १८७७)

स्वामी जी महाराज ३१ मार्च, सन् १८७७ को लुधियाना पहुंचे और १९ अप्रैल, सन् १८७७ तक वहां रहे । इसी बीच में एक दिन पादरी वेरी साहब, मिस्टर कारस्टीफन साहब बहादुर जूडीशल असिस्टैण्ट कमिश्नर सहित वहां आये और स्वामी जी से कृष्ण जी के विषय में शङ्का की और बातचीत के बीच में कहा कि कृष्ण जी के ऐसे कामों के साथ उनका महात्मा होना बुद्धि स्वीकार नहीं करती । स्वामी जी ने कहा कि—**यह जो अभियोग लगाये जाते हैं सब निर्मूल हैं ।** उन्होंने ऐसा कोई कार्य्य नहीं किया परन्तु बुद्धि के स्वीकार करने के विषय में तो क्या कहूं, जब बुद्धि यह स्वीकार कर लेती है कि ईश्वर की आत्मा कबूतर के रूप में एक मनुष्य पर उतरी तो इसके स्वीकार करने में कुछ अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।

(लेखराम पृष्ठ ३१५)

वेद और गङ्गा-यमुना

(कुछ ब्रह्मसमाजी सज्जनों से लाहौर में प्रश्नोत्तर—अप्रैल, १८७७)

जब स्वामी जी लाहौर में थे तो एक दिन समाज के मकान में जो अनारकली में था, ब्रह्मसमाज के लोग मिलकर आये और स्वामी जी से कहा कि वेदों में मूर्तिपूजा का वर्णन स्थान-स्थान पर है । पण्डित भानुदत्त ब्रह्मसमाजियों की ओर से स्वामी जी से बातचीत कर रहे थे । विशेष रूप से उस श्रुति की भी चर्चा चली जिसमें गङ्गा, यमुना शब्द आते हैं । इस पर आक्षेप यह था कि वेदों में गङ्गा, यमुना की पूजा भी लिखी है ।

स्वामी जी ने कहा कि—**यदि आप लोग समस्त प्रकरण पढ़ लेते तो यह शङ्का न करते । यहां पर गङ्गा यमुना नाम दो नाड़ियों का है** और यह स्थान योगाभ्यास का है । यहां पर नदियों से कुछ प्रयोजन नहीं है और इन शब्दों के साथ विशेषकर इस प्रकार के विशेषण हैं जो नदियों पर कदापि लागू नहीं हो सकते । उन्होंने और बहुत से प्रश्न व्याकरणादि के किये जिनका पूरा-पूरा उत्तर ब्रह्मसमाजियों को मिल गया ।(लेखराम पृष्ठ ३२२, ३२६, ३३१)

क्या वेद में इतिहास है ?

(पं० रामरक्खा लाहौर से प्रश्नोत्तर—सन् १८७७)

जब स्वामी जी लाहौर में थे तो एक दिन पण्डित रामरक्खा लाहौर निवासी

ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि सामवेद में भरद्वाजादि ऋषियों के नाम आये हैं और इससे यह सन्देह होता है कि वेद बहुत पीछे ऋषियों ने बनाये ।

इस पर स्वामी जी ने बहुत से मन्त्र पढ़कर सुनाये जिनमें भरद्वाजादि नाम आते थे और कहा कि इन स्थानों पर यह नाम किसी मनुष्य के नहीं हैं प्रत्युत इनके इन स्थानों पर विशेष अर्थ हैं । साथ ही समस्त मन्त्रों का अर्थ सुनाया और कहा कि इस प्रकार की भूलें वेद के वास्तविक अर्थ न जानने के कारण होती हैं । क्योंकि लोग साधारणतया प्रकट अर्थ लेते हैं । यह ऋषियों के नाम नहीं हैं प्रत्युत ऋषियों के नाम इन स्थानों से रखे गये हैं । इससे पण्डित जी का पूरा-पूरा सन्तोष हो गया । (लेखराम पृष्ठ ३३६)

वेदार्थ

(बिशप साहब से लाहौर में प्रश्नोत्तर-सन् १८७७)

पं० बिहारीलाल जी शास्त्री वर्णन करते हैं कि जब स्वामी जी लाहौर में थे तो एक बिशप साहब उस स्थान पर पधारे और आन कर प्रश्न किया कि वेद के ऋषियों को ईश्वर के विषयों में कुछ विदित नहीं था कि वह कौन है और इस मन्त्र का प्रमाण दिया–

"हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः" इत्यादि ।

राय मूलराज ने स्वामी जी को उसका अंग्रेजी का अर्थ करके समझाया। तब स्वामी जी ने कहा कि इसका यह अर्थ नहीं है । **अशुद्ध भाष्य के कारण आपको सन्देह हुआ है ।** इसका अर्थ यह है कि सर्वव्यापक परमात्मा की हम उपासना करते हैं ।

फिर बिशप साहब ने कहा कि देखो बाइबिल की महिमा कि उसका उपदेश इतनी दूर फैला हुआ है कि जहां सूर्य्य अस्त नहीं होता ।

स्वामी जी ने कहा कि यह भी वेद का कारण है । हम लोग उस धर्म को छोड़ बैठे हैं और आप लोग **ब्रह्मचर्य्य, विद्याध्ययन, एक स्त्रीसङ्ग, दूरदेश यात्रा, देशप्रीति आदि रखते हैं** इसलिये इतनी उन्नति हो रही है। हमारी जाति के प्रमाद से ही यह आपकी उन्नति है, बाइबिल के कारण से नहीं । (लेखराम पृष्ठ ३३७)

अश्वमेध तथा गोमेध

(पादरी डाक्टर होपर साहब से लाहौर में प्रश्नोत्तर-मई, १८७७)

जब स्वामी जी लाहौर में डा० रहीम खां साहब की कोठी में ठहरे

हुए थे तो वहां स्वामी जी ने यह नियम निश्चित किया कि एक दिन व्याख्यान देते थे और एक दिन शास्त्रार्थ करते थे । सैकड़ों लोग प्रतिदिन उनके व्याख्यान और प्रश्नोत्तर सुनने के लिए जाते थे । प्रत्येक प्रकार के लोग पादरी, पण्डित, मौलवी और विद्वान् उनसे शास्त्रार्थ करते थे और अपने प्रत्येक प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर पाते थे ।

एक दिन पादरी डॉ० होपर साहब स्वामी जी के शास्त्रार्थ के दिन नियत समय पर कुर्सी पर स्वामी जी के सम्मुख बैठ गये क्योंकि जो व्यक्ति शास्त्रार्थ करना चाहता था वह दूसरी कुर्सी पर जो स्वामी जी के सम्मुख मेज की दूसरी ओर रखी होती थी, बैठ जाता था । उपर्युक्त महोदय ने स्वामी जी से दो प्रश्न किये ।

पहला प्रश्न—वेदों में अश्वमेध और गोमेधादि का वर्णन है और उस समय में लोग घोड़े और गाय आदि की बलि दिया करते थे । आप इसके विषय में क्या कहते हैं ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वेदों में अश्वमेध और गोमेध से घोड़े और गाय की बलि देना अभिप्रेत नहीं है प्रत्युत उनके अर्थ ये हैं—

राष्ट्रं वाश्वमेधः ।। शत० १३ । १ । ६ । २ ।।

अन्नं हि गौः ।। श० ४ । ३१ । २२ ।।

घोड़े, गाय, मनुष्य और पशु मारकर होम करना कहीं नहीं लिखा, केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है। यह बात वाममार्गियों ने चलाई और जहां-जहां ऐसा लेख है वहां-वहां उन्हीं वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो ! राजा न्याय से प्रजा का पालन करे यह ''अश्वमेध'' है । अन्न, इन्द्रियां, अन्तःकरण और पृथिवी आदि को पवित्र करने का नाम ''गोमेध'' है । जब मनुष्य मर जाये तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना ''नरमेध'' कहाता है । इसके अतिरिक्त इनके अर्थ व्याकरण और निरुक्तादि के उद्धरणों से बतलाये जिससे पादरी साहब का सन्तोष हो गया ।

दूसरा प्रश्न यह था कि वेदों में जाति-व्यवहार किस प्रकार है ?

उत्तर स्वामी जी—वेदों में जाति गुण, कर्मानुसार है ।

पादरी साहब—यदि मेरे गुण, कर्म अच्छे हों तो क्या मैं भी ब्राह्मण कहला सकता हूं ?

स्वामी जी—निस्सन्देह यदि आपके गुण, कर्म ब्राह्मण होने के योग्य हैं तो आप भी ब्राह्मण कहला सकते हैं । (लेखराम पृष्ठ ३२४)

हिन्दूधर्म की गम्भीरता

(एच० परिकिंस साहब कमिश्नर अमृतसर से वार्तालाप–अगस्त १८७७)

कमिश्नर साहब ने कहा–''हिन्दूधर्म सूत के धागों के समान कच्चा क्यों है ?

स्वामी जी–यह धर्म सूत के धागे के समान कच्चा नहीं है अपितु लोहे से भी अधिक पक्का है । लोहा टूट जाये तो टूट जाये पर यह कभी टूटने में नहीं आता ।

कमिश्नर महोदय–आप कोई उदाहरण दें तो हम को विश्वास आये।

स्वामी जी–हिन्दूधर्म समुद्र के गुण रखता है जिस प्रकार समुद्र में असंख्य लहरें उठती हैं उसी प्रकार इस धर्म में भी देखिये । (१) ऐसे लोगों का भी मत है जो छान-छान कर पानी पीते हैं । (२) एक मत ऐसे लोगों का भी है जो वाममार्गी कहलाते हैं । (३) वे जो कुछ पा जाते हैं उसको पवित्र-अपवित्र और योग्य-अयोग्य का विचार किये विना खा जाते हैं । (४) एक मत ऐसे लोगों का भी है जो जीवन भर यति रहते हैं अर्थात् न तो किसी स्त्री से विवाह करते हैं और न किसी पर कुदृष्टि रखते हैं । (५) एक मत ऐसे लोगों का भी है जो पराई स्त्रियों से अपना मुंह काला करते हैं । (६) एक मत ऐसे लोगों का भी है जो केवल निराकार परमात्मा को पूजते हैं और उसी का ध्यान करते हैं । (७) फिर एक मत ऐसे लोगों का भी है जो अवतारों की पूजा करते हैं । (८) एक मत ऐसा है कि जो केवल ज्ञानी हैं । (९) एक मत ऐसा है जो केवल ध्यानी हैं । (१०) इसी धर्म में वे लोग भी हैं जो छुआछूत का ऐसा विचार करते हैं कि अन्य मत के लोग तो एक ओर शूद्रों के हाथ तक से पानी नहीं पीते, न खाना खाते हैं । (११) एक मत उन लोगों का भी है जो शूद्रों के हाथ का पानी पीते हैं और इनसे भोजन बनवाकर खाते हैं । इतना होने पर भी ये सब के सब हिन्दू कहलाते हैं और वास्तव में हैं भी हिन्दू ही । कोई उनको हिन्दूधर्म से निकाल नहीं सकता । इस लिए समझना चाहिए कि यह धर्म अत्यन्त पक्का है, कच्चा नहीं ।

परिकिंस साहब–आप किस प्रकार का मत बढ़ाना चाहते हैं ?

स्वामी जी–हम केवल यह चाहते हैं कि सब लोग पवित्र वेद की आज्ञा का पालन करें और केवल निराकार अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें । शुभ गुणों को ग्रहण करें और अशुभों को त्याग दें ।

मूर्तिपूजा

(पण्डित लक्ष्मीधर जी तथा पं० दौलतराम जी दीनानगर निवासी से गुरुदासपुर में शास्त्रार्थ–अगस्त, १८७७)

१८ अगस्त, सन् १८७७ से २६ अगस्त, सन् १८७७ तक स्वामी जी गुरुदासपुर रहे । मियां हरिसिंह और मियां शेरसिंह जी ने जो दोनों मूर्तिपूजक थे, पण्डित लक्ष्मीधर जी और पण्डित दौलतराम जी दीनानगर निवासी को स्वामी जी महाराज के साथ शास्त्रार्थ करने को बुलवाया । जिस दिन ये पण्डित लोग आये उस दिन स्वामी जी का व्याख्यान शिवपुराण के खण्डन पर था। स्वामी जी ने वह कहानी सुनाई कि लिंग महादेव का बढ़ा और ब्रह्मा विष्णु सूअर और हंस बनकर उसके नापने के लिये गये, आदि आदि ।

दोनों पण्डितों और दोनों मियां सज्जनों ने कुछ सभ्यता विरुद्ध शब्द कहने आरम्भ किये कि झूठ बकता है । तब डाक्टर बिहारीलाल जी ने सभा के नियमों के अनुसार निवेदन किया कि प्रथम सब कुछ सुन लेना चाहिये तत्पश्चात् आक्षेप करने के लिये उद्यत रहना चाहिये । परन्तु यह कहां सम्भव था । अन्त में जब स्वामी जी ने देखा कि पण्डित लोग बोलने से नहीं रुकते तो कहा कि अब मैं मौन हो जाता हूं, पण्डितों में से जिसे कोई शङ्का करनी हो करे । चूंकि भीड़ बहुत थी और लोगों को उत्सुकता थी कि दोनों पक्षों को देखें । इसलिये श्रोताओं की प्रार्थना पर बाबू बिहारीलाल जी ने कहा कि पण्डितों में से जो शास्त्रार्थ करना चाहते हैं वे मैदान में कुर्सी पर पधारें और स्वयम् एक कुर्सी वहां बिछवा दी । चूंकि उनमें से कोई एक ऐसा विद्वान् न था और न उनमें स्वामी जी की विद्या और तेज का सामना करने की शक्ति थी । इसलिये मियां सज्जनों और पण्डित लोगों की यह इच्छा थी कि सब मिलकर प्रश्नोत्तर करें और इस तर्क वितर्क में ये लोग भांति–भांति की बोलियां बोलते थे जिससे कोलाहल होता था । इसलिये स्वामी जी ने कहा कि जो एक पण्डित चाहे सामने बैठकर उत्तर प्रश्न करे । यद्यपि यह सुझाव पूर्णतया बुद्धि के अनुकूल था परन्तु विरोधी पक्ष के लिये लाभदायक न था । मियां हरिसिंह ने कहा कि अकेला कोई पण्डित आपसे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता, दो वा अधिक मिलकर करेंगे । स्वामी जी ने कहा कि अच्छा जिसको इच्छा हो यहां आनकर उसको बारी–बारी बतलाता रहे । इस पर सहसा मियां हरिसिंह के मुख से निकला कि यह बन्दर किल्ली कौन खेल सकता है ।

फिर जब डाक्टर साहब ने अनुरोध किया कि शास्त्रार्थ का नियम है कि

दोनों सम्मुख बैठकर विचार करें, अवश्य पण्डित जी को सामने बैठकर शास्त्रार्थ करना चाहिये। तब मियां साहब के मुख के निकला–"क्या कंजरियों (वेश्याओं) का नाच है जो बीच में आने की आवश्यकता है ।" इस असभ्यतापूर्ण वाक्य की उपेक्षा की गई और जिस प्रकार वे चाहते थे वैसे ही बातचीत आरम्भ हुई।

मूर्तिपूजा पर बात चली । पण्डितों ने यह मन्त्र **'गणानां त्वा'** इत्यादि पढ़ा कि इससे गणेश जी की मूर्ति सिद्ध होती है । स्वामी जी ने इस पर किसी भाष्य का प्रमाण मांगा । उन्होंने महीधर की चर्चा की । स्वामी जी ने झट महीधर का भाष्य निकाल कर आगे रखा और उसका अश्लील अर्थ लोगों को सुनाया कि न तो इससे मूर्तिपूजा सिद्ध होती है और न गणेश–पूजा। प्रत्युत यह तो अत्यन्त अश्लील भाष्य है और साथ ही सनातन निरुक्तादि ग्रन्थों से उसका श्रेष्ठ अर्थ भी बतलाया कि इसका मूर्तिपूजा से कोई सम्बन्ध नहीं। जब मियां साहब को यह बात बुरी लगी तब कहा कि अंग्रेजी राज्य है अन्यथा यदि रियासत होती तो कोई आपका शिर काट डालता । स्वामी जी ने इसकी तनिक भी पर्वाह न की और निरन्तर खण्डन करते रहे। जब मियां सज्जनों से और कुछ न हो सका तो यह कहा कि यहां पर मैजिस्ट्रेट और पुलिस दोनों उपस्थित हैं, इसका भी ध्यान रखना । उनकी बात डाक्टर बिहारीलाल जी को बहुत बुरी लगी जिस पर उन्होंने मियां साहब को भली–भांति मुंहतोड़ उत्तर दिया और डॉक्टर साहब और मियां साहब की परस्पर विरोधात्मक बातचीत होकर सभा विसर्जित हुई । (लेखराम पृष्ठ ३५२ से ३५३)

वेद ईश्वरीय ज्ञान है

(ला० हरनारायण सुपुत्र बाबू हेमराज जी से जालन्धर में प्रश्नोत्तर)
सितम्बर, १८७७

स्वामी जी १३ सितम्बर, सन् १८७७ बृहस्पतिवार तदनुसार भादों सुदि ६, संवत् १९३४ को अमृतसर से जालन्धर पहुंचे और १५ अक्तूबर, सन् १८७७ तक वहां रहे । वहां एक दिन ला० हरनारायण सुपुत्र बाबू हेमराज जी ने वेदों के विषय में प्रश्न किया कि आप ईश्वर को निराकार मानते हैं परन्तु **वेद तो मुख और कलम और दवात और वाणी के विना रचे नहीं जाते, ईश्वर ने कैसे बनाये ?**

स्वामी जी ने कहा कि तुम अपने चित्त में कुछ पढ़ो, उसने पढ़ा । स्वामी जी ने कहा कि तुम तो पढ़ सकते हो परन्तु ईश्वर ऐसा भी नहीं कर सकता । ईश्वर ने तुम को और सब विश्व को रचा है । (लेखराम पृष्ठ ३५७)

पुनर्जन्म एवं चमत्कार

(मौलवी अहमद हसन साहब से जालन्धर में शास्त्रार्थ–२४ सितम्बर, १८७७)

भूमिका

फकीर मौहम्मद मिर्जा मवाहिद जालन्धर निवासी पाठकों को इस ट्रैक्ट (पुस्तिका) के प्रकाशित होने के कारणों से परिचित करता है कि मिति १३ सितम्बर, सन् १८७७ को स्वामी दयानन्द सरस्वती जी जालन्धर में भी भ्रमण करते हुए पधारे और परोपकारमूर्ति श्री सरदार विक्रमसिंह जी अहलूवालिया की कोठी में विराजमान हुए । वहां वे वेद के अनुसार जिसको वे ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, कथा करने लगे । मैंने इच्छा प्रकट की कि सरदार साहब तथा मौलवी अहमद हुसैन साहब की बातचीत भी किसी बौद्धिक विषय पर होनी चाहिए । माननीय सरदार साहब ने इसको पसन्द किया और स्वामी जी ने भी स्वीकार करके २४ सितम्बर के प्रात: सात बजे का समय एतदर्थ निश्चित कर दिया । मौलवी साहब नियत समय पर हिन्दू तथा मुसलमान नगर–निवासियों के साथ वहां आ गये । मौलवी साहब की इच्छानुसार पुनर्जन्म का विषय तथा स्वामी जी की इच्छानुसार चमत्कार का विषय शास्त्रार्थ के लिए नियत हुआ, अर्थात् यह निश्चय पाया कि स्वामी जी पुनर्जन्म को सिद्ध करेंगे तथा मौलवी साहब उसका खण्डन करेंगे तथा **मौलवी साहब अहले अल्लाह (ईश्वर भक्तों) के चमत्कार को सिद्ध करेंगे तथा स्वामी जी उसका खण्डन करेंगे ।** बातचीत प्रारम्भ होने से पूर्व यह निश्चित हुआ कि दोनों ओर से कोई व्यक्ति सभ्यताविरुद्ध बात न करेगा और स्वामी जी की ओर से यह घोषणा भी की गई कि कोई सज्जन इस शास्त्रार्थ के समाप्त होने पर किसी की हार–जीत न माने यदि मानेगा तो पक्षपाती और असभ्य समझा जायेगा क्योंकि ये समस्याएं ऐसी नहीं हैं कि दो तीन शास्त्रार्थों में इनका निर्णय हो जाये अथवा किसी की हार–जीत समझी जाये । परन्तु जब यह शास्त्रार्थ पुस्तक रूप में प्रकाशित होगा तो स्वयं हाथ कंगन को आरसी के सदृश होगा और बुद्धिमान् इसको पढ़कर स्वयम् इसका निर्णय कर सकेंगे। जो प्रश्नोत्तर लिखे जायेंगे वे ला० हमीरचन्द जी और मुन्शी मौहम्मद हुसैन साहब के हस्ताक्षर कराने के पश्चात् प्रकाशित होंगे । शास्त्रार्थ समाप्त होने के पश्चात् मौलवी साहब की ओर से विद्वानों की परिपाटी के विरुद्ध जो एक कार्य हुआ, न्याय की दृष्टि से उसका वर्णन करना आवश्यक है और वह यह था कि बातचीत समाप्त होने के पश्चात् मौलवी साहब खानकाहा (फकीरों के रहने का स्थान)

इमाम नासिर उद्दीन के द्वार पर गये और कुछ प्रशंसात्मक उपदेश देकर उपस्थित मुसलमानों से अपनी ख्याति के इच्छुक हुए । यद्यपि विद्वान् और समझदार मुसलमान तो इस ख्याति की इच्छा को मूर्खों का खेल समझकर इससे पृथक् हो गये; परन्तु साधारण असभ्य लोग जो मुर्गे और बटेर आदि की लड़ाई देखने का स्वभाव रखते थे और जीत की ख्याति के इच्छुक थे उन्होंने मौलवी साहब को विजयी घोषित किया और घोड़े पर चढ़ा कर शहर के गली कूचों में भली भांति फिराया और हार-जीत का कोलाहल मचाया परन्तु विशेष समझदार सभ्य लोगों ने इसको बुरा समझा । अब प्रश्नोत्तर सुन लीजिये ।

"चमत्कार के विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मौलवी अहमद हुसैन साहब के मध्य होने वाले प्रश्नोत्तर"–

स्वामी जी–चमत्कार आप किसको कहते हैं ?

मौलवी–मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध जो अद्‌भुत कार्य मनुष्य से सम्पन्न हो।

स्वामी जी–स्वभाव आप किसको मानते हैं ?

मौलवी–मनुष्य की प्राकृतिक इच्छा को स्वभाव कहते हैं ।

स्वामी जी–जो मनुष्य की शक्ति के बाहर है वह किस प्रकार उससे हुआ?

मौलवी–मनुष्य से होने वाले कार्य दो प्रकार के हैं । एक तो वे कि मनुष्य को जिनका प्रकट करने वाला कहा जाता है और दूसरे वे कि मनुष्य स्वयं जिनका कर्ता होता है । पहली प्रकार के कार्यों में मनुष्य को वास्तविक कर्ता नहीं समझा जाता । उदाहरणार्थ जैसे कठपुतली का नाच ऐसे कार्य खुदा की ओर से मनुष्य के द्वारा प्रकट होते हैं ।

स्वामी जी–सब मनुष्यों में ये दोनों प्रकार के कार्य हैं अथवा किसी एक में ?

मौलवी–प्रत्येक में नहीं, कुछ में होते हैं ।

स्वामी जी–ईश्वर उलटे काम कर और करा सकता है या नहीं ?

मौलवी–मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध करा सकता है परन्तु वह काम ईश्वर के स्वभाव के विरुद्ध नहीं होता और स्वयम् अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता ।

स्वामी जी–ईश्वर के काम उलटे होते हैं वा नहीं ?

मौलवी–खुदा के कार्य कभी उसके स्वभाव के विरुद्ध नहीं होते यद्यपि मनुष्यों के स्वभाव की अपेक्षा वे विरुद्ध समझे जा सकते हैं ।

स्वामी जी–चमत्कार सृष्टि के स्वभाव के अनुसार होता है या नहीं अर्थात् प्रकृति की इच्छा के विरुद्ध ?

मौलवी–चमत्कार में यह आवश्यक नहीं कि समस्त सृष्टि के स्वभाव के विरुद्ध हो । यद्यपि यह सम्भव है कि किसी नबी (पैगम्बर) या वली (ईश्वर को प्राप्त करने वाला) से कोई ऐसा कार्य हो कि जो समस्त सृष्टि के स्वभाव के अनुकूल न हो ।

स्वामी जी–चमत्कार किसी ने दिखाया अथवा दिखावेगा इसका क्या प्रमाण है ?

मौलवी–यह प्रश्न ऐसा है जैसे कहा जावे कि किसी के मुख पर जो दाढ़ी आई है उसके आने का क्या प्रमाण है ? जब चमत्कार के विषय में यह कह दिया गया कि वह कार्य जो मनुष्य से मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध हो । उसका कार्य मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध होता है यही चमत्कार का प्रमाण है । बहुत से मनुष्यों ने जो दयालु ईश्वर की दृष्टि में सम्मानित और प्रतिष्ठित हैं और ईश्वर ने जिनको सृष्टि के उपकार के लिए भेजा है, पूर्वकाल में चमत्कार दिखाये और भविष्य में भी दिखायेंगे, जैसा कि अल्लाह के रसूल हजरत मौहम्मद साहब ने भी बहुत चमत्कार करके दिखाये और ऐसे ही उनसे पूर्व हजरत ईसा ने भी बहुत से चमत्कार करके दिखाये । सिद्धि इस बात की दो प्रकार से होती है, एक तो सच्चे समाचारदाताओं के द्वारा और दूसरे स्वयं देखने से । जैसा कि ऊपर दोनों महापुरुषों का वर्णन किया । जो लोग उनके समय में विद्यमान थे उन्होंने स्वयम् अपनी आंखों से देखा और हम लोग जो इस समय के हैं उनको इसका ज्ञान सच्चे समाचारदाताओं के वचनों और लेखों से हुआ ।

स्वामी जी–यह ठीक-ठीक युक्ति से सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि सुनना कहना और लिखना दो प्रकार का होता है, सच्चा और झूठा । अब यह चमत्कार की बात सच्ची है, इसका क्या प्रमाण है ? जैसे कार्य को देख के कारण की पहचान होती है अर्थात् नदी के प्रवाह को देखकर विदित होता है कि ऊपर वर्षा हुई है । इसी प्रकार चमत्कार हुआ, इसकी सिद्धि में इस समय क्या युक्ति है । कदाचित् वह झूठा ही लिखा, कहा अथवा सुना हो क्योंकि जैसे अब कोई स्वार्थी मनुष्य झूठी बातों से बहका सुनाकर अपना प्रयोजन सिद्ध करता है (वैसे ही यह भी है) जैसे इस समय में भी दो-चार चामत्कारिक अवतार हुए हैं । आगरे में शिवदयाल और रामसिंह कूका जो काले पानी चले गये हैं । एक अकलकोट का स्वामी दक्षिण में विद्यमान है और एक देव मामलादार ने सात दिन वैकुण्ठ में रहकर फिर आकर सुनाया है कि मैं नारायण से बात करके आया हूं । और जो जो आज्ञा हुई वह तुम को सुनाता

हूं । अब लाखों मनुष्य उसके चरणों में इतना नमस्कार करते हैं कि उसका पैर सूज गया है । जैसे यह बात अब झूठ इन्द्रजालवत् है ऐसी पहले भी होगी। अब इस समय इतने मनुष्यों के बीच में कोई चमत्कार दिखाने वाला विद्यमान हो तो दिखलाइये और जो अब नहीं तो पहले भी नहीं था और आगे भी नहीं होवेगा क्योंकि कार्य को देखे विना कारण की सिद्धि नहीं होती अथवा कारण के देखे विना कार्य की ।

मौलवी—जब यह सिद्ध हो चुका कि चमत्कार पवित्र ईश्वर का एक कर्म है, यद्यपि मनुष्य की अपेक्षा से वह असम्भव होता है तथापि परमात्मा की अपेक्षा से यह असम्भव नहीं क्योंकि यदि खुदा की अपेक्षा से वे असम्भव हो जायें तो उड़ना पक्षी का कभी न पाया जाये । इसके अतिरिक्त स्वभाव के विरुद्ध समस्त कर्म यद्यपि मनुष्य की अपेक्षा से असम्भव दिखाई देते हैं परन्तु परमात्मा की अपेक्षा से असम्भव नहीं हैं । जब खुदा एक के बारे में वह अवसर उत्पन्न करता है तो दूसरे शरीर के बारे में भी उत्पन्न कर सकता है । इसको अस्वीकार करना मानो परमात्मा की शक्ति का अस्वीकार करना है । यदि समाचार प्रत्येक चीज का झूठ हो तो हम को चाहिए कि कलकत्ता, लन्दन अथवा और कोई नगर जिस को हमने अपनी आंखों से नहीं देखा है, उसका विश्वास न करें। इसीलिए सिद्धि चमत्कार की इसी प्रकार से है जिस प्रकार आप वेद को सिद्ध करते हैं अर्थात् जिससे आप यह कह सकते हैं कि यह वेद वही पुस्तक है जो ईश्वर की ओर से आई थी अन्यथा उस पर कोई मुहर खुदा की लगी हुई नहीं है जिससे कहा जावे कि यह वेद वही पुस्तक है । वेद की सिद्धि में जो युक्तियां आप देंगे वही चमत्कार के विषय में भी होंगी ।

स्वामी जी—मैंने यह पूछा था कि ईश्वर ने अमुक-अमुक व्यक्ति के द्वारा चमत्कार दिखाये, इसका क्या प्रमाण है । चमत्कार परमेश्वर अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता । इसका दृष्टान्त सब सृष्टि का रचना, धारण करना, प्रलय करना आदि है । वह न्याय, दया तथा अनन्त विद्या वाला है, कभी अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता । इसका उदाहरण समस्त सृष्टि है । जैसे इस समय मनुष्य का पुत्र मनुष्य ही होता है, पशु नहीं होता। इसी प्रकार परमेश्वर के काम में कभी भूल नहीं रहती । इसलिए परमेश्वर की शक्ति मानना चमत्कार पर अवलम्बित नहीं, और जो कोई चमत्कार मानता है वह वर्तमान समय में किसी चमत्कार दिखाने वाले का उदाहरण दे । और परमेश्वर की शक्ति की भी कुछ न कुछ सीमा है जैसे ईश्वर मर नहीं सकता, अज्ञानी नहीं हो सकता, बुरा काम नहीं कर सकता क्योंकि वह न्यायकारी और अविनाशी है । यह उदाहरण चमत्कार पर

लागू नहीं हो सकता क्योंकि कोई कहे कि बम्बई नहीं तो वह बराबर बम्बई को दिखा सकता है । ऐसे ही जो यह उदाहरण सच्चा हो तो बम्बई के समान चमत्कार को भी दिखा दे। वेद का ईश्वरकृत होना असम्भव नहीं क्योंकि वह अन्तर्यामी और पूर्ण विद्वान् दयालु तथा न्यायकारी है । वह बराबर जीवात्मा में अन्तर्यामी रूप से अपना प्रकाश कर सकता है । जैसे इस समय भी बराबर अन्यायकारी की आत्मा में भय और लज्जा और न्यायकारी की आत्मा में हर्ष तथा उत्साह का प्रकाश करता है । इसलिए वेद का उदाहरण चमत्कार से सम्बन्धित नहीं और अभिप्राय मेरा इस विषय के बारे में कि यह पुस्तक ईश्वरकृत है, यह है कि जैसा ईश्वर का स्वभाव, जैसा सृष्टि का क्रम प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है और अनन्त विद्या का प्रकाश निर्दोषता आदि है, ईश्वर की रचना सिद्ध करने में सब मुहरें हैं और जो आप कहें कि और प्रकार की मुहर चाहिए तो पृथिवी, सूर्य, चन्द्र और मनुष्य पर ईश्वरकृत होने की मुहर क्या है ? जब मुहर से ईश्वर की रचना सिद्ध करनी है तो कहीं मुहर दिखाई नहीं देती । ईश्वर का स्वभाव क्या है ? जो ईश्वर मनुष्य के स्वभाव से उलटा करा सकता है तो किसी मनुष्य को पांव से खिलाया और पिलाया है और मुख से पांव का काम लिया है या लिवाया है ? मुझको ऐसा विदित होता है कि सब सम्प्रदाय वालों ने यह चमत्कार तथा भविष्यवाणी जैसे कि रसायन आदि का लोभ दिखा के बहुत लोगों को फंसाया है। परमेश्वर कृपा करे । सब के आत्मा में विद्या का प्रकाश हो कि मनुष्य ऐसे जाल-फन्दों से छूटकर सत्य को मानें और झूठ से अलग रहें ।

मौलवी-हम पहले कह चुके हैं कि चमत्कार का कार्य मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध कराना असम्भव बात नहीं है । जिससे कहा जावे कि परमात्मा की शक्ति के बाहर है । यदि किसी को सन्देह हो तो मक्का नगर अथवा शाम देश में जाकर उन चालीस मनुष्यों को देख लें कि जो चमत्कार के दिखाने वाले हैं । वेद के अतिरिक्त ऐसी बहुत सी पुस्तकें हैं जिनको कह सकते हैं कि मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध हैं जैसे शिक्षा के विषय में ''गुलिस्तां''* और बोस्तां इत्यादि । किन्तु यह कहना कि इसमें सब विद्याएं हैं, यह दावा युक्तिशून्य है क्योंकि इसमें इल्मे इजतराब (उद्भिजनविद्या)कहां है । अनोखी बातों का ज्ञान और निर्मित पदार्थों के ईश्वरकृत होने का प्रमाण यह है कि वे निर्माण किये हुए हैं और यह निर्माण ही मानो खुदा की मुहर हैं । यह पुस्तक तौरेत के काल से निस्सन्देह पहले की है। इसमें वह समाचार

*** गुलिस्तां और बोस्तां शेखसादी द्वारा रचित फारसी भाषा की दो प्रख्यात पुस्तकें हैं ।**

है जो आज के दिन प्राप्त होता है । पुस्तक दानियाल अध्याय ११, पाठ १० से १९ तक भी प्रमाण है कि वह भविष्यवाणी जो सैकड़ों वर्ष पूर्व लिखी गई थी अब पूरी हुई । दूसरे कुरान शरीफ के बारे में मुसलमानों का तेरह सौ वर्ष से सारे सम्प्रदायों के विरुद्ध यह दावा है कि इस कुरान शरीफ के समान एक पंक्ति भी बनाकर कोई मनुष्य दिखावे । जैसा कि–

''फातू बिसूरतिम् मिम्मिस्लिही''

(तो इसकी सी एक सूरत ले आओ) । अब तक किसी से बना नहीं न बनेगा । यदि पण्डित साहब को यह चमत्कार स्वीकार नहीं तो इसके समान एक पंक्ति बनाकर दिखायें । चमत्कार का प्रदर्शन मानो हमने इस सभा में कर दिया । अब हम पवित्र परमात्मा से यह प्रार्थना करते हैं कि वह समस्त सृष्टि को दृढ़ मार्ग पर लावे और उनकी दृष्टि से पक्षपात को दूर करे ।

''पुनर्जन्म के विषय में प्रश्नोत्तर''

मौलवी–वर्तमान आकार के बिना सत्ता का होना सम्भव नहीं । जब आकार की सत्ता विनाशी है तो अवश्य प्रकृति भी नाशवान् होनी चाहिए क्योंकि प्रकृति को सत्ता आकार के द्वारा प्राप्त हुई । द्रव्य की अपेक्षा द्रव्य का कारण प्रधान होता तो पुनर्जन्म मानने वालों के लिए जगत् का विनाशी मानना आवश्यक हो जाता है परन्तु उन्होंने ऐसा माना था कि वह सनातन है ।

स्वामी–**आकृति दो प्रकार की होती हैं–एक ज्ञान से ग्रहण होती है और एक चक्षु आदि इन्द्रियों से ।** कारण में ही आकृति की स्थिति है परन्तु वह इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होती क्योंकि जो सूक्ष्म वस्तु होती है जब वह स्वयं ही नहीं दिखाई देती तो उसका आकार क्या दिखाई देगा और जो कारण में आकृति न हो तो कार्य में नहीं आ सकती क्योंकि जो कारण के गुण हैं वही कार्य में आते हैं । जैसे एक तिल के दाने में तेल होता है, वह करोड़ों दानों में भी बराबर होता है । लोहे के अणु में तेल नहीं होता तो वह मन भर में भी नहीं होता । जो वस्तु नित्य है उसके गुण भी नित्य हैं । कारण का होना न होना नहीं कहा जाता, वह तो सनातन है और जो वस्तु सनातन है उसकी आकृति भी कारणावस्था में सनातन है । आकृति विना द्रव्य के पृथक् नहीं रह सकती । वह आकृति उसी द्रव्य की है इससे सिद्ध है कि कारण सनातन है ।

मौलवी–यह नहीं कि जो चीज सिवाय किसी चीज के न पाई जाये तो वह उसका रूप ही हो । उदाहरणार्थ जैसे चेष्टा हाथ और चाबी की । चेष्टा चाबी की विना हाथ की चेष्टा के नहीं पाई जाती प्रत्युत जब चेष्टा चाबी की

होगी तो चेष्टा हाथ की होगी और जब चेष्टा हाथ की होगी तो चेष्टा चाबी की होगी अर्थात् इन दोनों चेष्टाओं में कोई काल किसी का किसी से पहले या पीछे नहीं निकलता और निस्सन्देह उत्कृष्ट बुद्धि जानती है कि कुञ्जी की चेष्टा विना हाथ के नहीं अर्थात् चेष्टा कुञ्जी की हाथ की चेष्टा पर निर्भर है। यद्यपि वर्तमान समय में इकट्ठी है । ऐसे ही प्रकृति और उसका रूप है । यद्यपि काल में एकता है परन्तु बुद्धि इस बात को जानती है कि प्रकृति के आकार की अपेक्षा प्रकृति सनातन है क्योंकि गुणी और मानने वाला गुण और माने हुए की अपेक्षा सनातन होता है । प्रकृति की सत्ता अर्थात् उसका अनुभव होना दिखाई देना किसी चीज के लगने से होता है । या तो आकृति के लगने से होता है या किसी और चीज के लगने से । प्रत्येक अवस्था में वह पदार्थ जिसके लगने से वह प्रकृति संसार में इस प्रकार स्थित हुई कि अनुभव हो और दिखाई दे वह किसी ऐसे कारण से हुई जो पीछे से आकर प्रकृति को लगा । और जो उत्तर में यह लिखा गया कि कारण का होना अथवा न होना नहीं कहा जाता तो वह चीज अद्‌भुत है जिसका उपादान कारण में होना या न होना नहीं कह सकते । वह वस्तु जिसका उपादान कारण ऐसा हो उसका होना किस प्रकार हो सकता है अर्थात् वर्तमान वस्तु अभाव से नहीं बन सकती और यदि उसके सनातन होने से कोई मनुष्य यह कहे कि वह विद्यमान भी होगा तो यह गलत है इसलिए कि अभाव से भाव का होना उदाहरणार्थ जैसे कोई कहे कि ''जैद'' के तत्त्वों को एक विशेष आकार प्राप्त हुआ है जिसके कारण उसका ''जैद'' नाम रखा गया तो वह विशेष आकार इस आकार से पहले कभी विद्यमान न था इसलिए उसको अर्थात् उसके अभाव को सनातन कहा जायेगा । रूप के जो दो प्रकार कहे—एक वह कि जिसको आकृति कहते हैं और एक उसके अतिरिक्त, इससे विदित हुआ कि आकार प्रकृति से रहित है ।

स्वामी—स्वाभाविक गुण, रूप आदि वस्तु के पीछे कभी नहीं होते और जो पीछे हो उस को स्वाभाविक नहीं कहते । जैसे अग्नि के परमाणुओं का स्वाभाविक अतीन्द्रिय रूप अर्थात् आंख से अनुभव न होना स्वाभाविक सब काल उसके साथ है । निमित्तकारण के संयोग पर परमाणुओं का संयोग करने से स्थूल कार्य होने से उसका इन्द्रिय-ग्राह्य रूप प्रकट होता है । जैसे जल के परमाणु आकाश में उड़कर ठहरते हैं और जब तक बादल नहीं बनते तब तक नहीं दीख पड़ते ।

हमारा यह अभिप्राय नहीं कि वह प्रकृति नहीं है या प्रकृति का स्वाभाविक गुण नहीं है । उदाहरणार्थ जैसे लड़के का होना और लड़के का न होना । जैसा कार्य में यह होना या न होना गुण है, वैसा कारण में नहीं

है । जो कारण और कारण के स्वाभाविक गुण हैं वे अनादि हैं । कार्य वह है कि जो संयोग से हो और वियोग के पीछे न रहे । वह जो एक संयोगजन्य आकृति है वह कार्य की आकृति कहलाती है । उसका प्रवाह से अनादिपन है, स्वरूप से नहीं और ईश्वर जो कि सर्वज्ञ है उस का निमित्तकारण अर्थात् बनाने वाला है । उसके ज्ञान में सदा है और रहेगा । (अन्तिम वाक्य का उत्तर ऊपर आ गया) ।

मौलवी–पदोत्कर्ष अर्थात् पहले होना दो प्रकार का होता है एक निजी और एक सामयिक । निजी जैसा कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं कि चेष्टा हाथ की और चाबी की और ऐसा ही उत्कर्ष गुणी का अपने समवायी गुणों पर उदाहरणार्थ उत्कर्ष पानी का अपने बहने पर । उत्कृष्ट बुद्धि जानती है कि कहने की स्थिति पानी के साथ है । इस उत्कर्ष को निजी उत्कर्ष कहा जावेगा । बहने का अभिप्राय यह कि उत्कर्ष गुणी का उन गुणों पर जो उसके अपने गुण हैं निजी उत्कर्ष कहलाता है, क्योंकि गुणी अपने गुणों से अवश्य उत्कृष्ट होता है और सन्देह तब उत्पन्न होते हैं जब उत्कर्ष सामयिक हो। दूसरा सामयिक उत्कर्ष वह है जैसा कि बाप का अपने बेटे पर होता है । गुणी का गुणों से रिक्त होना तब आवश्यक होता है जब उत्कर्ष सामयिक हो । तात्पर्य यह है कि अपने आकार पर जो उत्कर्ष प्रकृति का है वह निजी उत्कर्ष है क्योंकि गुणी गुणों से उत्कृष्ट होना चाहिए ।

स्वामी–द्रव्य उस को कहते हैं कि जिस में गुण, क्रिया, संयोग-वियोग होने का स्वभाव पाया जावे परन्तु जो द्रव्य परिच्छिन्न अर्थात् पृथक्-पृथक् हैं उनका यह लक्षण है । जो विभु व्यापक द्रव्य है वह संयोग वियोग के स्वभाव से पृथक् होता है । किसी व्यापक में गुण ही प्रधान होते हैं, क्रिया नहीं जैसे कि परमेश्वर, उसमें संयोग-वियोग नहीं होता परन्तु क्रिया और गुण हैं और आकाश, दिशा काल ये व्यापक हैं परन्तु इनमें क्रिया नहीं, केवल गुण हैं ।

मौलवी–यह उत्तर पहले प्रश्न से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि इस उत्तर में निजी और सामयिक भेद नहीं किया गया । ज्ञानस्थ आकृति की अपेक्षा से "जैद" का विशेष प्रकार का अभाव अर्थात् उसके नियत शरीर का एक नियत काल से जो सम्बन्ध था उस शरीर की उत्पत्ति के पूर्व उसका पूर्ण अभाव था और यह जो विचार प्रकट किया गया कि पूर्ण अभाव उस शरीर विशेष का नहीं है, उसकी आकृति ईश्वर के ज्ञान में विद्यमान है यह बिल्कुल गलत है क्योंकि ईश्वर के ज्ञान में यह शरीर विशेष तो विद्यमान नहीं जो तीन हाथ का है । किसी वस्तु के अनादि होने से किसी वस्तु की उत्पत्ति

तो सिद्ध नहीं होती । ज्ञानस्थ आकृति के बारे में बात यह है कि ईश्वर का ज्ञान ज्ञानस्थ आकृति के साथ नहीं है क्योंकि ज्ञानस्थ आकृति वह होती है जो बाहरी वस्तु के देखने से प्राप्त होती है । जब आकार विशेष को अनादि नहीं माना जाता तो ईश्वर के ज्ञान में वह ज्ञानस्थ आकृति कहां से प्राप्त हुई? यदि कोई वस्तु अनादि थी तो आपके मन्तव्य के अनुसार प्रकृति अनादि थी और जिस वस्तु का साधनों द्वारा अनुभव न किया जा सके । जैसे कि आप प्रकृति और आकार को मानते हैं कि प्रथम अवस्था में अनुभव के योग्य न था तो उस का ज्ञान किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि **किसी पदार्थ को जानने की विधि यही है कि किसी चेष्टा के द्वारा ज्ञानेन्द्रिय में उसका आकार प्राप्त हो उसी को ज्ञानस्थ आकृति कहा जाता है** और जहां तक जल के परमाणुओं का सूक्ष्म होकर वाष्प बन जाने का प्रश्न है तो यद्यपि वह दृष्टिगोचर नहीं होता फिर भी किसी न किसी चेष्टा के द्वारा वह जानने के योग्य है। **प्रत्येक अवस्था में जो आकार इस प्रकार का माना गया है कि जिसका ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता तो उस का कोई अस्तित्व ही नहीं है ।** जब अनादित्व ही गलत सिद्ध हुआ तो पुनर्जन्म कहां रह गया । यदि यूं कहा जाता है कि एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने का कारण उसके वे कर्म हैं जो प्रथम शरीर में किये थे तो यह प्रकट है कि कर्म चेष्टा द्वारा होते हैं और चेष्टा काल पर निर्भर है और काल का आदि अन्त और मध्य इकट्ठा नहीं रह सकता। इसके अतिरिक्त कर्म जो किसी समय के द्वारा किये गये वे भी नष्ट हो गये। अथवा दूसरे शरीर से सम्बन्ध किसी उत्कर्षक की ओर से न होगा । जब आत्मा का शरीरों से समान सम्बन्ध है तो विशेष सम्बन्ध होने से उत्कर्षता बिना उत्कर्षक के बाधक होगी । इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध से बहुत सी हानियां उत्पन्न होंगी क्योंकि विशेषताएं जो प्रथम शरीर में प्राप्त की थीं वे दूर हो गईं और उदाहरणतया यदि दूसरा सम्बन्ध कुत्ते अथवा गधे से हो तो उस कुत्ते और गधे के शरीर में वह विशेषताएं प्राप्त नहीं कर सकता जो मनुष्य के शरीर में प्राप्त कर सकता था । अब आपको उचित है कि प्रथम विद्याओं के प्राप्त करने की विधि निश्चित कीजिये फिर उसके पश्चात् सम्बन्ध का कारण निश्चित किया जावे तब उस पर आक्षेप किया जा सकता है ।

स्वामी—दश इन्द्रियों के विषय में मौलवी साहब का कहना ठीक नहीं जैसा कि जो जीवात्मा किसी इन्द्रिय से नहीं देखा जाता परन्तु अस्तित्व उस का है । जो मौलवी साहब ने कहा कि अनादि वस्तु झूठी है, यह किसने

कहा है क्या यह बात अपने दिल से जोड़ ली है क्योंकि जब लिखवा चुका कि परमेश्वर जीव और जगत् का कारण ये तीनों सनातन हैं । इस से अनादित्व सिद्ध है और अभाव से भाव कभी नहीं होता । यदि कोई कहता है तो उस का प्रमाण नहीं है । गधे और कुत्ते के शरीर में मनुष्य का जीव जाने से मौलवी साहब कहते हैं कि बड़ी हानि होती है क्योंकि सब कमाई की हुई चली जाती है । यदि मौलवी साहब ऐसा मानते हैं तो मौलवी साहब को कभी सोना न चाहिए क्योंकि निद्रा में जाग्रत की कमाई सब भूल जाती है । यदि मौलवी साहब कहें कि फिर जागने से वह ज्ञान आ जाता है तो कुत्ते, गधे के शरीर में भी आ जायेगा और ज्ञान फिर प्राप्त कर सकता है । जैसे कि मनुष्य निद्रा से जागकर करता है। इसलिये मैं जानता हूं कि मौलवी साहब के भाषण और मेरे भाषण को बुद्धिमान् लोग स्वयं देख लेंगे और एक जन्म इन बातों से सिद्ध नहीं होता परन्तु पुनर्जन्म सिद्ध है ।

हस्ताक्षर अंग्रेजी
ला० हमीरचन्द

हमारे समक्ष जो बातचीत के विषय निश्चित हुए वे वास्तव में यही थे जो इस भूमिका में लिखे हैं । हस्ताक्षर—**मौहम्मद हुसैन महमूद**

(दिग्विजयार्क पृ० ३१ से ३३, लेखराम पृ० ३५७ तथा ३९३ से ७००)

वेद ईश्वरीय ज्ञान है

(लाहौर में पण्डित व लाट पादरी से प्रश्नोत्तर—अक्टूबर, १८७७)

एक दिन एक पण्डित ने महाराज से प्रश्न किया कि सामवेद में भरद्वाज आदि ऋषियों के नाम आये हैं, इस से सन्देह होता है कि वेद ऋषिकृत हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि उन मन्त्रों में यह नाम ऋषियों के नहीं हैं, प्रत्युत उनके विशेष अर्थ हैं । पीछे से ऋषियों के नाम वेद के इन शब्दों से रख लिये गये हैं और कई एक मन्त्रों का जिन में उक्त शब्द आये थे अर्थ करके सुनाया ।

एक दिन एक विशपलाट (पादरी) महाराज से भेंट करने आये और वार्तालाप में यह प्रसङ्ग उठाया कि वेद-ऋषियों को ईश्वर के विषय में कुछ ज्ञान न था और **हिरण्यगर्भ सूक्त** की ओर सङ्केत दिया कि उस में यह आता है कि हम किस देव की उपासना करें (कस्मै देवाय हविषा विधेम) । राय मूलराज ने उक्त सूक्त का अंग्रेजी अनुवाद महाराज को सुनाया तो उन्होंने विशप साहब से कहा कि आप को अशुद्ध अनुवाद के कारण भ्रम हुआ है।

इस के अर्थ यह नहीं कि हम किस देव की उपासना करें, प्रत्युत यह है कि हम सर्वव्यापक, सुखस्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं । फिर विशप साहब बोले कि देखो बायबल का प्रताप कि वह सारे संसार में इतने विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है कि उसमें सूर्य अस्त नहीं होता । महाराज ने कहा कि यह भी वेद का ही प्रताप है । हम लोग वैदिक धर्म को छोड़ बैठे हैं और आप लोगों में वेदोपदिष्ट गुण हैं । यथा ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन, एक-पत्नीव्रत, दूरदेश-यात्रा, स्वदेशप्रीति आदि । इसी से आपकी इतनी उन्नति हो रही है, बाइबल के कारण से नहीं । (देवेन्द्रनाथ २।७१ लेखराम पृ० ३३६, ३३७)

ईश्वर की सर्वव्यापकता

(पं० कृपाराम मैगजीन क्लर्क फिरोजपुर से प्रश्नोत्तर– अक्टूबर या नवम्बर, १८७७)

स्वामी जी अक्टूबर, सन् १८७७ से ४ नवम्बर, सन् १८७७ तक फिरोजपुर छावनी में ठहरे । वहां एक दिन पण्डित कृपाराम वर्तमान क्लर्क मैगजीन फिरोजपुर ने प्रश्न करना चाहा और आते ही कहा कि आप तो कुर्सी पर बैठे हैं, मैं खड़ा हूं । मेरे और आपके प्रश्नोत्तर किस प्रकार हो सकते हैं । स्वामी जी ने उस के लिये कुर्सी मंगाई, जब कुर्सी आने में विलम्ब हुआ तो स्वामी जी ने कहा कि आप कुर्सी के विना भी बोल सकते हैं और अगर दुःख है कि मैं क्यों बैठा हूं तो मैं भी नीचे बैठ जाता हूं । इतने में कुर्सी आ गई और बैठ गये । उन्होंने प्रश्न किया कि खुदा महदूद है या गैर महदूद है ?

स्वामी जी ने कहा कि–मैं अर्बी नहीं समझता, भाषा में कहो कि इस का तात्पर्य क्या है ? क्या एकदेशी और सर्वव्यापक से अभिप्राय है ?

उसने कहा कि–हां ।

स्वामी जी ने कहा कि–सर्वव्यापक है ।

कृपाराम जी ने अपनी घड़ी सहसा मेज पर रख दी कि बतलाओ इस में कहां है ?

स्वामी जी ने आकाश का उदाहरण देकर कहा कि आकाश सर्वत्र समाया है, सब वस्तुएं आकाश के अन्दर हैं । मेरा यह सोटा भी (अपना सोटा खड़ा करके) आकाश के अन्दर है । जैसे यह आकाश के बाहर नहीं हो सकता, इसी प्रकार आपकी घड़ी भी परमेश्वर की व्यापकता से पृथक् नहीं । इस पर उन्होंने अपना सन्तोष तो प्रकट न किया, केवल यह कहा कि बस तुम्हें गपोड़े हांकने आते हैं ।

परन्तु विचार करने के पश्चात् उत्तर को सत्य समझकर सच्चे हृदय से आर्यसमाज फिरोजपुर के सभासद् हो गये और पूरी निष्ठा से स्वामी जी का सम्मान करने लगे । (लेखराम पृष्ठ ३५९)

लूत पैगम्बर का अनाचार

(पादरी और मौलवी से प्रश्नोत्तर रावलपिण्डी में–नवम्बर, १८७७)
(७ नवम्बर, सन् १८७७ से २९ दिसम्बर, सन् १८७७ तक)

स्वामी जी ७ नवम्बर, सन् १८७७, बुधवार तदनुसार कार्तिक सुदि २, संवत् १९३४ को रावलपिण्डी में पधारे और सेठ जामसन जी व्यापारी की कोठी पर ठहरे । इसी कोठी में एक दिन स्वामी जी ने व्याख्यान के पश्चात् कुछ विशेष व्यक्तियों से बातचीत करते हुए कहा कि हिन्दुओं की दशा पर अत्यन्त खेद है, वे अन्य मतों की पुस्तक नहीं देखते और मेलों में जब कभी कोई पादरी और मौलवी उन को कहता है कि ब्रह्मा जी ने अपनी पुत्री से व्यभिचार किया तो झट स्वीकार कर लेते हैं । ब्रह्मा जी की बात तो किसी विश्वसनीय ग्रन्थ में नहीं है परन्तु बाईबिल में लूत पैगम्बर का अपनी बेटियों से व्यभिचार करने का वर्णन है । वह यदि बतलावें तो पादरी तथा मुसलमान कदापि सामने आकर बात न कर सकें । उस समय एक पादरी तथा एक मौलवी मिशन स्कूल के बैठे हुए थे । उन्होंने घर में आकर सम्मति की कि यह बात स्वामी जी ने झूठ कही है, कल उन पर आक्षेप करेंगे । वे लोग दूसरे दिन आये और आक्षेप किया, पुस्तकें साथ लाये। व्याख्यान की समाप्ति पर जब स्वामी जी बैठे तब उन्होंने कहा कि कल जो आपने कहा था कि लूत ने अपनी लड़कियों से व्यभिचार किया है यह बात झूठ है । स्वामी जी ने कहा कि–हम को ज्ञात था कि तुम को इस बात की लज्जा आयेगी। वे लोग पुस्तकें लेकर पास बैठ गये । स्वामी जी ने कहा कि यह तुम्हारी लड़कपन की बात है तुमको प्रथम यह चाहिये था कि घर में दीपक जलाकर अपनी चारपाई की दशा का ज्ञान प्राप्त कर लेते ताकि तुम को इस सभा में लज्जित न होना पड़ता परन्तु वे न समझे । तब स्वामी जी ने कहा कि–अरे तुलसिया! हमारी बाईबिल लाओ । वह लाया और स्वामी जी ने निकालकर बतलाया (बाईबिल उत्पत्ति पर्व, आयत ३० से ३८ तक) जिस में स्पष्ट रूप से लिखा है । फिर वे अत्यन्त लज्जित हुए परन्तु साथ ही यह कहा कि शराब के नशे में था । लाला शिवदयाल जी ने कहा कि चाहे कुछ भी हो परन्तु उस को यह विदित था कि मेरी स्त्री मर चुकी है और मैं चिरकाल से विना स्त्री के हूं और ये मेरी लड़कियां हैं। पाप से किसी दशा में भी उसका छुटकारा

नहीं हो सकता । जिस पर वे लज्जित होकर चले गये और कहा कि निस्सन्देह यह हमारा अपराध था, यदि घर में देख लेते तो आपको कष्ट न देते ।
(लेखराम पृष्ठ ३६१-३६२)

नव्य न्याय और आर्ष-ग्रन्थ

(गुजरात में पण्डित होशनाकराय से प्रश्नोत्तर—जनवरी, १८७८)

जब गोस्वामी शिवदास वेद में मनगढ़न्त श्रुति न दिखा सके तब पण्डित होशनाकराय ने कहा—मैं आप से न्याय में प्रश्न करूंगा । पण्डित नन्दलाल मध्यस्थ बने । व्याप्तिवाद पर प्रश्न हुआ । **महाराज ने महाभाष्य के अनुसार व्याप्ति के लक्षण किये** और कहा कि हम आर्ष ग्रन्थों को मानते हैं, आपके लक्षण नहीं मानते, हमारे किये हुए लक्षण में अशुद्धियां बताइये । परन्तु वे न बता सके और पण्डित नन्दलाल को भी कहना पड़ा कि स्वामी जी ठीक कहते हैं । (देवेन्द्रनाथ २।८३, लेखराम पृ० ३७०)

आप ज्ञानी हैं वा अज्ञानी ?

(गुजरात के कुछ हिन्दुओं के साथ प्रश्नोत्तर—जनवरी, १८७८)

बाबू मंगोमल पोस्टमास्टर लाहौर वर्णन करते हैं कि स्वामी जी जिन दिनों गुजरात में थे तो वहां के कुछ हिन्दुओं ने परस्पर सम्मति करके स्वामी जी से यह प्रश्न किया कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? (अर्थात् यदि ज्ञानी कहेंगे तो हम बोलेंगे कि आप अहङ्कार करते हैं । सन्तों को अहङ्कार नहीं चाहिये और अहङ्कारी का तप नष्ट हो जाता है और यदि कहेंगे कि अज्ञानी हैं तो हम कहेंगे कि जब आप स्वयं ही अज्ञानी हैं तो हम को क्या सिखलावेंगे।)

स्वामी जी ने ऐसा उत्तर दिया कि वे सब के सब चकित रह गये। कहा कि—मैं कई बातों में अज्ञानी हूं और कई बातों में ज्ञानी, उदाहरणार्थ दुकानदारी, व्यापार, अंग्रेजी, फारसी से अज्ञानी हूं और संस्कृत और धर्म की बातों से ज्ञानी हूं । इस उत्तर को सुनकर वे अत्यन्त लज्जित हुए और निरुत्तर होकर चले गये । (लेखराम पृष्ठ ३७३)

वेद में मुर्दे दफनाना नहीं लिखा

(मिस्टर बुचानीन साहब से प्रश्नोत्तर—गुजरात (पंजाब) में—जनवरी, १८७८)

स्वामी जी १३ जनवरी, सन् १८७८ को रावलपिण्डी और जेहलम में आर्यसमाज की स्थापना करने के पश्चात् गुजरात पधारे । जिस मकान में अब

गवर्नमेण्ट स्कूल का बोर्डिंग हाउस है, उसमें स्वामी जी के व्याख्यानों का आयोजन किया गया। मिस्टर बुचानीन साहब हेडमास्टर गवर्नमेण्ट हाईस्कूल से आज्ञा लेकर व्याख्यान आरम्भ हुए। एक दिन व्याख्यान की समाप्ति पर बुचानीन साहब उठ खड़े हुए और प्रश्न किया ओ बाबा, ओ बाबा, तू इन बेचारे अन्धों की जो डन्गूरी छीनता है उस के बदले इन को क्या देता है। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि—मैं वेद देता हूं और योगाभ्यास। बुचानीन साहब ने कहा कि—मेरे आप पर प्रश्न हैं। स्वामी जी ने कहा कि—कीजिये।

बुचानीन—वेदों में लिखा है कि पहले इस देश में मुर्दे दफनाये जाते थे तुम कैसे जलाने को कहते हो ?

स्वामी जी ने कहा कि—मन्त्र सुनाओ।

नन्दलाल ने बुचानीन साहब की ओर से मन्त्र सुनाया परन्तु अब वह मन्त्र स्मरण नहीं रहा। जिसका अर्थ यह था कि—'हे पृथ्वी तू इस को अपनी दोनों भुजाओं में ले ले'' इत्यादि।

स्वामी जी ठहर गये और कहा कि—अब चूंकि समय व्यतीत हो चुका है कल तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दिया जायेगा।

दूसरे दिन उन्होंने एक और मन्त्र सुनाया और उस के द्वारा इस मन्त्र का अर्थ किया कि इस का अभिप्राय मुर्दा गाड़ने से नहीं है प्रत्युत यह है कि पृथ्वी खोद कर मुर्दे जलाये जाते थे। भूमि के दोनों किनारे उसके दो बाहु कल्पित किये गये हैं।

बुचानीन साहब चुप कर गये। (लेखराम पृष्ठ ३७१)

ईश्वर और जीव का भेद

(पादरी सोलफीट साहब से गुजरावालां में शास्त्रार्थ— १८ से २० फरवरी, १८७८)

१९ फरवरी, सन् १८७८ तदनुसार फागुन बदि २, संवत् १९३५, मङ्गलवार को सायंकाल ४ बजे स्वामी जी महाराज गिर्जाघर में शास्त्रार्थ के लिये पधारे।

निम्नलिखित पादरी सज्जन उपस्थित थे—

पादरी साहब मिशनरी सियालकोट, पादरी मेकी साहब अमरीकन, पादरी स्वीफ्ट साहब देशी पादरी जो लाशा के नाम से प्रसिद्ध थे।

इन के अतिरिक्त मिस्टर मोहनवीर साहब गोरखा ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर, मिस्टर ह्यूसन साहब असिस्टैण्ट कमिश्नर, वाकर साहब असिस्टैण्ट कमिश्नर, डिप्टी गोपालदास साहब ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर, डिप्टी बर्कत

अली साहब ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर आदि सज्जन तथा नगर के सारे सम्मानित रईस भी वहां पधारे हुए थे । डिप्टी गोपालदास जी मध्यस्थ बनाये गये थे । श्रोताओं के लिए टिकिट लगाये गये थे । गिर्जाघर का भीतर बाहर सब मनुष्यों से भरा हुआ था । डेढ़ दो हजार के लगभग मनुष्य होंगे । शास्त्रार्थ करने वाले पादरी स्वीफ्ट साहब थे ।

पादरी स्वीफ्ट साहब ने शङ्का उपस्थित की कि—यदि **जीव भी अनादि माना जावे और ईश्वर भी** तो वे दोनों समान हो गये । दो दिन तक प्रश्नोत्तर होते रहे ।

स्वामी जी ने इस बात का विद्या के प्रमाणों और बुद्धिपूर्ण युक्तियों द्वारा बड़ी उत्तमता से खण्डन किया कि वे दोनों समान नहीं होते, प्रत्युत स्वामी सेवक होते हैं । ४ बजे से ८ बजे तक शास्त्रार्थ होता रहा ।

शास्त्रार्थ लिखित था अर्थात् दोनों ओर के प्रश्नोत्तर लिखने वाला गङ्गाराम चोपड़ा था परन्तु वे लिखित पत्र कहीं खो गये, अब नहीं मिलते हैं ।

भाई हजूरासिंह जी कहते हैं कि शास्त्रार्थ के पश्चात् डिप्टी गोपालदास जी ने पादरी साहब को कहा कि—स्वामी जी आपके प्रश्नों के पर्याप्त उत्तर दे चुके हैं, आपका हठ है जो नहीं मानते । और लोगों को भी सम्भवतः उस समय विश्वास हो गया कि स्वामी जी सच्चाई पर हैं और पादरी साहब भूल पर ।

यह बात भी जतलाने योग्य है कि शास्त्रार्थ के समय स्वामी जी ने इञ्जील की समस्याओं और मसीह की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में भी निरन्तर बहुत से आक्षेप किये और इस से ईसाई मत की कलई खुलती रही कि ईसाई मत कितना निकृष्ट और हीन है परन्तु पादरी साहब रह गये प्रश्नों के उत्तर से बार-बार बचना और पूर्णतया उपेक्षा करना ही श्रेष्ठ समझते रहे ।

गिर्जाघर चूंकि एक तंग स्थान था जहां से इस शास्त्रार्थ सुनने के सैकड़ों इच्छुक शास्त्रार्थ के लाभ से वञ्चित रहकर घर को लौट जाते थे । उन की भीड़ देखकर उन को निराश लौटाने के लिए गिर्जाघर के समस्त द्वार बन्द कर दिये जाते थे और गिर्जाघर के भीतर मकान की तंगी और श्रोताओं की अधिकता के कारण लोगों के दम घुटने लग जाते थे । इसलिए लोगों की इच्छा यह थी कि यह शास्त्रार्थ किसी खुले स्थान पर हो, इसलिए दूसरे दिन शास्त्रार्थ का समय होने के पश्चात् स्वामी जी ने पादरी लोगों को सम्बोधन करके कहा कि—स्थान अत्यन्त संकुचित है, लोगों का एक बड़ा उत्सुक भाग यहां से निराश जाता है और जो लोग भीतर आकर बैठते हैं वे भी स्थान के संकुचित होने के कारण बहुत कष्ट पाते हैं और इसके अतिरिक्त यह

स्थान एक पक्ष का धार्मिक-गृह भी है । इसलिए कोई ऐसा स्थान नियत होना चाहिए जो इन दोषों से रहित हो । पादरी लोगों ने उस समय तो कोई ठीक उत्तर न दिया परन्तु अगले दिन १२ बजे के लगभग जब स्वामी जी वेदभाष्य के काम में पूर्णतया संलग्न थे और उन को पहले से बिल्कुल कोई सूचना नहीं थी और न उन से कोई सम्मति ली गई थी कि शास्त्रार्थ १२ बजे दिन के होगा, स्वयमेव कुछ क्रिश्चन भाइयों को गिर्जाघर में बुलाकर बिठा लिया और स्वामी जी की ओर मनुष्य भेजा कि वे इस समय गिर्जाघर आ जायें । स्वामी जी उस की बात को सुनकर बहुत चकित हुए, और कहा कि जब चार बजे शाम का समय दोनों पक्षों की सम्मति से निश्चित हो चुका है और लोगों को भी केवल उसी समय की सूचना है और इस १२ बजे के समय के लिए न तो कोई परस्पर सम्मति हुई है और न पहले से मुझ को सूचना दी गई है और न लोगों को उसकी सूचना है तो ज्ञात नहीं कि आपने स्वयमेव १२ बजे दिन का समय किस प्रकार निश्चित कर लिया है। और हमने कल कहा था कि–गिर्जाघर पर्याप्त रूप से खुला स्थान नहीं है तो क्या उस का यही उत्तर है कि स्थान अच्छा प्रबन्ध करने की जगह अब समय भी स्वयमेव ऐसा निश्चित कर लेवें जिस को दूसरे पक्ष ने आरम्भ से ही अस्वीकार कर रखा है । इसलिए ऐसी **तुच्छ और गर्वपूर्ण कार्यवाही के अनुसार चलना मेरे लिए आवश्यक नहीं कि** मैं वेदभाष्य जैसे उत्तम और विशेष कार्य से जिस को कि मैं अब यहां पर बैठा करता हूं छोड़कर पादरी लोगों के गिर्जाघर में उपस्थित होने के लिए विवश हूं । पादरी लोग यदि स्थान का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं कर सकते तो वह नियत समय पर (जो कि दोनों की सम्मति से निश्चित हुआ है और जिस की शास्त्रार्थ के इच्छुकों को पहले से सूचना है) तैयार रहें । चार बजे शाम के लिए प्रबन्ध का भार मैं स्वयं लेता हूं । यह कहकर क्रिश्चन दूत को स्वामी जी ने विदा किया और ला० गोपालदास जी ने ऐसा ही उन्हें उत्तर दिया कि इस समय नियमविरुद्ध मैं उपस्थित नहीं हो सकता ।

नगर का तो मनुष्य इस दिन दोपहर को गिर्जा में न गया परन्तु पादरियों ने कुछ क्रिश्चन और कुछ लड़के स्कूल के कुर्सियों पर बिठला कर उनको सुनाया कि चूंकि स्वामी जी अब १२ बजे नहीं आते हैं इसलिए वे हारे हुए समझे जावें । यह कहकर सभा विसर्जित हुई ।

स्वामी जी पादरियों के इस घृणित कार्य पर बहुत क्रुद्ध हुए और नगर के सम्मानित व्यक्तियों ने भी उनके असभ्यतापूर्ण प्रदर्शन की बहुत हंसी की।

और स्वामी जी की प्रार्थना पर नगर के कुछ गण्यमान्य सज्जनों ने ४ बजे शाम को समाधि के समीप एक खुले स्थान पर दरियां, मेज, कुर्सी आदि सब सामग्री इकट्ठी करके शास्त्रार्थ का प्रबन्ध कर दिया । और चूंकि वह स्थान गिर्जाघर के समीप था । (जहां पहले दो दिन शास्त्रार्थ हुआ था ।) इसलिए जो लोग नित्य की भांति शास्त्रार्थ सुनने के लिए आये थे वे वहां पहुंच गये जहां शास्त्रार्थ का आयोजन था । सारांश यह कि लोग पंक्ति बांध-बांध कर आने लगे और स्थान के खुला होने के कारण अत्यन्त प्रसन्न थे । पादरी लोगों को कई बार एक बार उनके दूत के मुख से और दूसरी बार एक और सम्मानित व्यक्ति द्वारा सूचना समय से पूर्व ही दी गई परन्तु वे अपने घर से बाहर न निकले । पहले स्मरण दिलाने के अतिरिक्त नियत समय पर भी स्मरण दिलाया गया परन्तु उनका वहां आना अत्यन्त कठिन हो गया । इसलिए विवश होकर नियत समय के लगभग पौन घण्टा पश्चात् स्वामी जी ने व्याख्यान देना आरम्भ किया । उस दिन व्याख्यान भी इञ्जील की शिक्षा पर था, जिस में ईसाई मत का अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण और रोचक ढंग पर खण्डन किया । आज उपस्थिति सब दिनों से अधिक थी और लोग पादरियों के मत की वास्तविकता सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ।

इस के पश्चात् लगभग दस बारह दिन तक स्वामी जी गुजरांवाला में रहे परन्तु किसी पादरी को भी सामने आने का साहस न हुआ । व्याख्यान के पश्चात् कुछ लोग किसी-किसी विषय पर अपनी शङ्काएं प्रकट किया करते थे, जिन का उत्तर स्वामी जी अत्यन्त सरल तथा प्रीतिपूर्ण शब्दों में प्रबल तथा सन्तोषजनक युक्तियों के साथ दिया करते थे । जिन को सुनकर वे सब बड़ी शान्ति के साथ अपने-अपने घर जाते थे । (लेखराम पृष्ठ ३७७ से ३७९)

एक साथ खानपान

(सेठ हर्भुज जी पारसी से मुलतान में प्रश्नोत्तर-मार्च, १८७८)

स्वामी जी जब मुल्तान में ठहरे हुए थे तो वहां उन्होंने एक व्याख्यान स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों पर दिया था। जिसकी समाप्ति पर हर्भुज जी साहब पारसी ने बेगी के बाग में स्वामी जी से प्रश्न किया कि जब आप यह सिद्ध करते हैं कि **हम और आप एक जाति से हैं तो फिर आप हम से खानपान का व्यवहार क्यों नहीं करते ?**

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि आप लोगों का मुसलमान आदि जातियों से व्यवहार होने से हम लोग आप से ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते परन्तु

यदि आप लोग कुछ काल तक आर्य्य लोगों से मिलते रहें तो यह बात दूर हो जावेगी । जहां तक एक स्थान पर परस्पर झूठा खाने की बात है उस के विषय में आप ही कहें कि आपस में रल मिलकर खाने से क्या लाभ है और न खाने में क्या दोष ?

सेठ हर्भुज जी ने कहा कि **रल मिल कर खाने से प्रीति और स्नेह अधिक होता है और परहेज करने से परस्पर विरोध उत्पन्न होता है।**

स्वामी जी ने कहा कि आर्य्यावर्त की नीति के अनुसार रल मिलकर खाना निषिद्ध है क्योंकि बहुत से संक्रामक रोग हैं जो एक दूसरे के साथ झूठा खाने से या पानी पीने से हुक्का पीने से या पास बैठने से तत्काल दूसरे पर प्रभाव डालते हैं । (पण्डित जसवन्त राय साहब असिस्टेण्ट सर्जन ने उस समय इन रोगों की व्याख्या कर दी ।) दूसरे यदि इकट्ठा खाने से प्रीति और स्नेह अधिक होता तो अमीर काबुल, शाहे रोम (रोम का राजा) को शहंशाहे रूस (रूस का सम्राट्) के आक्रमण के समय सहायता देने से क्यों इन्कार करते ? इस से प्रकट है कि प्रीति और स्नेह अधिक करने के और साधन हैं न कि रल मिल कर खाना । यदि इकट्ठा खाने से प्रीति होती तो मुसलमान भाई एक दूसरे के साथ कभी झगड़ा न करते जबकि अवस्था यह है कि वे एक दूसरे के प्राणों के शत्रु बन रहे हैं ।

चोटी के लिए कहा कि हिमालयादि शीतप्रधान देशों में पूरे बाल रखने चाहियें । पंजाब में केवल शिखा और जो अधिक उष्ण देश हो तो वहां बाल पूर्णरूप से मुंडवा देवें तो कोई हानि नहीं । (लेखराम पृष्ठ ३८२, ३९०)

मांसभक्षण-निषेध

(पण्डित कृष्णनारायण से मुलतान में प्रश्नोत्तर–मार्च, १८७८)

पण्डित कृष्णनारायण वर्णन करते हैं कि जब स्वामी जी मुलतान में थे तो एक वार उन से मांसभक्षण पर बातचीत हुई । उन्होंने कहा कि **मांस खाना वेद के विरुद्ध है ।** उस का खाना अनुचित है । मैंने कहा कि–उसके खाने में कोई हानि प्रतीत नहीं होती । उन्होंने उत्तर दिया कि–जो परमात्मा की आज्ञा है उस के अनुसार करना लाभदायक होता है । परमात्मा की समस्त आज्ञाएं हमारे लिए लाभदायक हैं । आज्ञा के भंग करने में वह लाभ तो दूर रहा प्रत्युत हानि उठानी पड़ती है ।

मैंने फिर निवेदन किया कि मांस खाने से कोई हानि नहीं होती है और न हम को अब तक हानि प्रतीत हुई है ।

उन्होंने कहा कि परमात्मा की आज्ञाएँ दो प्रकार की हैं । एक वे जो

शरीर के साथ सम्बन्ध रखती हैं, दूसरी वे जिन का सम्बन्ध आत्मा के साथ है । यदि किसी आज्ञा के विरुद्ध जो शरीर से सम्बन्ध रखती है किया जावे तो कष्ट होगा और स्वास्थ्य में अन्तर आवेगा । इसी प्रकार यदि कोई आज्ञा जिस के पालन से आत्मिक शान्ति प्राप्त होती है, न मानी जावे तो आत्मा को वे बातें प्राप्त नहीं होती हैं जो उस को होनी चाहियें । **मांस खाना आत्मा के लिए हानिकर है जो सांसारिक मनुष्यों को प्रतीत नहीं होता है। मांस के खाने वाले को योगविद्या नहीं आती है और न कोई सिद्धि उसको प्राप्त होती है अर्थात् वह सत्य के विवेक से वञ्चित रहता है ।** वेदों का तात्पर्य यही है कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्य का विवेक हो इसलिए उसमें निषेध किया गया है । यदि तुम को विश्वास नहीं आता तो परीक्षा करके देख लो । (लेखराम पृष्ठ ३८९)

मुक्ति-विषय

(पण्डित ठाकुरदत्त जी रईस मुलतान से वार्तालाप–मार्च, १८७८ ई०)

पण्डित ठाकुरदत्त जी रईस मुलतान ने वर्णन किया । मैं और पण्डित बारातीलाल डेरा गाजीखाँ निवासी और पं० कंवरलाल जी स्वामी जी से मिलने के लिए बाग में गये । आठ-नौ बजे दिन का समय था । ''''''मुक्ति के विषय पर बात चली थी । पण्डित बारातीलाल का मत यह था कि मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं होती । स्वामी जी का यह मत था कि जीव मुक्ति से लौटकर आता है । सारी बात स्मरण नहीं, एक शब्द स्मरण है अर्थात् स्वामी जी ने कहा था कि मुक्ति कोई काला पानी नहीं जिस से लौटकर न आ सके ।
(लेखराम पृष्ठ ३८९)

एक साथ खानपान

(पादरी क्लर्क साहब से अमृतसर में प्रश्नोत्तर–जून, १८७८)

दूसरी बार स्वामी जी १५ मई, १८७८ को अमृतसर गये और ११ जौलाई, सन् १८७८ तक वहां ठहरे । इसी बीच में एक दिन पादरी क्लर्क साहब ने स्वामी जी को कहा कि–**हम और आप एक मेज पर खाना खावें । स्वामी जी ने कहा कि इस से क्या लाभ होगा ?** पादरी साहब ने कहा कि इस से मित्रता बढ़ेगी । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि–सुन्नी और शिया मुसलमान और रूसी व इंगलैण्ड वाले एक पात्र में खा लेते हैं और तुम और रोमन कैथोलिक एक मेज पर खा लेते हो पर हृदय से एक दूसरे से शत्रु हो । फिर आपके केवल मेज पर खाने से हमारी दूसरे धर्म वालों से किस प्रकार मित्रता हो सकती है ? पादरी साहब निरुत्तर हो गये । (लेखराम पृष्ठ ३४८)

मद की अवस्था में चिन्तन

(श्री कन्हैयालाल इन्जीनियर रुड़की से प्रश्नोत्तर–२५ जौलाई, १८७८)

''क्या मद की अवस्था में ईश्वर-चिन्तन हो सकता है ?''

स्वामी जी जिन दिनों रुड़की में थे तो ला० कन्हैयालाल साहब इञ्जीनियर ने प्रश्न किया कि मद (नशा) की अवस्था में चित्त एकाग्र हो जाता है और जिस विषय की ओर चित्त आकृष्ट होता है उसी में डूबा रहता है । **इसलिए इस अवस्था में जैसा अच्छा ईश्वर का ध्यान हो सकता है वैसा अन्य अवस्था में नहीं ।**

स्वामी जी ने कहा कि मद का नियम ऐसा ही है जैसा कि आप वर्णन करते हैं कि जिस वस्तु का ध्यान चित्त में होता है मनुष्य उसी में डूबा रहता है परन्तु वस्तुओं की वास्तविकता का ठीक ध्यान अनुकूलता से हुआ करता है । जब हम एक वस्तु का ध्यान करते हैं और उसका सम्बन्ध दूसरी वस्तुओं के साथ करके देखते हैं और उस वस्तु और अन्य वस्तुओं में सम्पर्क स्थापित करके देखते हैं तब उस वस्तु का ठीक ध्यान चित्त में प्रकट होता है अन्यथा उस वस्तु का ध्यान वास्तविकता के विरुद्ध प्रकट हुआ करता है और गुणी को गुण की अपेक्षा नहीं रहती । **इसलिए मद की अवस्था में ईश्वर का ध्यान झूठा और अवगुणों के साथ होता है** । प्रश्नकर्त्ता को यह उत्तर बहुत अच्छा लगा और पूर्ण सन्तोष हो गया ।

ला० साहब स्वयं मद्य नहीं पीते थे प्रत्युत उस से घृणा करते थे परन्तु लोगों की वर्तमान शङ्का को स्वयम् उपस्थित करके उत्तर मांगा था ।

(लेखराम पृष्ठ ३९५)

बाईबिल की अप्रामाणिकता

(कर्नल मानसल से रुड़की में शास्त्रार्थ–अगस्त, १८७८)

एक दिन कर्नल मानसल, आर० आई० साहब बहादुर कमाण्डिंग अफसर रुड़की और कप्तान स्टुअर्ट आई०ई० साहब क्वार्टर-मास्टर व्याख्यान में पधारे । स्वामी जी उस समय इञ्जील पर व्याख्यान दे रहे थे । कर्नल मानसल ने बहुत ध्यान से सुना और जिन बातों को नहीं समझते थे उन बातों का कप्तान से अर्थ कराते रहे, परन्तु बाइबिल पर आक्षेप सुनकर कर्नल के चित्त में कुछ उत्तेजना हुई और शङ्काएँ करनी आरम्भ कीं । देर तक शास्त्रार्थ होता रहा पर उनका उत्तर सुनकर वे मौन हो जाते थे; यहां तक कि शास्त्रार्थ के एक अवसर पर आकर सर्वथा मौन हो गये और बोले कि–हम इस का

उत्तर कल देंगे । परन्तु अगले दिन कप्तान साहब पधारे, कर्नल महोदय नहीं आये । (लेखराम पृष्ठ ३९६)

अनेक विषय

(धर्मरक्षिणी सभा मेरठ से प्रश्नोत्तर—सितम्बर, १८७८)

१—जो कि चार धाम सप्तपुरी आदि नगर और ग्रामों में उन्नत शिखर और मन्दिर और इन में देवताओं की मूर्तियों का स्थापन हो रहा है और परम्परा से पूजा होती आती है । अब इस में आप को भ्रम और सन्देह हुआ सुना है जो अवश्य सन्देह नहीं तो श्रुति-स्मृति के प्रमाण इस में दीजिएगा और जो सन्देह नहीं है तो व्यक्त कीजियेगा ।

२—गङ्गा जी सब नदियों से श्रेष्ठ और पूजनीय है इसमें भी प्रमाण दीजिये और जो सन्देह कुछ हो तो प्रकाशित करें ।

३—और जो अवतार हुए हैं ये कौन हैं और उनका बनाने वाला कौन है ? और पराक्रम उन को किस ने दिया अथवा ये समर्थ हैं ? अवतारों की सी सामर्थ्य किसी राजा में अथवा और मनुष्य में नहीं सुनी । प्रमाण श्रुति स्मृति का होय तो लिखियेगा । इति ।

उत्तर शीघ्र देना योग्य है पत्र द्वारा उत्तर देने में सन्देह समझें तो बलेश्वर महादेव के मन्दिर में सभा नियत की जावे कि जिससे सत्यार्थ का निश्चय और सन्देह की निवृत्ति होवे । इति ।

स्वामी जी के उत्तर

१—**मुझ को पाषाणादि मूर्तिपूजन** के विषय में सन्देह या भ्रम कदापि नहीं, प्रत्युत भली प्रकार निश्चय है कि यह **वेदविरुद्ध** है। परन्तु भ्रम आप लोगों का ठीक है कि जिस के कारण से पाषाणादि मूर्तियों को स्थानों और मन्दिरों में स्थापन करके उन का नाम देव या देव की मूर्ति रखते हैं और उन को देव मानते हैं। विचारणीय बात यह है कि **पाषाणादि मूर्तिपूजन की शिक्षा न किसी ऋषि मुनि के वचन से और न किसी शास्त्र के उद्धरण से सिद्ध है, प्रत्युत सब से उस का निषेध प्रकट है ।** और न पाषाणादि मूर्ति का नाम किसी वेद या शास्त्र में देव लिखा है और न किसी ऋषि मुनि ने ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि तक अपनी पुस्तकों में ''देव'' का अर्थ पाषाणादि मूर्ति लिखा है । केवल परमेश्वर, विद्वान् और वेदमन्त्रादि का नाम देव है जो कि दिव्य गुणों से युक्त हैं । पाषाणादि मूर्ति का नाम देव कदापि नहीं तो फिर बतलाइए कि आपका ऐसा मानना किस रीति से ठीक है । इस के अतिरिक्त परमेश्वर की पाषाणादि की मूर्ति बनाकर

उपासना करना तो वेदों के अनुसार कि जिन पर हमारा धर्म पूर्णतया निर्भर करता है, निषिद्ध और विरुद्ध है जैसा कि यजुर्वेद के ३२वें अध्याय के तीसरे मन्त्र से प्रकट है ।

न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः ।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ॥

इस मन्त्र का अर्थ यह है—परमेश्वर की प्रतिमा अर्थात् सदृश उदाहरण, नाप का साधन या प्रतिबिम्ब जिस को चित्र कहते हैं किसी प्रकार नहीं । उस की आज्ञा का ठीक-ठीक पालन और सत्यभाषणादि कर्म का करना जो उत्तम कीर्तियों का हेतु है, उस के नाम का स्मरण कहाता है । वही परमेश्वर तेजवाले सूर्य्यादि लोकों की उत्पत्ति का कारण है । माता-पिता के संयोग से न उत्पन्न हुआ और न होगा । इसी से यह प्रार्थना है कि परमात्मन् ! हम लोगों की सब प्रकार से रक्षा कर ।

अब देखिये इस मन्त्र में स्पष्ट शब्दों में मूर्तिपूजन का निषेध है अर्थात् परमेश्वर का न उदाहरण है, न सादृश्य है और न उसका प्रतिबिम्ब या चित्र है और न हो सकता है तो फिर परमेश्वर की पाषाणादि मूर्ति बनाना और उस को परमेश्वर मानना और उस की उपासना करना किस प्रकार सिद्ध हुआ। यह सब अज्ञान का फल है और कुछ नहीं । प्रत्युत वेद में तो केवल एक निराकार परमेश्वर की उपासना की शिक्षा और अन्य की उपासना का निषेध है। फिर बतलाइये कि पचासों और सैकड़ों देवताओं की उपासना किस प्रमाण से ठीक है । बहुत से मन्त्रों में से दो वेदमन्त्र उपासना विषय के अपनी बात के समर्थन में यहां लिखता हूं—

प्रथम मन्त्र—"**हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे**" आदि ।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है—हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है वही एक सृष्टि के पूर्व वर्त्तमान था, वही इस जगत् का स्वामी है और वही पृथ्वी से लेकर सूर्य्यादि तक सब जगत् को रचकर उस का धारण कर रहा है । उसी सुखस्वरूप परमेश्वर देव की हम उपासना करें, और की नहीं । यह ऋग्वेद के आठवें अध्याय सातवें अष्टक और तीसरे वर्ग का पहला मन्त्र है ।

दूसरा मन्त्र—"**अन्धन्तमः प्रविशन्ति**" आदि ।

यह यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का नववाँ मन्त्र है इस का अर्थ यह है—जो मनुष्य कभी न उत्पन्न होने वाले अनादि जड़रूप कारण की उपासना करते हैं वे अविद्यादि दु:खरूप अन्धकार में प्रवेश करते हैं । और जो मनुष्य संयोग से उत्पन्न हुए पृथ्वी-विकाररूप कार्य्य में उपासना भाव से मन करते

हैं, वे कारण की उपासना करने वाले मनुष्य से भी अधिक महाक्लेशों को प्राप्त होते हैं । इससे स्पष्टतया सिद्ध है कि मनुष्यों को उक्त कारण और कार्य अर्थात् उपर्युक्त सामग्री और उस से बनी या उत्पन्न होने वाली वस्तुओं और पाषाणादि मूर्ति की उपासना नहीं करनी चाहिये और केवल एक पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर की उपासना करनी योग्य है ।

युक्ति द्वारा देखने से भी पाषाणादि मूर्तिपूजन उचित नहीं हो सकता है क्योंकि यदि यह कहा जाये कि हम पाषाणादि की मूर्ति में देव की भावना करते हैं, कुछ उस को पाषाणादि नहीं मानते तो प्रथम तो यह बतलाइये कि भावना सच्ची है या झूठी । यदि सच्ची है तो सुख की भावना करने वालों को दुःख क्यों होता है अर्थात् जब संसार में सब सुख की भावना करते हैं और दुःख की भावना कोई नहीं करता फिर उस को दुःख क्यों होता है? और सुख ही सुख क्यों नहीं होता ? और इसी प्रकार पानी में दूध की और मिट्टी में मिश्री की भावना कर देखो ! यदि भावना सत्य है तो ये वस्तुएं भी भावना करने से वैसी ही हो जावेंगी और यदि न होवें तो भावना से पाषाणादि मूर्ति भी देव नहीं हो सकती। और यदि यह कहा जावे कि भावना झूठी है तो आपका मानना और करना झूठ हो लिया । और यदि यह कहो कि चूंकि परमेश्वर सब में व्यापक है इसलिये पाषाणादि मूर्तियों में भी व्यापक है तो यह आप की बहुत बड़ी भूल है कि आप लोग चन्दन और पुष्पादि लेकर मूर्तियों पर चढ़ाते हैं । क्या चन्दन और फूल में परमेश्वर व्यापक नहीं ? और इस के अतिरिक्त अपने ही में परमेश्वर को व्यापक क्यों नहीं मानते, पाषाणादि मूर्तियों को क्यों शिर नवाते हो ? जब परमेश्वर व्यापक है और आप भी व्यापक मानते हैं तो केवल पाषाणादि मूर्तियों ही में क्यों व्यापक मानकर उस की उपासना करते हो? इस दशा में तो केवल एक वस्तु में परमेश्वर को व्यापक मानकर उस की व्यापकता को छोटा करते हो । यदि यह कहा जावे कि मूर्तिपूजन अज्ञानी मनुष्यों के ब्रह्म को पहचानने के लिए एक साधन बना रखा है तो यह बात भी बुद्धि और युक्ति से पूर्णतया दूर है क्योंकि गुण गुणी से और गुण प्राप्त करने के साधनों से मिलता है । जड़ पदार्थ और ऐसे साधनों से कभी गुण नहीं मिल सकता है, इसलिये पाषाणादि मूर्तिपूजन से तो दिन-प्रतिदिन बुद्धि पत्थर होती जायेगी । ब्रह्म के पहचानने की तो बात ही क्या है और दूसरे आपके इस कथन से आपका पहला कथन भावना का भी झूठ हो गया क्योंकि जब अज्ञानी लोग ब्रह्म को नहीं जान सकते हैं तो वे केवल पाषाणादि मूर्ति को परमेश्वर जानेंगे न कि परमेश्वर को पत्थर से पृथक् और पत्थर में व्यापक जानेंगे । और यदि यह कहो कि हम पाषाणादि मूर्ति में

प्राणप्रतिष्ठा करके प्राण डाल देते हैं फिर वह मूर्ति जड़ नहीं रहती है तो यह बात बिल्कुल मूर्खता की है क्योंकि पाषाणादि मूर्ति में कभी प्राणप्रतिष्ठा से प्राण आते नहीं देखे और न जीव के लक्षण तथा कर्म कभी मूर्ति में दृष्टिगोचर हुए। और यदि आपके कथनानुसार यह मान भी लिया जाये कि प्राणप्रतिष्ठा से पाषाणादि मूर्तियों में जान भी पड़ जाती है तो फिर आप मृतक को जीवित क्यों नहीं कर लेते हैं । मृतक शरीर में तो श्वास के आने के लिये छिद्र भी होते हैं परन्तु पाषाणादि मूर्तियों में कुछ भी नहीं होता है और यह जो आपने लिखा है कि पाषाणादि मूर्तिपूजन परम्परा से चला आता है तो यह केवल भ्रम और अविद्या का फल है । विचार तो कीजिये कि यदि पाषाणादि मूर्तिपूजन सनातन है तो वेदों में उसकी शिक्षा होनी चाहिये क्योंकि वेद सनातन हैं और जब वेदों में उसकी शिक्षा नहीं तो पाषाणादि मूर्तिपूजन भी सनातन नहीं है । मन्दिर और धामादि के विषय में तो आपने लिखा है कि ये सब पाषाणादि मूर्तिपूजन के सहायक हैं । जबकि पाषाणादि मूर्तिपूजन ही वेदविरुद्ध और झूठ सिद्ध हो लिया तो उनकी क्या बात है ।

२—प्रथम तो प्रश्न आप का विचित्र प्रकार का है उस की विशेषता उस के वाक्य से ही प्रकट है, लिखने या कहने में नहीं आ सकती । आप पूछते हैं कि गङ्गा जी के सब नदियों में पूजनीय और श्रेष्ठ होने में क्या प्रमाण है? इस से विदित हुआ कि या तो गङ्गा जी आप की दृष्टि में श्रेष्ठ और पूजनीय नहीं और यदि श्रेष्ठ और पूजनीय भी हैं तो आप इसका प्रमाण नहीं दे सकते हैं । अन्यथा इस बात का मुझ से पूछना क्या आवश्यक था । अब इतना प्रश्न जो शेष रहा कि यदि गङ्गा जी के पूजनीय और श्रेष्ठ होने में कुछ सन्देह है तो प्रकट करो । इस का उत्तर है कि मुझ को इस बात में किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं, प्रत्युत मैं निश्चय करके गङ्गा जी को श्रेष्ठ मानता हूं क्योंकि और किसी नदी का ऐसा उत्तम और गुणसहित जल नहीं है परन्तु **गङ्गा जी को मुक्ति देने और पाप छुड़ाने का साधन नहीं मान सकता हूं ।** भलीभांति समझ लो कि पाप और पुण्य जितना किया जाता है उस से एक कण न घट सकता है और न बढ़ सकता है । और जब गङ्गा जी के स्नान से मुक्ति प्राप्त हुई या पाप छूट गये तो फिर सत्यधर्म और उत्तम कर्म करना, परमेश्वर की आज्ञा में चलना और उसकी स्तुति और उपासना करना बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि जब एक चीज सरलता से मिल सकती है तो फिर कठिन मार्ग को क्यों चलिये । वेदादि सत्यशास्त्रों में कहीं भी गङ्गा जी के स्नान का माहात्म्य मुक्तिदायक होने में नहीं लिखा है और यदि कहो कि तीर्थादि नाम तो वेद और धर्मशास्त्रों में लिखे हैं तो यह केवल समझ की

भूल है। वेदादि सत्यशास्त्रों में वेदों के पढ़ने, धर्म के अनुष्ठान और सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग का नाम तीर्थ लिखा है क्योंकि इन साधनों से ही मनुष्य दुःखसागर से तरकर मुक्ति पा सकता है। देखिये प्रथम तो मनु जी महाराज ने मनुस्मृति के पांचवें अध्याय के नववें श्लोक में लिखा है—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

इस का अर्थ यह है—जल से शरीर की शुद्धि, सत्य से मन की शुद्धि, विद्या और तप से जीवात्मा की शुद्धि और ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि होती है।

दूसरे छान्दोग्योपनिषद् का यह वचन है—

''अहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः ।''

इस का अर्थ यह है—मनुष्यों को इस तीर्थ का सेवन करना उचित है कि अपने मन से वैरभाव को छोड़कर सब के सुख देने में प्रवृत्त रहें और संसारी व्यवहार के बर्ताव में किसी को दुःख न देवें । इस के अतिरिक्त और कोई तीर्थ नहीं है ।

अब समझ लेना चाहिये कि सत्यशास्त्रों तथा अन्य युक्तियों के अनुसार गङ्गा कभी मुक्तिदायक नहीं हो सकती ।

३—आप जिन को परमेश्वर का अवतार कहते हैं ये महा उत्तम पुरुष थे। परमेश्वर की आज्ञा में चलते थे, सत्य धर्म और न्यायादि गुणों सहित थे, वेदादि सत्यशास्त्रों के पूर्ण जानने वाले थे । **आज तक कोई और ऐसा हुआ और न है** परन्तु आप जो इन उत्तम पुरुषों को परमेश्वर का अवतार मानते हो यह आप की भ्रान्ति है। **भला परमेश्वर का कभी अवतार हो सकता है?** वह तो अजर और अमर है । जब उस का अवतार हुआ तो उस का यह गुण जाता रहा । इसके अतिरिक्त जब परमेश्वर व्यापक और सर्वत्र विद्यमान है तो उसका एक शरीर में आना क्योंकर हो सकता है और यदि कहो कि परमेश्वर प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान है तो यह सत्य है परन्तु यह नहीं कि केवल एक मनुष्य और एक स्थान में है और औरों में नहीं । इस के अतिरिक्त परमेश्वर को जन्म लेने की क्या आवश्यकता है ? यदि आप कहें कि रावण और कंसादि को विना अवतार लिये परमेश्वर कैसे मार सकता था तो यह आप का कहना अत्यन्त अशुद्ध है । क्योंकि जब वह निराकार परमेश्वर विना शरीर के सब जगत् का पालन और धारण कर रहा है और विना शरीर के जगत् का प्रलय भी कर सकता है तो उस को विना शरीर के कंसादि एक-दो मनुष्य का मारना क्या कठिन था ? और जो यह बात आप पूछते हैं कि इन अवतारों का बनानेवाला कौन है और किस

ने इन को पराक्रम दिया अथवा ये स्वयं समर्थ थे । इसका उत्तर अत्यन्त सरल और स्पष्ट है । सब का बनाने वाला और पराक्रम देनेवाला परमेश्वर है । उस के अतिरिक्त और कोई पराक्रम देने वाला नहीं हो सकता । परन्तु आप के प्रश्न से प्रकट होता है कि आप की दृष्टि में कदाचित् कोई और भी परमेश्वर के अतिरिक्त बनाने और पराक्रम देने वाला है । अपने आप तो न कोई समर्थ हुआ और न है और न होगा । यह जो आप प्रश्न करते हैं कि उन अवतारों की सी सामर्थ्य और किसी राजा अथवा मनुष्य में क्यों नहीं हुई, यह आप का कहना तो बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि जिस में जैसे गुण होते हैं वैसी उस में सामर्थ्य होती है और जैसी जिस में सामर्थ्य है वैसे ही उस में गुण होते हैं । आजकल बहुत से ऐसे मनुष्य हैं कि बिल्कुल कर्महीन और अज्ञानी हैं और बहुत से ऐसे विद्वान् सामर्थ्य और पराक्रम वाले हैं कि हजारों में और कोई उन के समान नहीं तो क्या इस कारण से उन सामर्थ्य वाले मनुष्यों को परमेश्वर का अवतार कहना या मानना उचित है ? वाह ! वाह! परमेश्वर का अवतार होने का आपने क्या बढ़िया प्रमाण सोच रखा है । किसी ने सत्य कहा है–

'प्रत्येक की विचारशक्ति उसकी सामर्थ्य के अनुसार होती है ।'

परन्तु बड़े दुःख की बात है कि आप लोग यद्यपि रामचन्द्र जी और श्रीकृष्णादि उत्तम पुरुषों को परमेश्वर का अवतार मानते हो फिर भी उन की परले सिरे की निन्दा और बुराई करने में संलग्न रहते हो । नगर–नगर और गली–गली में उन की पाषाणादि की मूर्ति बनवाकर उन से भीख मंगवाई जाती है और पैसे–पैसे के लिए सर्वसाधारण के सामने उन के हाथ फैलवाये जाते हैं । जब धनवान् अथवा साहूकार शिवालय या मन्दिर में आते हैं या पुजारी जी स्वयम् उन के पास जाते हैं तो कहते हैं कि सेठ जी ! आज तो नारायण भूखे हैं, राधाकृष्ण जी को कल रात से बालभोग नहीं मिला है । इन दिनों तो सीता–राम जी को प्रशादी की ही कठिनाई पड़ रही है । सर्दी के कपड़े नारायण के पास नहीं हैं और शीतकाल शिर पर आ गया है । पुराने कपड़े सीताराम जी के तो कोई दुष्ट चुरा ले गया, उसी दिन से हम सीताराम जी को ताली कुञ्जी में बन्द रखते हैं, नहीं तो उन की भी कुशलता नहीं थी। और यदि किसी रईस या धनवान् की ओर से शिवालय या मन्दिर का मासिक व्ययादि नियम हुआ तो पुजारी जी या बाबा जी जब कहीं बैठे होते हैं तो अपनी झूठी प्रेमभक्ति को जताने के लिए कहते हैं कि लो यजमान ! हम को जाने दो, अब हमारे सीताराम जी या राधाकृष्ण जी भूखे होंगे और जब हम जावेंगे तो उन को भोजन मिलेगा अन्यथा भूखे बन्द रहेंगे । अब देखिये रामलीला को बनवाकर किस प्रकार आप लोग

अपने उत्तम पुरुषों की नकल बनवाते और कितनी उन की निन्दा कराते हो और अन्य मतवालों को उन पर हंसवाते हो और उन का अपमान कराते हो । इस लीला का तो कुछ वर्णन ही नहीं, देखो प्राय: लोग क्या धनवान्, क्या रईस, क्या दुकानदार और क्या श्रमिकादि, सब इस रास की सभा में एकत्रित होते हैं और रास देख-देख अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। कोई कहता है कि कृष्ण जी अच्छा नाचते हैं, कोई कहता है राधा जी बड़ी शोभावान् हैं, कोई कन्हैया जी के गाने पर प्रसन्न हो रहा है, कोई राधा जी की मूर्ति पर मोहित और लट्टू है अत्यन्त प्रेमभक्ति प्रकट कर रहा है । कोई कहता है वाह ! वाह ! साक्षात् राधाकृष्ण जी ही आ गये हैं। इन्हीं कन्हैया जी ने हजारों गोपियों के साथ भोगविलास किया है। १६०० रानियां रखी हैं, बहुत दूध माखन चुराकर खाया है, नहाते हुए नंगी स्त्रियों के कपड़े तक चुरा लिये हैं और उन को पहरों नग्न सामने खड़ा रखा है । अधिक और कहां तक तुम्हारी बातों का वर्णन करूं । अब लज्जा भी रोकती है और बुद्धि भी आज्ञा नहीं देती परन्तु खेद, लाख बार खेद कि आप लोग अपने देश के ऐसे-ऐसे राजा, महाराजों को जो हजारों-लाखों पर शासन करते थे और उन का पालन तथा सहायता करते थे । और ऐसे उत्तम पुरुषों को जो समस्त आयु परमेश्वर की आज्ञा में रहे, सत्यवादिता, सदाचार और धर्म्म के कामों में अद्वितीय हुए, उन को खाने, कपड़े का भिक्षुक बनाते हो, अधर्मी, व्यभिचारी, तमाशबीन और चोर ठहराये हो। और केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि और मनोरञ्जन के लिए उन की अपकीर्ति करते और कराते हो। और उन के विषय में ऐसी झूठी कहानियां कि जिन का प्रमाण किसी पुस्तक या इतिहास से प्राप्त नहीं हो सकता, अपने मन से बना-बनाकर वर्णन करते हो और फिर अपने आप को उन का भक्त, गुणगायक और प्रशंसक समझते हो । हाय, हाय, इन बातों के वर्णन से मन पर इतना शोक और दु:ख का भार है कि अधिक वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं। इसलिए इसी पर सन्तोष करता हूं और अपने इस कथन के समर्थन में कि परमेश्वर का अवतार किसी अवस्था में नहीं हो सकता है, दो वेदमन्त्र कहता हूं। पहला यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का आठवां मन्त्र है और दूसरा यजुर्वेद के ३१वें अध्याय का पहला मन्त्र है-

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

इस मन्त्र का अर्थ यह है परमेश्वर सब में व्यापक और अनन्त पराक्रम वाला है, वह सब प्रकार के शरीर से रहित है कटने, जलने आदि रोगों से परे है, नाड़ी आदि के बन्धन से पृथक् है। सब दोषों से रहित और सब पापों से न्यारा है । सब का जानने वाला, सब के मन का साक्षी, सब से श्रेष्ठ

और अनादि है । वही परमेश्वर अपनी प्रजा को वेद के द्वारा अन्तर्यामी रूप से व्यवहारों का उपदेश करता है ।

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

इस मन्त्र का अर्थ यह है परमेश्वर तीनों प्रकार के जगत् (अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान) को रचता है, उस से भिन्न दूसरा और कोई जगत् का रचने वाला नहीं है क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है । मोक्ष भी परमेश्वर की ही कृपा से मिलता है । पृथिवी आदि जगत् परमेश्वर के व्यापक होने से स्थित हैं और वह परमेश्वर इन वस्तुओं से पृथक् भी है क्योंकि उस में जन्मादि व्यवहार नहीं । वह अपने सामर्थ्य से सब जगत् को उत्पन्न करता है और आप कभी जन्म नहीं लेता है ।

अब भली प्रकार सिद्ध हो गया कि वेद और बुद्धिपूर्वक युक्तियों के अनुसार परमेश्वर का अवतार किसी प्रकार से नहीं हो सकता । इति ।

नोट–उपर्युक्त प्रश्न धर्मरक्षिणी सभा मेरठ की ओर से स्वामी जी महाराज से उस समय पूछे गये जब वे ५ सितम्बर, सन् १८७८ से ला० रामसरनदास साहब रईस, मेरठ के मकान पर उन के अनुरोध से व्याख्यान दे रहे थे । १० सितम्बर को सभा समाप्ति के समय सभा में यह घोषणा की गई कि समस्त आये हुए प्रश्नों के उत्तर कल से दिये जाने आरम्भ होंगे। जिन सज्जनों ने प्रश्न किये हैं वे कल के दिन से सभा में आकर उत्तर सुन लें और जिस किसी को उत्तरों के लिखने की इच्छा हो वह उसी समय लेखबद्ध कर लें । इस घोषणा के अनुसार तीन दिन में समस्त प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी ने सभा में दे दिये । (लेखराम पृष्ठ ४०१, ४०९)

मेरठ में शास्त्रार्थ के नियम

सितम्बर, १८७८

१–उभय पक्ष से निम्नलिखित १२ सज्जन सभा के प्रबन्धक नियत किये जायें, यदि वे स्वीकार करें ।

यहां १२ सज्जनों के नाम थे ।

२–इन में से एक सज्जन और यदि सम्भव हो तो मातहत जज साहब प्रबन्धक सभा के सभापति नियत किये जायें ।

३–प्रबन्धकों के अतिरिक्त उपस्थित जन की संख्या हर एक ओर से पचास-पचास से अधिक न हो तो अच्छा है ।

४—उपस्थित होने वालों की जो संख्या नियत की जावे उतने ही टिकट छपवाकर आधे-आधे हरेक पक्ष को दिये जावें ।

५—हर एक पक्ष अपनी ओर के उपस्थित मनुष्यों को नियम में रक्खे और सब प्रकार से उन का उत्तरदाता रहे ।

६—हर एक पक्ष की ओर से योग्य पण्डितों की संख्या दस से अधिक न हो, कम का अधिकार है ।

७—उभयपक्ष में से केवल एक ही पण्डित सभा में भाषण करे अर्थात् एक ओर से स्वामी दयानन्द और दूसरी ओर से पण्डित श्रीगोपाल ।

८—इस सभा में हर विषय का खण्डन-मण्डन वेदों के प्रमाण ही से किया जावे ।

९—वेदमन्त्रों के अर्थों के निश्चय के लिए ब्रह्मा जी से जैमिनि जी तक के ग्रन्थों की, जिसे दोनों पक्ष मानते हैं, साक्षी देनी होगी जिन का ब्यौरा इस प्रकार है—

ऐतरेय, शतपथ, साम, गोपथ, शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, निघण्टु, छन्द, ज्योतिष, पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद अर्थवेद आदि ।

१०—विदित रहे कि ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर अर्थवेदादि तक ऋषियों और मुनियों की ही साक्षी और प्रमाण होंगे, परन्तु यदि इन में भी कोई वाक्य वेदविरुद्ध होगा तो दोनों पक्ष उस को स्वीकार न करेंगे ।

११—उभयपक्ष को वेदों तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों, सृष्टि-क्रम और सत्य धर्म से युक्त भाषण करना तथा मानना होगा ।

१२—इस सभा में जो व्यक्ति किसी पक्ष का पक्षपात और राग प्रदर्शन करे, उसे सहस्र ब्रह्महत्या का पाप होगा ।

१३—यतः बहुत बड़ी बात केवल एक पाषाणादि मूर्तिपूजन ही है, इस लिए इस सभा में मूर्तिपूजन का खण्डन और मण्डन होगा और यदि वेदों की रीति से पण्डित जी पाषाणादि मूर्तिपूजन का मण्डन कर देवें तो पण्डित जी की सब बातें भी सच्ची समझी जावेंगी और स्वामी जी मूर्तिपूजन का खण्डन को छोड़ मूर्तिपूजन स्वीकार कर लेवेंगे और जो स्वामी जी वेदों के प्रमाण से पाषाणादि मूर्तिपूजन का खण्डन कर देवें तो स्वामी जी की और बातें भी सच्ची समझी जावेंगी और पण्डित जी उसी समय से मूर्तिपूजन छोड़कर मूर्तिपूजन का खण्डन स्वीकार कर लेवें । ऐसा ही उभय पक्ष को स्वीकार करना होगा ।

१४–उभयपक्ष से प्रश्नोत्तर लिखित होने चाहियें अर्थात् हर एक प्रश्न मौखिक किया जावे और तत्क्षण लिख दिया जावे । बल्कि जहां तक सम्भव हो वक्ता का एक एक शब्द लिखा जावे ।

हर एक प्रश्न के लिए पांच मिनट और हर एक उत्तर के लिए पन्द्रह मिनट नियत हों और नियत समय की कमी का अधिकार है, परन्तु अधिक समय का नहीं ।

१५–सभा में स्वामी जी, पण्डित जी तथा अन्य पुरुषों की ओर से आपस में कोई कठोर भाषण न हो, प्रत्युत अत्यन्त सभ्यता और नम्रता से सत्यासत्य का निश्चय करें ।

१६–सभा का समय ६ बजे सायंकाल से नौ बजे रात्रि तक रहे तो उत्तम है ।

१७–प्रश्नोत्तर के लिखने के लिए तीन लेखक नियत होने चाहिए और प्रत्येक लेख पर मिलान करने के पश्चात् प्रतिदिन दोनों पक्षों के हस्ताक्षर होकर एक-एक प्रति हर पक्ष को दी जावे और (एक) प्रति बक्स में बन्द करके उस पर उभयपक्ष और सभापति का ताला लगाकर सभापति के पास रहे ताकि लेखों में कुछ न्यूनाधिक न होने पावे और आवश्यकता के समय काम आये ।

१८–सभास्थल सब प्रबन्धकों की सम्मति के अनुसार नियत होगा ।

१९–जम्मू और काशी आदि स्थानों के पण्डितों की सम्मति के ऊपर इस सभा के निर्णय का निर्भर न होना चाहिए क्योंकि ये स्थान मूर्तिपूजा के घर हैं और यहां इस विषय में पण्डितों से शास्त्रार्थ भी हो चुका है । इसलिए उपर्युक्त वेद-शास्त्रादि जिन में हर विषय की विशद व्याख्या की गई है मध्यस्थ और साक्षी के लिए पर्याप्त हैं । हां यह अधिकार है कि यदि दूसरे पक्ष को कुछ सन्देह व संशय हो तो आज १७ तारीख सितम्बर, सन् १८७८ से दो दिन के भीतर उपर्युक्त स्थानों व अन्य जगह से उस पण्डित से जो उस की सम्मति में उत्तम और श्रेष्ठ हो आने जाने के विषय में तार द्वारा बातचीत करके स्थिर कर ले वा प्रबन्ध कर लें और आज से छः दिन के भीतर अर्थात् २२ सितम्बर, रविवार के दिन तक उसे यहां बुला लेवें। यदि दूसरे पक्ष की ओर से इस अन्तर में उचित प्रबन्ध न हो वा विरुद्ध कार्यवाही हो तो उस पक्ष की सभी बातें कच्ची और आधार-शून्य समझी जावेंगी और स्वामी जी इस अन्तर में कहीं चले जावें वा इस लेख से बद्ध न रहें तो उन की बात कच्ची और आधारशून्य समझी जावेगी ।

२०–दोनों पक्षों को सभा में वे सब पुस्तकें, जिन का वे प्रमाण दें सभा

के समय अपने साथ लानी चाहियें । उभयपक्ष को विना असली पुस्तकों के मौखिक साक्षी स्वीकार न होगी ।

अन्तिम नियम लाला किशनसहाय को नहीं लिखाया गया था, परन्तु आगे कोई कठिनता न हो इस बात को दृष्टि में रखकर यह नियम भी सम्मिलित किया गया । लिखा हुआ १७ सितम्बर, सन् १८७८ का ।

१८ सितम्बर को भी लाला किशनसहाय ने कोई उत्तर न भेजा परन्तु पण्डित श्रीगोपाल की ओर से कुछ नियम इन नियमों के परिवर्तन में महाराज के पास आये ।

पं० श्रीगोपाल जी ने स्वामी जी के प्रस्तावित नियमों में निम्नलिखित परिवर्तन करके भेजे थे ।

१—प्रबन्धकों में ८ नाम और बढ़ाए जावें और उन्हें प्रबन्धक सभा और निश्चयकर्त्ता सनातनधर्म लिखना चाहिये ।

२—मध्यस्थ अवश्य होना चाहिए और साहब कलक्टर जिला बुलन्दशहर संस्कृतज्ञ हैं, मध्यस्थ हों ।

३—उपस्थित होने वाले मनुष्यों की संख्या सीमित करने और टिकट देने की कोई आवश्यकता नहीं ।

४—झूठ सच को विना पक्षपात प्रकट करने के लिए मध्यस्थ होना आवश्यक है जब कि आप कहते हैं कि ग्रन्थों में वेदविरुद्ध वाक्य होगा तो उस का प्रमाण न माना जावेगा ।

५—समय चार बजे से सात बजे तक रहेगा । ५ मिनट प्रश्न और १५ मिनट उत्तर लिखने के लिए अपर्याप्त हैं समय की कोई सीमा न होनी चाहिए।

६—दो दिन में बाहर के पण्डितों का आना असम्भव है, अत: उन्हें लाने के लिए मनुष्य भेजना पड़ेगा और जब तक वे न आवें आप को यहां ही ठहरना होगा । यदि इसे स्वीकार न करें तो किसी वेद और उभयपक्ष स्वीकृत ग्रन्थों के जानने वाले विद्वान् को मध्यस्थ बनावें । विना मध्यस्थ के सभा का पूरा-पूरा प्रबन्ध नहीं हो सकता ।

१८ सितम्बर को महाराज ने अपने हस्ताक्षरों से एक पत्र लाला किशनसहाय के पास भेजा कि यदि आप हृदय से कुछ निर्णय करना चाहते हैं तो आप नियम के अनुसार कार्य कीजिये, हम उन से बद्ध हैं । इस के उत्तर में एक पत्र विना हस्ताक्षरों के लाला किशनसहाय के नाम से आया जिस में लिखा था कि पण्डितों की बातों से ज्ञात हुआ कि आप वेदविरुद्ध उपदेश करते हैं और कुछ अनुचित शब्द महाराज के विषय में लिखे थे ।

इस के उत्तर में महाराज ने लिखा कि आपको वेदों से अनभिज्ञ पण्डितों के कहने से ऐसा लिखना उचित न था । उत्तम हो यदि आप उचित समझें तो मैं अपने दो विद्यार्थियों को आपके यहां सभा में भेज दूं और वे यदि आप अनुमति दें तो आपके पण्डितों से वेद विषय में कुछ प्रश्न करें, तब आप को पण्डितों की व्यवस्था ज्ञात हो जायेगी । यदि आप को यह स्वीकार न हो तो आप कृपापूर्वक मेरे निवास स्थान पर अर्थात् बाबू छेदीलाल के गृह पर पधारें और सब शङ्काओं को निवृत्त कर लेवें । इस का उत्तर तो आया, परन्तु उस पर प्रेषकों के हस्ताक्षर न थे । उस का सार यह था कि आप वेद बिल्कुल नहीं जानते और आप मार्ग भूले हुए हैं और हमारे पण्डित विद्वान् हैं । हमें हमारे पण्डित यथा पण्डित श्रीधर कहते और लिखते हैं कि जब तक आप अपना वर्ण और आश्रम सिद्ध न कर देवेंगे तब तक हमें आप के पास नहीं आना चाहिए और न पण्डितों को आप से सम्भाषण करना चाहिये।

अब तो शास्त्रार्थ स्पष्ट रूप से नकार हो गया और सारा भांडा फूट गया । सनातनधर्म-रक्षिणी सभा ने जो शास्त्रार्थ के लिए इतना आडम्बर रचा, वह दिखाने मात्र को था । भला इस के भी कोई अर्थ थे कि महाराज तो बार-बार कहें कि लाला किशनसहाय के हस्ताक्षरों का पत्र लाओ परन्तु लाला साहब अपने नाम से पत्र तो भिजवाते हैं परन्तु उन पर हस्ताक्षर नहीं करते और अन्त तक किसी पत्र पर उन्होंने हस्ताक्षर किये ही नहीं ।

(देवेन्द्रनाथ २।२१७, लेखराम पृष्ठ ४१३ से ४१७)

अनेक विषय

(धर्मसभा से फर्रुखाबाद में प्रश्नोत्तर-अक्तूबर, १८७८)

दयानन्द सरस्वती के पास यह प्रश्न धर्मसभा फर्रुखाबाद की ओर से भेजे जाते हैं कि आप्त ग्रन्थों के प्रमाण से इन प्रश्नों का उत्तर पत्र द्वारा धर्मसभा के पास भेज दें । और यह भी विदित रहे कि धर्मसभा के सभासदों ने यह सङ्कल्प कर लिया है कि यदि आप इन प्रश्नों के उत्तर पत्र द्वारा प्रमाण सहित न देवेंगे तो यह समझा जावेगा कि आपने अपना मत आधुनिक मान लिया । और एक प्रति इन प्रश्नों की आपकी मतानुयायी सभाओं में और अमरीका के सज्जनों के पास भेजी जावेगी और देशी और अंग्रेजी पत्रों में मुद्रित की जायेगी । इन प्रश्नों पर चौदह व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किये थे कि जिनके नाम ''भारत सुदशाप्रवर्तक'' पत्रिका में लिखे हैं ।

विज्ञापन का उत्तर

जो आप लोगों को शास्त्र प्रमाण सहित उत्तर अपेक्षित था तो इतने पण्डितों में से कोई एक भी तो कुछ पण्डिताई दिखलाता । आप के तो प्रश्न सब के सब अण्डबण्ड शास्त्रविरुद्ध यहां तक कि भाषारीति से भी शुद्ध नहीं हैं। ऐसों का उत्तर प्रमाणसहित मांगना मानो गाजरों की तुला देकर तुरन्त विमान की मार्ग–परीक्षा करना है । शास्त्रोक्त उत्तर शास्त्रज्ञों को ही मिलते हैं क्योंकि वे इन वचनों को समझ सकते हैं । तुम्हारे आगे शास्त्रोक्त वचन लिखना ऐसा है जैसा कि गंवार मनुष्यों के आगे रत्नों की थैलियां खोल देनी। वास्तव में तुम्हारा एक भी प्रश्न उत्तर देने के योग्य न था तथापि हमने "तुष्यतु दुर्जनः" इस न्याय से सब का उत्तर शास्त्रोक्त प्रमाण सहित दिया है । समझा जाये तो समझ लो ।

नोट–उपर्युक्त २५ प्रश्न ६ अक्तूबर, सन् १८७८ को शाम के समय पण्डितों ने स्वामी जी के पास भेजे । वास्तव में उस समय स्वामी जी को उन प्रश्नों के सुनने तक का भी समय न था परन्तु उन लोगों के आने से सुनते ही उसी समय उन का उत्तर देना आरम्भ किया और उन से लिख लेने को कहा परन्तु वे न लिख सके ।

७ अक्तूबर, सन् १८७८ को बहुत से आर्य सभासदों ने शाम के समय प्रार्थना करके उन प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी से लिखवा लिये और स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् शुद्ध करके १२ अक्तूबर, सन् १८७८ को आर्यसमाज में सुनाये, तत्पश्चात् वे उत्तर पोप लोगों के पास भेज दिये ।

फर्रुखाबाद के पण्डितों से प्रश्नोत्तर

पहला प्रश्न–आप्त ग्रन्थों अर्थात् वेदादिक सत्यशास्त्रों के अनुसार परिव्राजकों अर्थात् संन्यासियों के धर्म क्या हैं ? वेदों के अनुसार उन को यानों अर्थात् सवारियों पर चढ़ना और धूम्र अर्थात् हुक्का आदि पीना योग्य है या नहीं ?

उत्तर–वेदादि शास्त्रों में विद्वान् होकर वेदानुकूल सत्य शास्त्रोक्त रीति से पक्षपात, शोक, वैर, अविद्या, हठ, दुराग्रह, स्वार्थसाधन, निन्दा–स्तुति, मान, अपमान, क्रोधादि दोषों से रहित हो स्वपरीक्षापूर्वक सत्यासत्य निश्चय करके सर्वत्र–भ्रमणपूर्वक सर्वथा सत्यग्रहण असत्य परित्याग से सब मनुष्यों की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति, आसन के साधन, सत्यविद्या, सनातन धर्म, स्वपुरुषार्थयुक्त करके व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों से वर्तमान करके दुष्टाचरणों से पृथक् कर देना संन्यासियों का धर्म है । लाभ

में हर्ष, अलाभ में शोकादि से रहित होकर विमानों में बैठना और **रोगादि निवारणार्थ औषधिवत् धूम्र अर्थात् हुक्का पीकर परोपकार करने में तत्पर तिन्हों को कुछ भी दोष नहीं** । यह सब शास्त्रों में विधान है परन्तु तुम को वर्तमान वेदादि सत्य शास्त्रों से विरुद्ध होने के कारण भ्रम है सो इन सत्य ग्रन्थों से विमुखता न चाहिए ।

दूसरा प्रश्न—यदि आपके मत में पापों की क्षमा नहीं होती तो मन्वादिक आप्त ग्रन्थों में प्रायश्चित्त का क्या फल है ? वेदादि ग्रन्थों में परमेश्वर की क्षमाशीलता और दयालुता का वर्णन है इस से क्या प्रयोजन है ? यदि उस से आगन्तुक पापों की क्षमा से प्रयोजन है तो क्षमा न हुई और जब मनुष्य स्वतन्त्र है और आगन्तुक पापों से बचा रहे तो उस में परमेश्वर की क्षमाशीलता क्या काम आ सकती है ।

उत्तर—हमारा किन्तु हम लोगों का वेद-प्रतिपादित मत के अतिरिक्त और कोई कपोलकल्पित मत नहीं है । **वेदों में कहीं किये हुए पापों की क्षमा नहीं लिखी,** न कोई युक्ति से भी विद्वानों के सामने किए हुए पापों की क्षमा सिद्ध कर सकता है । शोक है उन मनुष्यों पर कि जो प्रश्न करना नहीं जानते और करने को उद्यत हो जाते हैं । क्या प्रायश्चित्त तुमने सुखभोग का नाम समझा है? जैसे जेलखाने में चोरी आदि पापों के फल का भोग होता है वैसे प्रायश्चित्त भी समझो । यहां क्षमा की कुछ भी कथा नहीं । क्या प्रायश्चित्त वहां पापों के दु:खरूप फल का भोग है ? कदापि नहीं । परमेश्वर की क्षमा और दयालुता का यह प्रयोजन है कि बहुत से मूढ़ मनुष्य नास्तिकता से परमात्मा का अपमान और खण्डन करते और पुत्रादि के न होने या अकाल में मरने, अतिवृष्टि, रोग और दरिद्रता के होने पर ईश्वर को गाली प्रदानादि भी करते हैं तथापि परब्रह्म सहन करता और कृपालुता से रहित नहीं होता । यह भी उसके दयालु स्वभाव का प्रयोजन है । क्या कोई न्यायाधीश कृतपापों की क्षमा करने से अन्यायकारी और पापों के आचरण का बढ़ाने वाला नहीं होता? क्या परमेश्वर कभी अपने न्यायकारी स्वभाव से विरुद्ध अन्याय कर सकता है ? हां जैसे न्यायाधीश विद्या और सुशिक्षा करके पापियों को पाप से पृथक् करके राजदण्ड प्रतिष्ठितादि करके शुद्धकर सुखी कर देता है वैसे परमात्मा को भी जानो ।

तीसरा प्रश्न—यदि आपके मत से तत्त्वादिकों के परमाणु नित्य हैं और कारण का गुण कार्य्य में रहता है तो परमाणु जो सूक्ष्म और नित्य हैं उन से संसारादिक स्थूल और सान्त कैसे उत्पन्न हो सकता है ?

उत्तर—जो परम अवधि सूक्ष्मता की अर्थात् जिसके आगे स्थूल से सूक्ष्मता कभी नहीं हो सकती वह परमाणु कहलाता है । जिस के **प्रकृत, अव्याकृत,**

अव्यक्त, कारणादि नाम भी कहलाते हैं । वे अनादि भी कहलाते हैं । वे अनादि होने से सत् हैं । हाय दु:ख है लोगों की उलटी समझ पर जो कारण के गुण समवाय सम्बन्ध से हैं वे कारण में नित्य हैं । जो कारण के कारणावस्था में नित्य हैं वे कार्यावस्था में भी नित्य हैं क्या जो गुण कारणावस्था में हैं वे कार्यावस्था में वर्तमान होकर जब कारणावस्था होती है तब भी कारण के गुण नित्य नहीं होते और जब परमाणु मिलकर स्थूल होते हैं या पृथक्-पृथक् होकर कारणरूप होते हैं तब भी उनके विभाग और संयोग होने का सामर्थ्य नित्य होने से अनित्य नहीं होते । वैसे ही गुरुत्व, लघुत्व होने का सामर्थ्य भी उनमें नित्य है क्योंकि यह गुण गुणी में समवाय सम्बन्ध से है ।

चौथा प्रश्न–मनुष्य और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है ? विद्याज्ञान से मनुष्य ईश्वर हो सकता है या नहीं ? जीवात्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है? और जीवात्मा और परमात्मा दोनों नित्य हैं और जो दोनों चेतन हैं तो जीवात्मा परमात्मा के आधीन है या नहीं ? यदि है तो क्यों है ?

उत्तर–मनुष्य और ईश्वर का राजा-प्रजा, स्वामी-सेवकादि सम्बन्ध है। अल्पज्ञान होने से जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता । **जीव और परमात्मा में व्याप्य-व्यापकादि सम्बन्ध है ।** जीवात्मा परमात्मा के आधीन सदा रहता है परन्तु कर्म करने में नहीं किन्तु पाप कर्मों के फलभोग में वह ईश्वर की व्यवस्था के आधीन रहता है तथापि दु:ख भोगने में स्वतन्त्र नहीं है । चूंकि परमेश्वर अनन्त-सामर्थ्य-युक्त है और जीव अल्प सामर्थ्य वाला है अत: उस का परमेश्वर के आधीन होना आवश्यक है ।

पांचवाँ प्रश्न–आप संसार की रचना और प्रलय को मानते हैं या नहीं? और जब प्रथम सृष्टि हुई तो आदि सृष्टि में एक या बहुत उत्पन्न हुए? जब कि इन में कर्मादिक की कोई विशेषता न थी तब परमेश्वर ने कुछ मनुष्यों को ही वेदोपदेश क्यों किया? ऐसा करने से परमेश्वर पर पक्षपात का दोष आता है ।

उत्तर–संसार की रचना और प्रलय को हम मानते हैं । **सृष्टि प्रवाह से अनादि है,** सादि नहीं । क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि और सत्य हैं । जो ऐसा नहीं मानते उन से पूछना चाहिये कि प्रथम ईश्वर निकम्मा और उसके गुण, कर्म, स्वभाव निकम्मे थे । जैसे परमेश्वर अनादि है, वैसे जगत् का कारण जीव भी अनादि है क्योंकि विना किसी वस्तु के उस से कुछ कार्य होना सम्भव नहीं । जैसे इस कल्प की सृष्टि के आदि में बहुत स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए थे वैसे ही पूर्व कल्प की सृष्टि में उत्पन्न थे और आगे की कल्पान्त सृष्टियों में भी उत्पन्न होंगे । कर्मादिक भी जीव के अनादि हैं। चार मनुष्यों की आत्मा में वेदोपदेश करने में यह हेतु है कि

उन के सदृश या अधिक पुण्यात्मा जीव कोई भी नहीं थे । इस से परमेश्वर में पक्षपात कुछ भी नहीं आ सकता ।

छठा प्रश्न—**आपके मतानुसार न्यूनाधिक कर्मानुसार फल होता है** तो मनुष्य स्वतन्त्र कैसे हैं ? परमेश्वर सर्वज्ञ है तो उस को भूत, भविष्यत्, वर्तमान का ज्ञान है अर्थात् उस को यह ज्ञान है कि कोई पुरुष किसी समय में कोई कर्म करेगा और परमेश्वर का यह ज्ञान असत्य नहीं होता क्योंकि वह सत्यज्ञान वाला है अर्थात् वह पुरुष वैसा ही कर्म करेगा जैसा कि परमेश्वर का ज्ञान है तो कर्म इस के लिए नियत हो चुका तो जीव स्वतन्त्र कैसे है?

उत्तर—कर्म के फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते क्योंकि जिस ने जैसा और जितना कर्म किया हो उस को वैसा और उतना ही फल मिलना न्याय कहलाता है । अधिक न्यून होने से ईश्वर में अन्याय आता है ।

हे आर्यो ! ईश्वर के ज्ञान में भूत, भविष्यत् काल का सम्बन्ध भी कभी होता है । क्या ईश्वर का ज्ञान होकर न हो और न होकर होने वाला है। जैसे ईश्वर को हमारे आगामी कर्म्मों के होने का ज्ञान है वैसे मनुष्य अपने स्वाभाविक गुण, कर्म साधनों के नित्य होने से सदा स्वतन्त्र है परन्तु अनिच्छित दुःखरूप पापों का फल भोगने के लिए ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र होते हैं । जैसा कि राजा की व्यवस्था में चोर और डाकू पराधीन हो जाते हैं वैसे उन पापपुण्यात्मक कर्मों के दुःख-सुख होने का ज्ञान मनुष्य को प्रथम नहीं है। क्या परमेश्वर का ज्ञान हमारे किये हुए कर्मों से उल्टा है । जैसे वह अपने ज्ञान में स्वतन्त्र है वैसे ही सब जीव अपने कर्म करने में स्वतन्त्र हैं ।

सातवाँ प्रश्न—मोक्ष क्या पदार्थ है ?

उत्तर—सब दुष्ट कर्मों से छूटकर सब शुभ कर्म करना जीवन्मुक्त और सब दुःखों से छूटकर आनन्द से परमेश्वर में रहना, यह मुक्ति कहलाती है।

आठवाँ प्रश्न—धन बढ़ाना अथवा शिल्पविद्या व वैद्यकविद्या से ऐसा यन्त्र अर्थात् कला तथा औषधि निकालना जिस से मनुष्य को इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त हो अथवा पापी मनुष्य जो रोगग्रस्त हो औषध्यादि से नीरोग करना धर्म है या अधर्म है ?

उत्तर—न्याय से धन बढ़ाने, शिल्पविद्या करने, परोपकार बुद्धि से यन्त्र वा औषधि सिद्ध करने से **धर्म और अन्याय करके करने से अधर्म होता है ।** धर्म से आत्मा, मन, इन्द्रिय और शरीर को सुख प्राप्त हो तो धर्म और जो अन्याय से हो तो अधर्म होता है । जो पापी मनुष्य को अधर्म से छुड़ाने और धर्म में प्रवृत्त करने के लिए औषधि आदि से रोग छुड़ाने की इच्छा हो तो धर्म, इससे विपरीत करने से अधर्म होता है ।

नववाँ प्रश्न–तामस भोजन (मांस) खाने से पाप है या नहीं ? यदि पाप है तो वेद और आप्त ग्रन्थों में हिंसा करना यज्ञादिकों में विहित है और भक्षणार्थ हत्या करना क्यों लिखा है ?

उत्तर–मांस खाने में पाप है। वेदों तथा आप्त ग्रन्थों में कहीं भी यज्ञादि के लिए पशु–हिंसा करना नहीं लिखा है । गौ, अश्व, अजमेध के अर्थ वामियों ने बिगाड़ दिये हैं । उनके सच्चे अर्थ हिंसा करना कहीं भी नहीं लिखा । हां जैसे डाकू आदि दुष्ट जीवों को राजा लोग मारते, बन्धन और छेदन करते हैं वैसे ही हानिकारक पशुओं को मारना लिखा है । परन्तु मारकर उन को खाना कहीं भी नहीं लिखा । आजकल तो वामियों ने झूठे श्लोक बनाकर गोमांस का खाना भी बतलाया है जैसे कि मनुस्मृति में इन धूर्तों का मिलाया हुआ लेख है कि गोमांस का पिण्ड देना चाहिये । क्या कोई पुरुष ऐसे भ्रष्ट वचन मान सकता है ।

दशवाँ प्रश्न–जीव का क्या लक्षण है ?

उत्तर–**इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु:ख, ज्ञान यह जीव का लक्षण** न्यायशास्त्र में लिखा है ।

ग्यारहवाँ प्रश्न–सूक्ष्म नेत्रों से ज्ञात होता है कि **जल में अनन्त जीव हैं तो जलपीना उचित है या नहीं ?**

उत्तर–क्या विद्याहीन लोग अपनी मूर्खता की प्रसिद्धि अपने वचनों से नहीं करा देते ? न जाने यह भूल संसार में कब तक रहेगी । जब पात्र और पात्रस्थ जल अन्त वाले हों तो उन में अनन्त जीव कैसे समा सकेंगे और **छानकर या आंख से देखकर जल का पीना सब को उचित है ।**

बारहवाँ प्रश्न–मनुष्य के लिए बहुत स्त्री करना कहां निषेध है ? यदि निषेध है तो धर्मशास्त्र में जो यह लिखा है कि यदि एक पुरुष के बहुत स्त्री हों और उनमें एक के पुत्र होने से सब पुत्रवती हैं, यह क्यों लिखा ?

उत्तर–**मनुष्य के लिए अनेक स्त्रियों के करने का निषेध वेद में लिखा है ।** संसार में प्रत्येक अच्छा नहीं होता । जो अनेक अधर्मी पुरुष कामातुर होकर अपने विषयसुख के लिए बहुत–सी स्त्री कर लेवें तो उनमें सपत्नीभाव (सौतन के भाव)से विरोध अवश्य होता है । जब किसी एक स्त्री के पुत्र हुआ तो कोई विरोध से विषादिक प्रयोग से न मार डाले इसलिए यह लिखा है ।

तेरहवाँ प्रश्न–आप ज्योतिष शास्त्र के फलित ग्रन्थों को मानते हैं या नहीं ? और भृगुसंहिता आप्त ग्रन्थ है या नहीं ?

उत्तर–हम ज्योतिष शास्त्र के गणित भाग को मानते हैं, फलित भाग

को नहीं । क्योंकि जितने ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थ हैं उन में फलित का लेश भी नहीं है । जो भृगु-सिद्धान्त कि जिस में केवल गणित विद्या है, उस को हम आप्त ग्रन्थ मानते हैं, इतर को नहीं । ज्योतिष शास्त्र में भूत, भविष्यत् काल का सुख-दुःख विदित होना कहीं नहीं लिखा । अनाप्तोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त अर्थात् अप्रमाणित व्यक्तियों की लिखी हुई पुस्तकों के अतिरिक्त।

चौदहवाँ प्रश्न–ज्योतिष शास्त्र में आप किस सिद्धान्त को आप्तग्रन्थ समझते हैं ?

उत्तर–ज्योतिष शास्त्र में जो जो वेदानुकूल ग्रन्थ हैं, उन सब को हम आप्तग्रन्थ जानते हैं, अन्य को नहीं ।

पन्द्रहवाँ प्रश्न–आप पृथिवी पर सुख, दुःख, विद्या, धर्म और मनुष्य संख्या की न्यूनता अधिकता मानते हैं या नहीं ? यदि मानते हैं तो आगे इन की वृद्धि थी या अब है या होगी ।

उत्तर–**हम पृथिवी में सुखादिकों की वृद्धि किसी की व्यवस्था सापेक्ष होने से अनियत मानते हैं,** मध्यावस्था में समान जानो ।

सोलहवाँ प्रश्न–**धर्म का क्या लक्षण है और धर्म सनातन है परमेश्वरकृत अथवा मनुष्यकृत ?**

उत्तर–जो पक्षपातरहित न्याय कि जिस में सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग हो, वह धर्म का लक्षण कहलाता है सो सनातन और ईश्वरोक्त और वेदप्रतिपादित है, मनुष्यकल्पित कोई धर्म नहीं ।

सत्रहवाँ प्रश्न–यदि मोहम्मदी या ईसाई मतानुयायी कोई आप के अनुसार है और आपके मत में दृढ़ विश्वासी हो तो आपके मतानुयायी उस को ग्रहण कर सकते हैं या नहीं और उस का पाक किया हुआ (पकाया) भोजन आप और आपके मतानुयायी कर सकते हैं या नहीं ?

उत्तर–विना वेदों के हमारा कोई कपोलकल्पित मत नहीं है फिर हमारे मत के अनुसार कोई कैसे चल सकता है । क्या तुमने अन्धेर में गिरकर **खाना पीना,** मलमूत्र करना, जूती, धोती, अंगरखा धारण करना, सोना, उठना, बैठना, चलना धर्म मान रखा होगा । हाय खेद है इन कुमति पुरुषों पर कि जिन के बाहर और भीतर की दृष्टि पर पर्दा पड़ा हुआ है जो कि जूता पहनना या न पहनना धर्म मानते हैं । **सुनो और आंख खोलकर देखो कि ये सब अपने अपने देश-व्यवहार हैं ।**

अठारहवाँ प्रश्न–आपके मत से विना ज्ञान मुक्ति होती है या नहीं ? यदि कोई पुरुष आपके मतानुसार धर्म पर आरूढ़ हो और अज्ञानी अर्थात्

ज्ञानहीन हो उस की मुक्ति हो सकती है या नहीं ?

उत्तर—**विना परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञान के मुक्ति किसी की न होगी।** सुनो भाइयो ! जो धर्म पर आरूढ़ होगा उस को ज्ञान का अभाव कभी हो सकता है वा ज्ञान के विना धर्म पर पूरा स्थिर निश्चय कोई मनुष्य कर सकता है ?

उन्नीसवाँ प्रश्न—श्राद्धादिक अर्थात् पिण्डदानादिक जिस में पितृतृप्ति के अर्थ ब्राह्मणभोजनादि कराते हैं शास्त्ररीति है या अशास्त्ररीति ? यह यदि अशास्त्ररीति है तो पितृकर्म का क्या अर्थ है और मन्वादिक ग्रन्थों में इनका लेख है या नहीं ?

उत्तर—**जीते पितरों की श्रद्धा से सेवा पुरुषार्थ व पदार्थों से तृप्ति करनी श्राद्ध और तर्पण कहलाता है।** वह वेदादि शास्त्रोक्त है। भोजनभट्ट अर्थात् स्वार्थियों का लड्डू आदि से पेट भरना श्राद्ध और तर्पण शास्त्रोक्त तो नहीं किन्तु पापों का अनर्थकारक आडम्बर है । जो–जो मनु आदिक ग्रन्थों में लेख है सो वेदानुकूल होने से माननीय है, अन्य कोई नहीं ।

बीसवाँ प्रश्न—कोई मनुष्य यह समझकर कि मैं पापों से मुक्त नहीं हो सकता, आत्मघात करे तो उस को कोई पाप है या नहीं ?

उत्तर—**आत्मघात करने में पाप ही होता है** और विना भोगे पापाचरण के फल के पापों से मुक्त कोई भी नहीं हो सकता ।

इक्कीसवाँ प्रश्न—जीवात्मा संख्यात हैं या असंख्यात ? कर्म से मनुष्य पशु अथवा वृक्षादि योनि में उत्पन्न हो सकता है या नहीं ?

उत्तर—**ईश्वर के ज्ञान में जीव संख्यात** और जीव के अल्पज्ञान में असंख्यात हैं । **पाप अधिक करने से जीव पशु, वृक्षादि योनि में उत्पन्न होता है ।**

बाईसवाँ प्रश्न—विवाह करना अनुचित है या नहीं ? और सन्तान करने से किसी पुरुष पर पाप होता है या नहीं ? और होता है तो क्या ?

उत्तर—जो पूर्ण विद्वान् और जितेन्द्रिय होकर सर्वोपकार किया चाहे उस पुरुष वा स्त्री को विवाह करना योग्य नहीं, अन्य सब को उचित है । वेदोक्त रीति से विवाह करके ऋतुगामी होकर सन्तानोत्पत्ति करने में कुछ दोष नहीं। व्यभिचारादि से सन्तान उत्पन्न करने में दोष है क्योंकि अन्यायाचरणों में दोष हुए विना कभी नहीं रह सकता है ।

तेईसवाँ प्रश्न—**अपने सगोत्र में सम्बन्ध करना दूषित है या नहीं, यदि है तो क्यों है ? सृष्टि के आदि में ऐसा हुआ था या नहीं ?**

उत्तर–**अपने सगोत्र में विवाह करने में दोष यूं है कि इससे शरीर आत्मा, प्रेम बलादि की उन्नति यथावत् नहीं होती, इसलिये भिन्न गोत्रों में ही विवाह सम्बन्ध करना उचित है ।** सृष्टि के आदि में गोत्र ही नहीं थे फिर वृथा क्यों परिश्रम किया । हां पोपलीला में दक्ष प्रजापति वा कश्यप की एक ही सब सन्तान मानने से पशुव्यवहार सिद्ध होता है। इस को जो माने सो मानता रहे।

चौबीसवाँ प्रश्न–गायत्री-जाप से कोई फल है या नहीं और है तो क्यों है ?

उत्तर–**गायत्री-जाप जो वेदोक्त रीति से करे तो फल अच्छा होता है** क्योंकि इसमें गायत्री के अर्थानुसार आचरण करना लिखा है । पोपलीला के जप अनर्थरूप फल होने की क्या ही कथा कहना है ? कोई अच्छा व बुरा किया हुआ कर्म्म निष्फल नहीं होता है ।

पच्चीसवाँ प्रश्न–**धर्म, अधर्म मनुष्य के अन्तरीय भाव से होता है या कर्म के परिणाम से ? यदि कोई मनुष्य किसी डूबते हुए मनुष्य को बचाने को नदी में कूद पड़े और वह आप डूब जाये तो उस आत्मघात का पाप होगा या पुण्य ?**

उत्तर–**मनुष्यों के धर्म और अधर्म भीतर और बाहर की सत्ता से होते हैं कि जिन का नाम कर्म और कुकर्म भी है । जो किसी को बचाने के लिये परिश्रम करेगा और फिर उपकार के लिये जिस का शरीर वियोग ही हो जाये उस को विना पाप पुण्य ही होगा ।**

(लेखराम पृष्ठ ४८७-४९२)

पृथ्वी का आधार

(पुष्कर में एक पण्डित से प्रश्नोत्तर–नवम्बर, १८७८)

एक दिन एक पण्डित महाराज के पास आये । महाराज ने उन से पूछा कि आपने क्या-क्या ग्रन्थ पढ़े हैं ? पण्डित ने कहा भागवत । फिर निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए ।

स्वामी जी–पृथ्वी का आधार क्या है ?

पण्डित–वासुकि ।

स्वामी जी–वासुकि के पिता कौन थे ?

पण्डित–काश्यप ।

स्वामी जी–काश्यप के पिता कौन थे ?

पण्डित–मरीचि ।

स्वामी जी–मरीचि के पिता कौन थे ?

पण्डित—ब्रह्मा ।

स्वामी जी—इन तीनों के समय में पृथ्वी का आधार क्या था ?

पण्डित जी—इस प्रश्न का उत्तर न दे सके । तब महाराज ने कहा कि ''शेषाधारा भूः'' प्रलय के पश्चात् परमेश्वर ही शेष रहता है अतः उस का नाम शेष है और परमेश्वर ही पृथ्वी का आधार है । (देवेन्द्रनाथ २।१३७)

तौरेत इञ्जील की अशुद्धियाँ

(पादरी ग्रे मिशनरी से अजमेर में शास्त्रार्थ—२० नवम्बर, १८७८)

कार्तिक सुदि १३, संवत् १९३५ तदनुसार ७ नवम्बर १८७८ को स्वामी जी अजमेर में पधारे । मगसिर बदि ४ तदनुसार १४ नवम्बर, सन् १८७८, बृहस्पतिवार से लड़का के चौक में व्याख्यान देना आरम्भ किया । पहले दिन ईश्वर विषय पर व्याख्यान दिया । १५ नवम्बर को ईश्वर विषय समाप्त करके ईश्वरीय-ज्ञान का विषय आरम्भ किया । १७ नवम्बर को भी यही विषय रहा । १८ को फिर ईश्वरीय-ज्ञान पर ही व्याख्यान दे रहे थे । व्याख्यान की समाप्ति पर एक बड़ी सूची तौरेत, इञ्जील तथा कुरान मजीद की अशुद्धियों की पढ़कर सुनाई और कहा कि—मैंने यह सूची किसी को चिढ़ाने के लिए नहीं सुनाई प्रत्युत इसलिये कि सब लोग पक्षपात रहित होकर विचारें कि जिन पुस्तकों में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं, वे ईश्वरकृत हो सकती हैं या नहीं ? उस दिन सैकड़ों मुसलमान, ईसाई तथा हिन्दू उपस्थित थे । मुसलमान तो कोई न बोला । पादरी ग्रे साहब और डाक्टर हसबैण्ड साहब उपस्थित थे। उनमें से माननीय ग्रे साहब बोले कि व्याख्यान के दिन शास्त्रार्थ नहीं होता। आप इन आक्षेपों को लिखकर हमारे पास भेजिये, मैं उन का उत्तर दूंगा । स्वामी जी ने कहा मैं तो यही चाहता हूं और सदा मेरी यही इच्छा रहा करती है कि आप जैसे बुद्धिमान् पुरुष मिलकर सत्यासत्य का निर्णय करें । पादरी साहब ने कहा कि—सत्य का निर्णय जब होगा कि आप मेरे पास प्रश्न भेजेंगे और मैं उत्तर दूंगा । फिर स्वामी जी ने कहा कि लिखकर दोनों ओर से प्रश्नोत्तर भेजने में काल बहुत लगता है और मनुष्यों को भी इस से लाभ नहीं पहुंचता। इसलिए यही बात अच्छी है कि आप यहीं आवें, मैं प्रश्न करूं और आप उत्तर दें । तब पादरी साहब ने कहा कि आप प्रश्न मेरे पास भेज देवें । जब मैं दो-चार दिन में उन को विचार लूंगा तब पीछे उत्तर आप को यहां आकर दूंगा । स्वामी जी ने कहा कि—प्रश्न तो मैं नहीं भेजूंगा परन्तु मुझ को जहां-जहां तौरेत और इञ्जील में शङ्काएँ हैं उन में से थोड़े से वाक्य लिखकर भेज दूंगा।

उन को जब आप विचार लेंगे तो उन्हीं में से प्रश्न करूंगा, आप उत्तर देना। इतनी बात होने के पश्चात् पादरी साहब चले गये ।

उस के दूसरे दिन अर्थात् १९ नवम्बर, सन् १८७८ मंगलवार को स्वामी जी ने तौरेत और इञ्जील के ६४ वाक्य लिखकर पण्डित भागराम साहब ऐक्स्ट्रा ऐसिस्टैण्ट कमिश्नर अजमेर द्वारा पादरी साहब के पास भेज दिये । कई दिन तक पादरी साहब उन को विचारते रहे । उन के अच्छी प्रकार विचार लेने के पूरे दस दिन पश्चात् अर्थात् २८ नवम्बर, सन् १८७८ बृहस्पतिवार तदनुसार मंगसिर सुदि ४, संवत् १९३५ शास्त्रार्थ का दिन नियत हुआ ।

उस दिन शास्त्रार्थ देखने और सुनने के लिए सर्वत्र विज्ञापन दे दिया गया था, इसलिए बहुत अधिक संख्या में लोग सुनने के लिए आये । सर्दार बहादुर मुंशी अमीचन्द साहब जज, पण्डित भागराम साहब ऐक्स्ट्रा ऐसिस्टैण्ट कमिश्नर, सरदार भगतसिंह साहब इञ्जीनियर आदि सरकारी अधिकारी भी सभा में सम्मिलित थे ।

नियत समय पर स्वामी जी चारों वेदों के पुस्तक साथ लेकर आये। पादरी ग्रे साहब और डाक्टर हसबैण्ड साहब भी पधारे । बाबू रामनाथ हेडमास्टर राजपूत स्कूल जयपुर, बाबू चन्दूलाल वकील गुड़गांवा, हाफिज मौहम्मद हुसैन दारोगा चुंगी अजमेर–ये तीन लेखक नियुक्त हुए । प्रथम स्वामी जी ने कहा कि–**मैंने कितने स्थानों पर पादरी लोगों से बातचीत की है, कभी किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं हुई ।** आज भी मैं जानता हूं कि पादरी साहब से वार्तालाप निर्विघ्नता से पूरा होगा । फिर पादरी साहब ने भी निर्विघ्नता से बातचीत होने की आशा प्रकट की और कहा कि स्वामी जी ने जो वाक्य लिखकर हमारे पास भेजे हैं वे बहुत हैं और समय केवल दो या ढाई घण्टे का है इसलिये इन आक्षेपों पर दो चार ही प्रश्नोत्तर होना ठीक है । इसके पश्चात् शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ ।

बोलते समय इन तीन लेखकों को स्वामी जी और पादरी साहब अक्षरशः लिखवाते जाते थे ।

स्वामी जी–तौरेत उत्पत्ति की पुस्तक पूर्व १ आयत २ में लिखा है कि पृथिवी बेडौल है । अब देखना चाहिए कि परमेश्वर सर्वज्ञ है, सब विद्या उस में पूरी हैं । उस के विद्या के काम में बेडौलता कभी नहीं हो सकती क्योंकि जीव को पूरी विद्या और सर्वज्ञता नहीं है इसलिये जीव के काम में बेडौलता आ सकती है, ईश्वर के काम में नहीं ।

पादरी–यहां अभिप्राय बेडौल से नहीं है बल्कि उजाड़ से है । अयूब

की पुस्तक अध्याय २ आयत २४ में है कि विना मार्ग जंगल में आत्मा नहीं भ्रमता है। यहां जिस शब्द का अर्थ जंगल है उसी का अर्थ वहां बेडौल है।

स्वामी जी–इस से पहली आयत में यह बात आती है कि आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा और पृथिवी बेडौल सूनी थी, गहराव पर अन्धेरा था । इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उजाड़ का अर्थ यहां नहीं ले सकते क्योंकि कहा था कि सूनी थी । बेडौल के अर्थ उजाड़ होते तो सूनी थी, इस शब्द की कुछ आवश्यकता नहीं थी और जबकि ईश्वर ने ही पृथिवी को रचा है सो प्रथम ही अपने ज्ञान से डौल वाली क्यों नहीं रच सकता था ?

पादरी साहब–दो शब्द एक ही अर्थ के सब भाषाओं में एक दूसरे के पीछे होकर आते हैं जैसे इबरानी में तोहो बोहो, फारसी में वूदो वाश, ये सब एक ही अर्थ के वाची हैं । इसी प्रकार उर्दू में यह अर्थ ठीक है कि पृथिवी उजाड़ और सुनसान थी ।

स्वामी जी इस बात पर और प्रश्न करना चाहते थे इतने में पादरी साहब ने कहा कि एक-एक वाक्य पर दो-दो प्रश्न और दो-दो उत्तर होने चाहियें क्योंकि वाक्य बहुत हैं तो सब प्रश्न आज न हो सकेंगे । स्वामी जी ने कहा यह आवश्यक नहीं है कि आज ही सब वाक्यों पर प्रश्नोत्तर हो जायें । कुछ आज होंगे फिर इसी प्रकार दो-चार दिन अथवा जब तक यह वाक्य पूरे न हों तब तक प्रश्नोत्तर होते रहेंगे । पादरी साहब ने इस बात को स्वीकार नहीं किया तब स्वामी जी ने कहा कि और **अधिक नहीं तो एक वाक्य पर दस बार प्रश्न होने चाहियें।** पादरी साहब ने यह भी स्वीकार न किया । स्वामी जी ने फिर कहा कि एक-एक वाक्य पर कम से कम तीन बार प्रश्नोत्तर होने ही चाहियें । इस में फिर पादरी साहब ने कहा कि हम को दो बार से अधिक प्रश्नोत्तर करना कदाचित् स्वीकार नहीं है । तब स्वामी जी ने कहा कि–हम को इस में कुछ हठ नहीं है, सभा की जैसी सम्मति हो वैसा किया जावे । स्वामी जी की इस बात पर कोई कुछ न बोला परन्तु डाक्टर हस्बैण्ड साहब ने कहा कि–यदि सभा से प्रत्येक विषय में पूछेंगे तो चार सौ मनुष्य हैं उनमें से किस-किस से पूछा जायेगा । स्वामी जी ने कहा कि यदि पादरी को तीन प्रश्न करना स्वीकार नहीं है तो जाने दो हम दो ही करेंगे क्योंकि इतने मनुष्य विज्ञापन देखकर इकट्ठे हुए हैं । जो यहां कुछ बातचीत न हुई तो अच्छा नहीं । फिर दूसरे वाक्य पर प्रश्न किया ।

स्वामी जी–(वही पर्व वही आयत) और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर

डोलता था । पहली आयत से विदित होता है कि ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को रचा । यहां जल की उत्पत्ति नहीं कही तो जल कहां से हो गया । ईश्वर आत्म-स्वरूप है वा जैसे कि हम स्वरूप वाले हैं वैसा । जो वह शरीर वाला है तो उसका सामर्थ्य आकाश और पृथिवी बनाने का नहीं हो सकता क्योंकि शरीर वाले के शरीर के अवयवों से परमाणु आदि को ग्रहण करके रचना में लाना असम्भव है और वह व्यापक भी नहीं हो सकता । जब उस का आत्मा जल पर डोलता था तब उसका शरीर कहां था ?

पादरी साहब–जब-जब पृथिवी को सृजा तो पृथिवी में जल भी आ गया । दूसरी बात का उत्तर यह है कि परमेश्वर आत्मरूप है । तौरेत के आरम्भ से इञ्जील के अन्त तक परमेश्वर आत्मरूप कहलाया ।

स्वामी जी–ईश्वर का वर्णन तौरेत से लेकर इञ्जील पर्यन्त बहुत ठिकानों में ऐसा ही है कि वह किसी प्रकार का शरीर भी रखता है क्योंकि आदम की बाड़ी को बनाया, वहां आना फिर ऊपर चढ़ जाना, सनाई पर्वत पर जाना, मूसा इब्राहीम और उन की स्त्री सरः से बातचीत करना, डेरे में जाना, याकूब से मल्लयुद्ध करना इत्यादि बातों से पाया जाता है कि अवश्य किसी प्रकार का शरीर वह रखता है और उसी क्षण अपना शरीर बना लेता है ।

पादरी साहब–ये सब बातें इस आयत से कुछ सम्बन्ध नहीं रखतीं केवल अनजानपने से कही जाती हैं । इसका यही उत्तर है कि यहूदी, ईसाई और मुसलमान जो तौरेत को मानते हैं इसी पर एकमत हैं कि खुदा रूह है ।

स्वामी जी–(पर्व वही, आयत २६) तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें । इस से स्पष्ट पाया जाता है कि ईश्वर भी आदम के स्वरूप जैसा था । जैसा कि आदम आत्मा और शरीर-युक्त था, ईश्वर को भी इस आयत से वैसा ही समझना चाहिए । जब वह शरीर जैसा स्वरूप नहीं रखता तो अपने स्वरूप में आदम को कैसे बना सका ?

पादरी साहब–इस आयत में शरीर का कुछ कथन नहीं । परमेश्वर ने आदम को पवित्र, ज्ञानवान् और आनन्दित रचा । वह सच्चिदानन्द ईश्वर है और आदम को अपने स्वरूप में बनाया । जब आदम ने पाप किया तो परमेश्वर के स्वरूप से पतित हो गया। जैसे पहले प्रश्नोत्तर के २४ और २५ प्रश्न से विदित होता है (कोलोसियों के पत्रे तीसरा पर्व ९ और १० आयत)। एक दूसरे से झूठ मत बोलो क्योंकि तुमने पुराने फैशन को उस के कार्यों समेत उतार फेंका है और नये फैशन को जो ज्ञान में अपने सिरजनहारे के स्वरूप के समान नये बन रहे हैं, पहना है । इस से विदित होता है कि ज्ञान

और पवित्रता में परमेश्वर के समान बनाया गया और नये सिरे से हम लोगों को बनाया (करन्तियों अध्याय १७, आयत १९) और प्रभु ही आत्मा है और जहां कहीं प्रभु का आत्मा है वहीं निर्विघ्नता है और हम सब विना पर्दा प्रभु के तेज को दर्पण में देख-देख प्रभु के आत्मा के द्वार पर तेज से उस के स्वरूप में बदलते जाते हैं । इस से ज्ञात होता है कि विश्वासी लोग बदल के फिर परमेश्वर के स्वरूप में बन जाते हैं अर्थात् ज्ञान, पवित्रता और आनन्द में क्योंकि धर्मी होने से मनुष्य के शरीर का रूप नहीं बदलता है ।

स्वामी जी—परमात्मा के सदृश आदम के बनने से सिद्ध होता है कि ईश्वर भी शरीर वाला होना चाहिए । जो परमेश्वर ने आदम को पवित्र और आनन्द से रचा था तो उसने परमेश्वर की आज्ञा क्यों तोड़ी और जो तोड़ी तो विदित होता है कि यह ज्ञानवान् नहीं था । और जब उस ने ज्ञान के पेड़ का फल खाया तब उस की आंख खुल गई । इस से जाना जाता है कि वह ज्ञानवान् पीछे से हुआ । जो पहले ही ज्ञानवान् था तो फल खाने के पीछे ज्ञान हुआ, यह बात नहीं बन सकती और प्रथम परमेश्वर ने उस को आशीर्वाद दिया था कि तुम फूलो-फलो, आनन्दित रहो और फिर जब उस ने ईश्वर की आज्ञा के विना उस पेड़ का फल खाया तब उस की आंखें खुलने से उस को ज्ञान हुआ कि हम नंगे हैं । गूलर के पत्ते अपने शरीर पर पहने । अब देखना चाहिये कि जो वह ईश्वर के समान ज्ञान में और पवित्रता में होता तो उस को नंगा होना, क्यों नहीं जान पड़ता । क्या उस को इतनी भी सुध नहीं थी । जब परमेश्वर के समान वह ज्ञानी, पवित्र और आनन्दित था तो उस को सर्वज्ञ और नित्य शुद्ध आनन्दित रहना चाहिये और उस के पास कुछ दु:ख भी कभी न आना चाहिये क्योंकि वह परमेश्वर के समान है । इन ऊपर कही तीनों बातों में तो वह पतित किसी प्रकार से नहीं हो सकता और जो पतित हुआ तो परमेश्वर के समान नहीं हुआ क्योंकि परमेश्वर ज्ञानादि गुणों से पतित कभी नहीं होता । फिर बतलाइये कि जैसे आदम प्रथम ज्ञानादि तीनों गुणों में परमेश्वर के समान होके फिर उन से पतित हो गया वैसे ही विश्वासी लोग ज्ञानी, पवित्र और आनन्दित होंगे वा अधिक कम । जो वैसे ही होंगे तो फिर जैसे आदम पतित हो गया वैसे ही विश्वासी भी हो जायेंगे क्योंकि वह तीनों बातों में परमात्मा के समान होकर पतित हो गया था ।

पादरी साहब—कई बातों में पहला उत्तर पर्याप्त है और रहा यह कि यदि आदम पवित्र था तो आज्ञा क्यों तोड़ी । उत्तर यह है कि वह पहले पवित्र था, आज्ञा तोड़ के पापी हुआ । फिर यह कहा कि ज्ञानवान् पीछे से हुआ।

यह बात नहीं है जब भले बुरे के ज्ञान के पेड़ का फल खाया तब बुरे जान पड़े। पहले न जानता था, आंखें खुल गईं और उस को जान पड़ा कि मैं नंगा हूं। इस का उत्तर यह है कि पापी होके उस को लज्जा आने लगी। फिर यह कि यदि वह परमात्मा के समान होता तो पतित न होता। इस का उत्तर यह है कि वह परमात्मा के समान बनाया गया न उस के तुल्य। यदि परमात्मा के तुल्य होता तो पाप में न गिरता। अन्त में जो पूछा कि विश्वासी लोग आदम से अधिक पवित्र हो जायेंगे इस का उत्तर यह है कि अधिक और कम पवित्र होने में प्रश्न नहीं है किन्तु स्वरूप के विषय में है कि परमेश्वर का रूप शरीर जैसा था वा नहीं। यदि वह स्वरूप जिस का कथन होता है शारीरिक होता तो धर्मी लोग जब परमेश्वर के स्वरूप में नये सिरे से नहीं जाते हैं तो अपने शरीर को नहीं बदल डालते।

स्वामी जी–(तौरेत का पर्व २, आयत ३) उस ने सातवें दिन को आशीर्वाद दिया और ठहराया। ईश्वर को सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सच्चिदानन्द स्वरूप होने से परिश्रम जगत् के रचने में कुछ भी नहीं हो सकता। फिर सातवें दिन विश्राम करने की क्या आवश्यकता ? और विश्राम किया तो छः दिन तक बड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा। और सातवें दिन को आशीर्वाद दिया तो छः दिनों को क्या दिया। हम नहीं कह सकते कि ईश्वर को एक क्षण भी जगत् के रचने में लगे और कुछ भी परिश्रम हो।

पादरी साहब–अब समय हो चुका, इस से अधिक हम नहीं ठहर सकते और बोलते समय लिखना पड़ता है इस से देर बहुत लगती है। इसलिए हम कुछ नहीं करना चाहते जो बोलते समय लिखा न जाये तो हम कर सकते हैं। यदि स्वामी जी को लिखकर प्रश्नोत्तर करना है तो हमारे पास प्रश्न लिखकर भेज दें। हम लिखकर उत्तर देंगे।

इस पर डाक्टर हसबैण्ड साहब के कहने से सरदार बहादुर अमीचन्द साहब ने कहा कि मेरी भी यह सम्मति है कि प्रश्न लिखकर पत्र द्वारा किया करें। आज की भांति किये जायेंगे तो छः महीने तक भी पूरे न होंगे।

स्वामी जी ने कहा कि–**प्रश्नोत्तर के लिखे विना बहुत हानि है।** जैसे अभी थोड़ी देर के पश्चात् अपने में से कोई अपनी कही हुई बात के लिए कह सकता है कि मैंने यह बात नहीं कही। दूसरे इस प्रकार बातचीत होने में और लोगों को यथार्थ छुपाकर प्रकट नहीं कर सकते और यदि कोई छुपावे भी तो जिस के जी में जो आवे सो छुपा सकता है और जो मकान पर प्रश्नोत्तर लिख-लिख किया करें तो इस में काल बहुत लगेगा और जो कहा गया कि इस

प्रकार छः मास में पूरा न होगा । सो मैं कहता हूं कि इसमें छः मास का कुछ काम नहीं है । हां जो मकान पर पत्र द्वारा करेंगे तो तीन वर्ष में भी पूरा न होगा और मनुष्य जो मेरे सामने सुन रहे हैं वे नहीं सुन सकेंगे इसलिए यही अच्छा है कि सब के सामने प्रश्नोत्तर किये जावें और लिखाया भी जावे ।

पादरी साहब ने कहा कि आपने यहां प्रश्नोत्तर करने में लोगों के सुनने का लाभ दिखलाया परन्तु मैं जानता हूं कि आज की बातों को जो यहां इतने लोग बैठे हैं, उनमें से थोड़े ही समझे होंगे । पादरी साहब की यह बात सुन कर हाफिज मौहम्मद हुसैन और अन्य मुसलमान लोग कहने लगे कि हम कुछ भी नहीं समझे । इस पर पादरी साहब ने कहा कि देखिए लिखने वाला ही नहीं समझा तो और कौन समझ सकता है । पर स्वामी जी ने दो दूसरे लिखने वाले थे उन से पूछा कि तुम समझे वा नहीं ? उन्होंने कहा कि हां हम बराबर समझे, हम ने जो कुछ लिखा है उस को अच्छी प्रकार कह सकते हैं । तब स्वामी जी ने कहा कि दो लिखने वाले तो समझे और एक नहीं समझा । सारांश यह कि पादरी साहब ने दूसरे दिन शास्त्रार्थ का लिखा जाना स्वीकार नहीं किया ।

स्वामी जी ने पादरी साहब से कहा कि–आज के प्रश्नोत्तर के तीन परत लिखे गये हैं आप उन पर हस्ताक्षर कर दीजिये और मैं भी कर देता हूं । और प्रधान सभा से भी कराकर एक प्रति आपके पास और एक मेरे पास और एक प्रधान के पास रहेगी ।

पादरी साहब ने कहा कि हम ऐसी बातों पर हस्ताक्षर करना नहीं चाहते। तत्पश्चात् सभा उठ खड़ी हुई और सब लोग अपने घरों को चले गये परन्तु स्वामी जी महाराज, सरदार बहादुर अमीचन्द साहब, पण्डित भागराम साहब, सरदार भगतसिंह जी के मकान पर जो सभा के मकान के पास था, ठहरे। उस समय शास्त्रार्थ की दो कापियों पर जो स्वामी जी के पास रही थीं। (क्योंकि एक पादरी साहब साथ ले गये थे ।) उन दोनों सज्जनों ने हस्ताक्षर भी कर दिये और सब अपने मकानों को गये ।

दूसरे दिन अर्थात् २९ नवम्बर, सन् १८७८ को पादरी साहब ने स्वामी जी के पास पत्र लिखकर भेजा कि आज आप प्रश्नोत्तर करेंगे या नहीं । यदि करना हो तो किया जाये परन्तु लिखा न जाये और लिखना हो तो पत्र द्वारा किया जाये ।

स्वामी जी ने इस के उत्तर में लिख भेजा कि **सब के सामने प्रश्नोत्तर किये जायें और लिखे भी जावें ।** इस प्रकार हम को स्वीकार है अन्यथा

नहीं क्योंकि और प्रकार करने में बहुत हानि है जो कि हम पहले लिख चुके हैं। अब यदि आप को लिखकर प्रश्नोत्तर करना हो तो मुझ को लिखिये । मैं जब तक आप कहें यहां रहूं और यदि आप को इस प्रकार न करना हो तो सरदार भगतसिंह जी को लिख भेजो कि अब शास्त्रार्थ न होगा ताकि उन्होंने जो तम्बू आदि का प्रबन्ध कर रखा है उसे उठा लेवें । पादरी साहब ने इस को बड़ा सुअवसर जाना और प्रसन्नता से सरदार साहब को इसी प्रकार कहला भेजा । उन्होंने सब सामान उठवा दिया । इस के पश्चात् स्वामी जी तीन चार दिन और अजमेर में रहे । चौथे दिन दूसरी दिसम्बर, सन् १८७८ को मसूदा की ओर प्रस्थान कर गये । (लेखराम पृष्ठ ६८१ से ६८६)

विविध प्रश्न

(मौलवी मुहम्मद मुराद अली साहब प्रोप्राइटर 'राजपूताना गजट' अजमेर से वार्तालाप का वृत्तान्त—नवम्बर १८७८ ई०)

"मुझे श्री महाराज स्वामी जी जगतारक से पांच बार मिलने का अवसर प्राप्त हुआ । प्रथम बार सन् १८७८ में जब कि मुंशी अमीचन्द साहब सरदार भूतपूर्व जुडीशियल असिस्टैण्ट कलक्टर ने प्रशंसनीय महाराज को यहां बुलाया था, रात को सेठ गजमललूथ की हवेली जो चौका कड़क्का में है, में प्रशंसनीय महाराज ने उपदेश दिया । उस दिन प्रथम तो लगभग दो बजे दिन को भेंट हुई थी । चूंकि स्वामी जी महाराज की प्रसिद्धि समस्त देशों में फैल रही थी और यहां आप प्रथम बार ही पधारे थे इसलिए मैं एक प्रश्नकर्त्ता के रूप में आपकी सेवा में गया । मेरे साथ एक सेवक और हिन्दू जो दीवान बूटासिंह के यहां कम्पोजीटर था, गये और बैठते ही महाराज जी से मैंने ये प्रश्न किए?

१. आत्मा क्या वस्तु है ।

२. बहुत से मत शरीर के नष्ट होने के पश्चात् शुभ कर्मों के कारण मनुष्य का मुक्त होना स्वीकार करते हैं, वास्तव में यह मोक्ष किस वस्तु का नाम है ?

३. बार-बार जन्म लेने का क्या कारण है ? यदि इस कथन को माना जाये कि पाप करने से मनुष्य बार-बार जन्म लेने का अधिकारी है तो मेरे विचार में मनुष्य का स्वभाव यही है कि जब तक ज्ञान प्राप्त न हो वह अवश्य पाप किया करता है, इस से सिद्ध होता है कि स्वयम् ईश्वर की ही इच्छा से मनुष्य बार-बार जन्म लेने का अधिकारी ठहरता है। यदि ईश्वर की इच्छा न हो तो मनुष्य मां के पेट से ही पवित्रता प्राप्त कर ले ऐसा उत्पन्न हो ताकि

पाप न करे ।

४. बुराई या तो शैतान से उत्पन्न हुई या खुदा से या अपनी ही इच्छा से । यदि अपनी इच्छा से उत्पन्न है तो विदित हुआ है कि ईश्वर के अतिरिक्त भी कोई कारण बुराई या भलाई का ऐसा है जो स्वयं ही उत्पन्न होने की शक्ति रखता है । खुदा के बस का नहीं और जो खुदा ही ने इस बुराई को उत्पन्न किया तो विदित हुआ कि बुराई का आविष्कारक भी परमेश्वर है और चूंकि उसकी उत्पन्न की हुई कोई वस्तु श्रेष्ठता से रहित नहीं और न निकम्मी है, इसलिए इस से यह मानना पड़ेगा कि स्वयं खुदा ने मनुष्य के लिए बुराई उत्पन्न की तो फिर अब बुराई का दण्ड क्यों ?

इन प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी महाराज ने कई प्रकार से देर तक दिये। प्रश्न नं० १ और ४ का उत्तर ऐसा युक्तियुक्त था कि मेरा सन्तोष हो गया था और प्रश्न नं० २ और ३ के विषय में उत्तर देने का वचन दिया था । उसी दिन सायंकाल स्वामी जी ने उपदेश दिया । अजमेर के असंख्य सामान्य और विशेष व्यक्ति एकत्रित थे । चूंकि उपदेश करने में दो चार वाक्य कहने के पश्चात् गिलास में से पानी के घूंट लेते थे । दूसरे दिन मैंने उस के विषय में भी आप से निवेदन किया कि यह रीति तो अंगरेज पादरियों की है आप क्यों करते हैं ? कहा कि–यह वैद्यक से सम्बद्ध बात है । मनुष्य दुर्बल है, कहते-कहते चित्त में उत्तेजना आ जाती है । पानी के घूंट लेने से वह दूर हो जाती है इस में क्या बुरा है ?

उसी दिन स्वामी जी महाराज की गोरक्षा के विषय में चिरकाल तक मुझ से बातें हुईं ? चूंकि मेरे विचार पहले ही से गोहत्या के विरुद्ध हैं, मैंने निरन्तर लेखों में और विशेष पत्रिका में यह बात भली भांति सिद्ध कर दी है कि भारत जैसे देश में गाय मारना बिल्कुल मूर्खता और नासमझी है, और यह कि गाय मारने में मुसलमानी नहीं धरी हुई है । इसलिए स्वामी जी मुझ से बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि आज से हम तुम को अपने विचारों का एक स्तम्भ समझते हैं और यह भी कहा कि तुम जो पत्रिका गोरक्षा के बारे में लिखो उस की एक प्रतिलिपि हम को भी दिखलाना । उस समय एक चित्र भी स्वामी जी ने अपना मुझ को दिया ।

इसके पश्चात् जब स्वामी जी उदयपुर गये तब भी भेंट हुई, जोधपुर में गये तब भी हुई थी । मेरे विचार में स्वामी जी महाराज एक महान् पुरुष थे और उन के मरने से भारतवर्ष को बहुत बड़ा धक्का लगा है ।

हस्ताक्षर–मुराद अली

(लेखराम पृष्ठ ४२९-४३०)

मूर्तिपूजा

(मसूदा में अश्वशाला के अध्यक्ष शिवराम से प्रश्नोत्तर— दिसम्बर, १८७८)

एक दिन रामबाग के हनुमान् के मन्दिर में रियासत की अश्वशाला का अध्यक्ष शिवराम आया । उसने हनुमान् की मूर्ति के आगे दण्डवत् की और हनुमान् की स्तुति में कुछ श्लोक पढ़े । उस ने महाराज को प्रणाम न किया । महाराज ने उस से कहा कि तूने हनुमान् के आगे हाथ जोड़े, दण्डवत् की और श्लोक भी पढ़े परन्तु वह तुझ से बोला तक नहीं । देख हम तुझे ब्राह्मण समझ कर विना बुलाये ही तुझ से बोलते हैं और हनुमान् तेरे बुलाने पर भी नहीं बोलता । वह बोला कि हनुमान् जी का बोलना हम समझते हैं और लोग नहीं समझते । महाराज ने कहा कि तेरे हनुमान् हम से डरते हैं जो तुझ से गुप्त बोलते हैं । इस के पश्चात् उस ने कुछ न कहा ।

(देवेन्द्रनाथ २।१४४, लेखराम पृष्ठ ५४२)

नवीन वेदान्त

(नवीन वेदान्ती साधु से रेवाड़ी में प्रश्नोत्तर—जनवरी, १८७९)

जब स्वामी जी रिवाड़ी में थे तो एक साधु ने उन से कहा कि मैं ब्रह्म हूं ।

स्वामी जी प्रथम तो मौन रहे फिर कहा कि—ईश्वर ने सूर्य, चन्द्र, पृथिवी बनाये । तू एक हाथ भर पृथिवी इधर (वायु मण्डल में) रचकर यदि हम को बतलावे तो हम तुझ को परमेश्वर मानें ।

सब लोग हंस पड़े और वह साधु मौन हो गया । (लेखराम पृष्ठ ४३५)

हिन्दू मुसलमानों के तीर्थ

(वकारअली बेग से कुम्भ मेला हरिद्वार में प्रश्नोत्तर— फरवरी से अप्रैल, १८७९)

सन् १८७९ में होने वाले कुम्भ के मेले पर एक दिन नजफअली तहसीलदार रुड़की स्वामी जी के पास आये और व्याख्यान सुनने लगे । व्याख्यान सुनकर कहा कि आज तक कुछ सन्देह था परन्तु अब अच्छी प्रकार सिद्ध हो गया जितना ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान संस्कृत में है उतना दूसरी भाषा में नहीं । दूसरी बार वकार अली बेग डिप्टी मैजिस्ट्रेट को साथ लेकर आये। डिप्टी साहब तम्बू के द्वार में और तहसीलदार साहब भीतर आ गये और डिप्टी साहब से कहा कि—स्वामी जी बड़े सिद्ध पुरुष हैं, मैं भी उन का सेवक

हूं । डिप्टी साहब ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि यह हरिद्वार और हर की पैड़ी क्या है ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि हर की पैड़ी तो नहीं किन्तु हाड़ की पैड़ी है क्योंकि हजारों मन हड्डियाँ यहां पड़ती हैं ।

डिप्टी साहब ने कहा कि यदि इस गङ्गा में स्नान का माहात्म्य है तो इस में ही क्या विशेषता है कि पैड़ी पर स्नान, दान करें ?

स्वामी जी ने कहा कि यह बात पण्डों की बनाई हुई है क्योंकि यदि लोग गङ्गा में प्रत्येक स्थान पर स्नान करने लगें तो पण्डा जी दक्षिणा कहां से लें । आपके यहां अजमेर में भी यही बात है । मुजाविर (कब्र के समीप रहने वाला) कहते हैं कि न इधर न उधर चढ़ाओ बल्कि इन ईंटों में चढ़ाओ, ख्वाजा साहब इन ईंटों में घुसे हैं । इस पर वे निरुत्तर हो गये ।

(लेखराम पृष्ठ ६११)

एक साथ खानपान

(कुम्भ मेला हरिद्वार में यवनों से प्रश्नोत्तर—फरवरी से अप्रैल, १८७९)

सन् १८७९ में होने वाले कुम्भ के मेले पर जब स्वामी जी मायापुर हरिद्वार में तम्बू लगाकर ठहरे हुए थे तो उम्मीद खां और पीर जी इब्राहीम नामक दो यवनों ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि हम ने सुना है कि आप मुसलमानों को भी आर्य बना लेते हैं ।

स्वामी जी ने कहा कि हम वास्तव में आर्य बना लेते हैं । आर्य के अर्थ श्रेष्ठ और सत्यमार्ग पर चलने वाले के हैं । जब आप सत्यधर्म स्वीकार करें तब आर्य हो गये ।

उन्होंने कहा कि हमारे साथ मिलकर खाओगे ?

स्वामी जी ने कहा कि हमारे यहां केवल उच्छिष्ट का त्याग है, हम एक दूसरे के साथ इकट्ठा नहीं खाते ।

मुसलमानों ने कहा कि एक स्थान पर खाने से प्रेम बढ़ता है।

स्वामी जी ने कहा कि **कुत्ते भी तो मिलकर एक स्थान पर खाते हैं परन्तु खाते-खाते आपस में लड़ने लगते हैं ।**

इस पर वे मौन हो गये । (लेखराम पृष्ठ ६०१)

मूर्तिपूजा

(मूला मिस्त्री से हरिद्वार मेले में प्रश्नोत्तर—मार्च, १८७९)

सन् १८७९ में होने वाले कुम्भ के मेले पर एक दिन मूला मिस्त्री सब

ओवरसियर नहर गंगा ने स्वामी जी से पूछा कि आपने यह मूर्तिखण्डन की बात क्यों और कैसे उठाई ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मेरा प्रथम से ही यह विचार था कि मूर्तिपूजा केवल अविद्या अन्धकार से है परन्तु इसके अतिरिक्त मेरे गुरु परमहंस श्री विरजानन्द सरस्वती जी महाराज बैठे-बैठे खण्डन किया करते थे क्योंकि आंखों से लाचार थे । और कहते थे कि कोई हमारा शिष्य ऐसा भी हो जो इस अन्धकार को देश से हटा दे । इसलिए मुझे इस देश पर दया आई इसलिए यह बीड़ा उठाया है । (लेखराम पृष्ठ ६०१)

नवीन वेदान्त

(नवीन वेदान्ती साधु से हरिद्वार में शास्त्रार्थ-५ अप्रैल, १८७९)

५ अप्रैल, सन् १८७९ रविवार तदनुसार पूर्णमासी चैत्र, संवत् १९३६ को जब कि स्वामी जी अतिसार की अधिकता के कारण रुग्ण हो गये और जंघा भी दर्द करती थी अर्थात् एक छाला निकला हुआ था । मेले में धूम पड़ गई क्योंकि एक दिन व्याख्यान नहीं हुआ था । साधुओं ने इसको स्वर्ण अवसर समझा और पंक्तिबद्ध होकर शास्त्रार्थ के लिए आने लगे । इस अभिप्राय से कि वे जब शास्त्रार्थ करना स्वीकार न करेंगे तो हम प्रसिद्ध कर देंगे कि हार गये । स्वामी जी उस दिन तम्बू में चारपाई पर विश्राम कर रहे थे । जब दूर से उन को आता देखा तो उठ बैठे और साधारण सत्कार के पश्चात् आने का कारण पूछा । उन में से एक परमसिद्ध साधु ने जो सब से अधिक विद्वान् था कहा कि हम आप से शास्त्रार्थ करने आये हैं । स्वामी जी ने कहा कि-**बहुत अच्छा, आप किसी विषय पर बातचीत करें ।**

साधु जी-हम वेदान्त पर चर्चा करेंगे ।

स्वामी जी-पहले आप मुझे समझा दें कि वेदान्त से आपका क्या अभिप्राय है ।

साधु जी-वेदान्त से यह अभिप्राय है कि जगत् मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है ।

स्वामी जी-जगत् से क्या अभिप्राय है और कौन-कौन पदार्थ जगत् के भीतर हैं और मिथ्या किस को कहते हैं ?

साधु जी-परमाणु से लेकर सूर्य पर्यन्त जो भी है उसे जगत् कहते हैं और यह सब मिथ्या अर्थात् झूठा है ।

स्वामी जी-तुम्हारा शरीर, बोलना, चालना, उपदेश, गुरु और पुस्तक

भी इसके भीतर हैं या नहीं ।

साधु जी—हां ये सब इस के भीतर हैं ।

स्वामी जी—और आपका मत भी इस के भीतर है या बाहर ?

साधु जी—हां वह भी जगत् के भीतर है ।

स्वामी जी—जब तुम स्वयं ही कहते हो कि हम और हमारा गुरु, हमारा मत और हमारी पुस्तक, हमारा बोलना और उपदेश, ये सब मिथ्या ही मिथ्या हैं अर्थात् झूठ हैं तो हम तुम को क्या कहें । स्वयं वादी के कहने से ही उसका दावा खारिज है । साक्षी आदि की कुछ आवश्यकता नहीं ।

साधु जी आश्चर्यचकित तथा पराजित होकर वहां से चले गये और फिर कभी इस प्रकार जत्था बांधकर स्वामी जी के सम्मुख शास्त्रार्थ को न आये । (लेखराम पृष्ठ ६८२)

नमस्ते पर

(मुन्शी इन्द्रमणि जी से मुरादाबाद में शास्त्रार्थ—जौलाई, १८७९)

मुरादाबाद में समाज की स्थापना से पूर्व कई दिन तक मुन्शी इन्द्रमणि और श्री स्वामी जी महाराज का परस्पर इस विषय में शास्त्रार्थ हुआ कि समाजों में प्रणाम के स्थान पर क्या शब्द नियत किया जावे। श्री स्वामी जी कहते **थे कि ''नमस्ते'' कहना चाहिये ।** मुन्शी इन्द्रमणि ने कहा कि हम ने प्रथम जयगोपाल और तत्पश्चात् ''परमात्मा जयते'' प्रचलित किया, इस पर लोगों ने बहुत आक्षेप किये और हँसी उड़ाई । अब सब मामला ठण्डा हो गया है। अब नमस्ते प्रचलित की जावेगी तो फिर लोग धुन्द मचावेंगे और इस के अतिरिक्त परमेश्वर का नाम जिस शब्द में आवे उसे कहना चाहिये । ''नमस्ते'' कहने में यह बुराई है कि जो राजा से नमस्ते किया जावे तो क्या राजा भी एक तुच्छ कोली चमार से नमस्ते कहेगा ? स्वामी जी महाराज ने कहा कि मुन्शी जी ! बड़ा किस को कहते हैं ? जिस मनुष्य ने यह गर्व किया कि मैं बड़ा हूं अर्थात् राजा या विद्वान् या शूरवीर हूं तो उस में **अभिमान आ गया और उस की बड़ाई में दोष लग गया ।** देखो जितने महाराजाधिराज, शूरवीर और विद्वान् हुए हैं उन्होंने अपने मुख से अपने आप को बड़ा कभी नहीं कहा। नमस्ते का अर्थ मान और सत्कार का है जिस से राजा-प्रजा दोनों को परस्पर नमस्ते कहना ठीक है । अब हम तुम से यह पूछते हैं, तुम अपने अन्तःकरण से सत्य कह देना कि जब कोई व्यक्ति तुम्हारे घर पर आता है या तुम को मिलता है तो उसे देखकर तुम्हारे मन में क्या विचार आता है?

मुन्शी जी मौन रहे । तब स्वामी जी कहने लगे कि कौन नहीं जानता कि सम्मानित पुरुष को देखकर उस का सम्मान और छोटे व्यक्ति को देखकर उस का आतिथ्य तुरन्त करने का ध्यान आता है । फिर बतलाइये कि ऐसे अवसर पर परमेश्वर के नाम का क्या सम्बन्ध है ? मनुष्य को चाहिये जो मन में हो वही मुख से कहे और यह आप का दोष है कि आपने पहले ''जयगोपाल'' और फिर ''परमात्मा जयते'' प्रचलित किया । विचार करके ऐसा शब्द जो पहले इस देशवासियों में प्रचलित था, प्रचलित क्यों न किया। इस से सब आर्यसमाजों में ''नमस्ते'' का उच्चारण करना ठीक है, जैसा कि सब दिन से महर्षि लोगों में प्रचार था । और नमस्ते शब्द वेदों में भी आया है । हम यजुर्वेद से बहुत से प्रमाण दे सकते हैं । आप ''परमात्मा जयते'' का किसी प्राचीन ग्रन्थ से प्रमाण नहीं दे सकते । फिर उसी दिन दोपहर के पश्चात् बहुत से प्रमाण आर्ष ग्रन्थों और वेदों से निकालकर दिखलाये परन्तु मुन्शी जी ने अपने दुराग्रह और हठधर्मी से न माना ।

(लेखराम पृष्ठ ४४३-४४५)

अवतारवाद

(पं० रामप्रसाद तथा पं० वृन्दावन से बदायूं में शास्त्रार्थ–अगस्त, १८७९)

नोट–स्वामी जी ३१ जौलाई, सन् १८७९ को बदायूं में पधारे और १४ अगस्त, सन् १८७९ की दोपहर तक वहां निवास किया । इसी समय के बीच में यह शास्त्रार्थ हुआ । यद्यपि शास्त्रार्थ की ठीक तिथि लिखी हुई नहीं है तथापि ऐसा अनुमान है कि यह शास्त्रार्थ ५ अगस्त के पश्चात् हुआ क्योंकि ४ अगस्त तक के उनके कार्यक्रम का संक्षिप्त विवरण जीवनचरित्र में दिया हुआ है । उसके पश्चात् शास्त्रार्थ की चर्चा है । यह शास्त्रार्थ दो दिन तक होता रहा ।

पण्डित रामप्रसाद, पण्डित वृन्दावन, पण्डित टीकाराम, पण्डित रामप्रसाद दारोगा सभा आदि सज्जन स्वामी जी के निवास स्थान पर शास्त्रार्थ की इच्छा से पहुंचे । प्रथम पण्डित रामप्रसाद जी ने बातचीत आरम्भ की ।

पण्डित रामप्रसाद–ईश्वर साकार है और उस में पुरुषसूक्त की यह ऋचा प्रमाण है–

''सहस्त्रशीर्षा पुरुषः'' इत्यादि (यजु० अध्याय ३१, मन्त्र १)

यदि ईश्वर साकार नहीं तो उस को ''सहस्त्रशीर्षा'' आदि क्यों लिखा?

स्वामी जी–सहस्त्र कहते हैं सम्पूर्ण जगत् को और असंख्य को । जिस

में असंख्यात शिर, आंख और पैर ठहरे हुए हैं उस परमेश्वर को "सहस्रशीर्षा" आदि कहते हैं । यह नहीं कि उस की हजार आंखें हों ।

पण्डित जी ने अमरकोश का प्रमाण दिया ।

स्वामी जी ने कहा कि—**वेदों में अमरकोश प्रमाण नहीं** प्रत्युत निरुक्त और निघण्टु आदि प्रमाण हैं ।

पण्डित जी ने कहा कि हम तो वह पढ़े ही नहीं और **लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है और साकार है ।** इस में लक्ष्मीसूक्त का प्रमाण है—

अश्वपूर्णां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी कुप्यताम् ॥३॥

इस में जो विशेषण हैं उन से उस का साकार होना सिद्ध होता है ।

स्वामी जी—प्रथम तो यह वाक्य संहिता का नहीं और जो तुम उस को विष्णु की स्त्री समझकर बुलाते हो तो विष्णु तुम को अपनी स्त्री नहीं देगा और तुम उस के मांगने से पाप के भागी होगे और वह भी व्यभिचारिणी ठहरेगी। लक्ष्मी के अर्थ राज्यलक्ष्मी, राज्य की सामग्री और शोभा के हैं और इसी कारण से इस श्लोक में हाथी, रथ और घोड़े लिखे हैं ।

पण्डित रामप्रसाद—आप जो कहते हैं कि वेदों के पढ़ने का अधिकार सब को है, यह अनुचित है । वेद पढ़ने का अधिकार केवल द्विजों को ही है और उन में से भी मुख्य ब्राह्मणों को है ।

स्वामी जी—**यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।** इत्यादि ।

इस वेदमन्त्र से स्पष्ट सिद्ध है कि—**वेदों के पढ़ने का अधिकार सब को है ।**

पण्डित जी—जो रामचन्द्र और कृष्णादि हुए हैं, ये साक्षात् परमेश्वर के अवतार हैं ।

स्वामी जी—ऐसा न समझना चाहिये, यह वेद के विरुद्ध है । **परमेश्वर कभी अवतार नहीं लेता ।**

पण्डित जी—इस यजुर्वेद के मन्त्र से विष्णु का वामनावतार सिद्ध होता है—"**इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।**"

स्वामी जी—इस से वामनावतार सिद्ध नहीं होता । इस का अर्थ यह है कि परमेश्वर अपनी सामर्थ्य से सब जगत् को तीन स्थानों में स्थापन करके धारण करता है। यह नहीं कि परमेश्वर ने तीन प्रकार से चरण रखा जैसा कि तुम कहते हो ।

पण्डित वृन्दावन जी बोले तो इस से विदित हुआ कि विष्णु साकार

नहीं है ।

स्वामी जी–विष्णु के अर्थ तो करो, यह किस धातु से बना है ?

पण्डित वृन्दावन जी–"विष्लृ व्याप्तौ" से विष्णु बनता है अर्थात् जो सर्वव्यापक हो उसे विष्णु कहते हैं ।

स्वामी जी–फिर जो व्यापक है वह साकार कैसे हो सकता है ?

पण्डित रामप्रसाद–इस यजुर्वेद के मन्त्र में–

"मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः"

जो "कुचर" शब्द आया है उस से मत्स्य (मच्छ) आदि अवतार सिद्ध होते हैं क्योंकि "कुचर" का अर्थ है पृथिवी पर चलने वाला ।

स्वामी जी–कुचर से मत्स्यादि अवतार सिद्ध नहीं होते । "कु" के अर्थ वेद में कभी पृथिवी के नहीं लिये जाते ।

पण्डित रामप्रसाद–महीधर की टीका में तो ऐसा ही लिखा है ।

स्वामी जी–**महीधर की टीका प्रायः अशुद्ध है ।** निरुक्त और निघण्टु आदि के विना वेद का अर्थ शुद्ध नहीं हो सकता ।

पण्डित रामप्रसाद–फिर आपने अपने पास महीधर की टीका को क्यों रखा हुआ है ?

स्वामी जी–खण्डन के लिए और देखो इस का अशुद्ध अर्थ "गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे" इत्यादि आठ दस मन्त्रों पर । क्या ऐसे अर्थ प्रमाण योग्य हैं कि यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे आदि आदि । वेदों पर जो ऋषियों की टीका हैं वही प्रमाण के योग्य हैं । और अवतारों का न होना यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के मन्त्र **"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धम्"** इत्यादि से सिद्ध है कि सर्वव्यापक परमात्मा कल्याणस्वरूप, काया अर्थात् शरीर से रहित, नाड़ी नस आदि बन्धन से मुक्त और शुद्धस्वरूप पापों से न्यारा है । जिसने आदि जगत् में अपनी अनादि प्रजा जीवों के लिए वेदविद्या का प्रकाश किया । शास्त्रार्थ दो दिन में समाप्त हुआ ।

(लेखराम पृष्ठ ४४६–४४७)

सत्यासत्यविवेक की भूमिका

यह शास्त्रार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली ने पं० लेखराम कृत महर्षि जीवनचरित्र से भाषा में अनुवाद कराके दयानन्द ग्रन्थसंग्रह में छापा था । उसी के अनुसार यह छापा गया है । इस शास्त्रार्थ सम्बन्धी उस के सम्पादकीय में से निम्न लेख भी उपयोगी समझकर नीचे दिया जाता है ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती और पादरी टी०जी० स्काट साहेब के मध्य तीन दिन तक बरेली नगरी में जो लिखित शास्त्रार्थ हुआ था, उस का विवरण धर्मवीर श्री पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर कृत महर्षि के बृहद् उर्दू जीवनचरित्र में, पृष्ठ ४४१ से ४६३ तक मुद्रित हुआ है । महर्षि दयानन्द १४ अगस्त, सन् १८७९ ई० तदनुसार भाद्रपद कृष्णा १२, संवत् १९३६ वि० को बरेली पधारे थे और बेगम बाग में श्री लाला लक्ष्मीनारायण जी खजांची की कोठी में उन्होंने निवास किया था ।

प्रथम कई दिन तक महर्षि के उपदेश होते रहे, जिन में जनता बहुत अधिक संख्या में उपस्थित होती थी । नगर के बड़े राज्याधिकारी कलक्टर आदि तथा अंग्रेज एवं पादरी आदि और नगर के प्रतिष्ठित सज्जन भी बड़े प्रेम और उत्साह से उपस्थित होते थे । इस प्रकार कई दिन तक बड़ा आनन्द रहा और जनता उपदेशामृत पान करके लाभ उठाती रही ।

उन दिनों महर्षि के पूर्व परिचित और भक्त सुप्रसिद्ध पादरी टी०जी० स्काट साहेब का निवास भी बरेली में ही था। महर्षि के व्याख्यानों में स्काटसाहेब भी बड़े उत्साह से पधारा करते थे । महर्षि के जीवनचरित्र के प्रसंगों में स्काट साहेब का उल्लेख पाया जाता है । मेला चांदापुर में भी श्री स्काट महोदय ने ईसाई मत के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया था । ये पादरी साहेब अमेरिका के रहने वाले थे और ईसाई मत का प्रचार करने के लिए भारत में पधारे थे । ये ईसाइयों के प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय के अनुयायी, सुयोग्य विद्वान्, मधुरभाषी और व्यवहारकुशल विद्वान् थे । महर्षि के ये बहुत प्रेमी थे, और महर्षि ने तो इन का नाम ही भक्त स्काट रख दिया था ।

कुछ लोगों ने विचार किया कि महर्षि दयानन्द और पादरी स्काट साहेब का परस्पर शास्त्रार्थ कराया जाये । महर्षि दयानन्द और पादरी साहेब ने भी इस प्रस्ताव को उत्तम समझा और सहर्ष स्वीकार कर लिया । तदनुसार आवश्यक नियम आदि निर्धारित किये गये और तीन दिन तक लिखित रूप में यह शास्त्रार्थ आनन्दपूर्वक होता रहा । समाप्ति के कुछ ही दिन पश्चात् इस शास्त्रार्थ का विवरण उर्दू भाषा में; पुस्तकाकार में छपवाकर प्रसारित किया गया था ।

धर्मवीर श्री पण्डित लेखराम जी ने अपने ग्रन्थ में जो विवरण बरेली शास्त्रार्थ का प्रस्तुत किया है, वह सब ज्यों का त्यों उसी प्रति के अनुसार प्रतीत होता है, जो कि शास्त्रार्थ के अन्त में प्रकाशित की गई थी । उस प्रति का आरम्भिक निवेदन श्री पण्डित लेखराम जी के ग्रन्थ में पृष्ठ ४४२ पर

इस प्रकार मुद्रित हुआ है–

''विदित हो कि यह लिखित शास्त्रार्थ बड़े आनन्द के साथ जैसा कि प्राय: सुसभ्य, सुयोग्य और विद्वान् पुरुषों में हुआ करता है, और जैसा कि वास्तव में होना भी चाहिए, स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और पादरी टी०जी० स्काट साहेब के मध्य राजकीय पुस्तकालय बरेली* में तीन दिन तक ता० २५, २६, और २७ अगस्त, सन् १८७९ ई० को लाला लक्ष्मीनारायण साहेब खजांची रईस बरेली की अध्यक्षता में हुआ ।

अन्य नियमों के साथ ही इस शास्त्रार्थ के मुख्य नियम इस प्रकार थे–

''शास्त्रार्थ लिखित होगा । तीन लेखक–एक स्वामी जी की तरफ दूसरा पादरी साहेब की तरफ और तीसरा अध्यक्ष महोदय की तरफ बैठकर शास्त्रार्थ के प्रत्येक शब्द को सावधानी के साथ ज्यों का त्यों लिखते जावेंगे । जिस समय एक विद्वान् निश्‍चित समय के अन्दर अपना कथन समाप्त कर चुके तो उसका लिखा हुआ वक्तव्य सभा में उपस्थित पुरुषों को सुना दिया जावे और तीनों प्रतियों पर हस्ताक्षर भी कराये जावें । और जब शास्त्रार्थ समाप्त हो तो उस पर अध्यक्ष महोदय के हस्ताक्षर भी कराये जावें । इन तीनों प्रतियों में से एक स्वामी जी के पास, दूसरी पादरी साहेब के पास और तीसरी अध्यक्ष महोदय के पास प्रमाण स्वरूप रहे, जिससे कि बाद में भी उनमें किसी प्रकार की घटा-बढ़ी न हो सके ।''

पृष्ठ ४४३ पर फिर प्रार्थना के रूप में लेख है–

''हम इस शास्त्रार्थ को अक्षरश: मूल के कि जिस पर स्वामी जी और पादरी साहेब के हस्ताक्षर हैं, के अनुसार करके और स्वामी जी के आदेशानुसार तैयार करके इस को छापेखाने में छपवाते हैं । इस में किसी अक्षर का भी परिवर्तन नहीं किया है । इसको शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने के लिए यहां तक सावधानता रखी गई है कि जहां जिस विद्वान् के हस्ताक्षर थे, वहां हस्ताक्षर का शब्द लिखकर उसी का नाम लिख दिया है । पाठक दोनों विद्वानों के लेखों अथवा वक्तव्यों को सत्यासत्य विवेचक दृष्टि से देखें और किसी प्रकार के पक्षपात को पास न आने दें, जिस से कि सत्य और असत्य का प्रकाश भली प्रकार हो जावे । कुछ सज्जनों का कथन है कि इन शास्त्रार्थों के अन्त में निर्णय भी निकाल देना चाहिए । परन्तु हम ने अपनी सम्मति प्रकाशित करना उचित नहीं समझा । निर्णय करने का काम पाठकों की सत्यता प्रेमी

*** जहां आजकल म्युनिसिपल बोर्ड बरेली का दफ्तर है, पहले यहां पर ही यह पुस्तकालय था, जिस में यह शास्त्रार्थ हुआ था ।** ***–सम्पादक***

बुद्धि पर ही छोड़ा जाता है ।''

इस भूमिका और प्रार्थना आदि की शब्द-रचना से ज्ञात होता है कि यह लेख श्री लाला लक्ष्मीनारायण जी, जो कि अध्यक्ष थे, की ओर से ही है, और उन्होंने ही इस विवरण को सर्वप्रथम प्रकाशित किया था ।

इस पुस्तक के विषय में धर्मवीर श्री पं० लेखराम जी आर्य मुसाफिर कृत महर्षि के बृहद् जीवनचरित्र में पृष्ठ ७९८ पर लिखा है–

बड़ी सावधानी के साथ प्रथम बार मास सितम्बर, सन् १८७९ ई० में आर्य भूषण यन्त्रालय शाहजहांपुर में मुद्रित हुआ । और दोबारा आर्य दर्पण प्रेस शाहजहांपुर में और चौथी और पांचवीं बार उर्दू व हिन्दी में लाहौर में मुद्रित हुआ ।''

प्रस्तुत पुस्तक के रूप में हम ''सत्यासत्यविवेक'' का हिन्दी अनुवाद जनता की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं । हमने इसे धर्मवीर पं० लेखराम जी के ग्रन्थ के आधार पर ही तैयार किया है । और अनुवाद-कार्य में इस बात का पूर्ण ध्यान रखा है कि दोनों पक्ष के विद्वानों के भाव पूर्णतया यथावत् रूप में प्रकाशित हों । –सम्पादक

शास्त्रार्थ-बरेली

सत्यासत्यविवेक

ता० २५ अगस्त, सन् १८७९ ई०

विषय–**पुनर्जन्म**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी–

जीव और जीव के स्वाभाविक गुण, कर्म और स्वभाव अनादि हैं । और परमेश्वर के न्याय करना आदि गुण भी अनादि हैं । जो कोई मानता है कि जीव की और उसके गुण आदि की उत्पत्ति होती है उस को उस का नाश मानना भी अवश्य होगा । और तिस के कारण आदि का भी निश्चय करना और कराना होगा क्योंकि कारण के विना कार्य की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है । जो-जो जीव के पाप और पुण्य आदि कर्म प्रवाह से अनादि चले आते हैं, उनका ठीक-ठीक फल पहुंचाना ईश्वर का काम है । और जीवों का विना स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के सुख-दुःख का भोग करना असम्भव है । जब यह बात हुई, तब बारम्बार शरीर का धारण करना भी जीव को अवश्य है । क्योंकि क्रियमाण कर्म नये-नये करता जाता है उनका सञ्चित और प्रारब्ध भी नया नया होता चला जाता है। जब इस सृष्टि में विद्या

की आंख से मनुष्य देखे तो सृष्टिक्रम और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से ठीक-ठीक सिद्ध होता है कि देखो जो आज सोमवार है, वही फिर भी आता है । महीना, रात दिन आदि भी पुन: पुन: आते हैं । और गेहूं का बीज बोने से फिर वही गेहूं आता है । **हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी टी०जी० स्काट साहेब

इस आवागमन के विषय में केवल सत्य के लिए ही प्रयत्न करना चाहिये । हार-जीत की इस में कोई बात नहीं है । यह सिद्धान्त पुराना तो है, परन्तु संसार में से मिटा जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि जितने जीवात्मा हैं, वे सदैव जन्म लेते रहते हैं । कभी मनुष्य की योनि में, कभी बैल की योनि में, कभी बन्दर की और कभी कीड़े मकोड़े की योनि में उत्पन्न होते हैं । परन्तु यह ऐसा सिद्धान्त है कि सुशिक्षित और उन्नत जातियां इस को छोड़ती जाती हैं । प्राचीन मिस्री लोगों ने पहले इसे माना हुआ था फिर छोड़ दिया । इसी प्रकार यूनानियों ने और अंग्रेजों ने भी छोड़ दिया । हमारे पुराने द्रविड़ लोग भी, जो कि हमारे गुरु थे, यही सिखलाते थे । और हम लोग सब के सब मानते थे । परन्तु रोशनी के फैलने से और विद्या प्राप्त करने से, इस पुराने और निराधार सिद्धान्त को छोड़ दिया सो हमारा सवाल पण्डित जी से यह है कि इस सिद्धान्त को मानने के लिए कौन सी युक्तियां हैं ? जब कोई विशेष प्रमाण दिया जायेगा तो हम उसका खण्डन करने के लिये आक्षेप करेंगे । फिर भी दो चार प्रश्न यहां पर हैं-

ईश्वर की आत्मा के अतिरिक्त और आत्माएँ भी अनादि काल से हैं या नहीं ?

इस जन्म लेने से कभी छुटकारा मिलेगा या नहीं ?

आप का यह कथन है कि सब दु:ख संसार में होते हैं, दण्ड देने के लिए ही हैं सो पुनर्जन्म केवल दण्ड के लिए है, या इस का कोई और कारण है ?

यह भी एक प्रश्न है कि परमेश्वर हर समय सगुण है, या कभी निर्गुण भी होता है ?

यह जन्म लेना उसी की खास कुदरत से हर समय होता रहता है, या किसी कुदरती कानून से होता है, जैसे कि बीज का उगना, फल का पकना, पानी का बरसना । इत्यादि । **-हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी-

तीन पदार्थ अनादि हैं । एक ईश्वर, एक कारण और सब जीव। जीव जन्म से कभी छुटकारा न पायेंगे । पुनर्जन्म दण्ड और पुरस्कार दोनों के लिए है । परमेश्वर सगुण भी है और निर्गुण भी और वह सदैव रहता

है । कुदरती नियम उस का यही है कि जैसा, जिसने पाप या पुण्य किया है, उस को वैसा ही अपने सत्य न्याय से फल देता है । अब पादरी साहेब ने जो कहा था कि पुनर्जन्म का प्राचीन सिद्धान्त हमारे बीच में भी था । इस से सिद्ध हुआ कि सब देशों में पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रचलित था । और जो यह कहा कि जो जातियां सुधरती जाती हैं, वे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को छोड़ती जाती हैं । अब इस पर एक सवाल है कि प्राचीन सभी बातें झूठी हैं या उनमें से कुछ सत्य भी हैं और नये सिद्धान्त सभी सत्य हैं, अथवा उनमें कुछ मिथ्या भी हैं **यदि पादरी साहेब कहें कि प्राचीन बातें और सिद्धान्त अब मानने के योग्य नहीं हैं, तब तो तौरेत और जबूर इत्यादि ग्रन्थ और बाईबिल व इञ्जील की शिक्षाएँ आजकल की अपेक्षा से बहुत पुरानी हैं । वे भी अब न माननी चाहियें । यह कोई मानने योग्य प्रमाण की बात नहीं है कि पहले मानते थे और अब नहीं मानते, इसलिए सच्ची या झूठी हैं । या पहले नहीं मानते थे, अब मानते हैं, इसलिए झूठी या सच्ची हैं ।**

अब, पादरी साहेब ने कहा कि कुछ प्रमाण दें तो हम उस पर आक्षेप करें । प्रमाण के लिए मैंने पहले ही लिख दिया है, कि इस जीव के कर्म इत्यादि अनादि हैं । और ईश्वर का न्याय करना इत्यादि भी अनादि हैं । जो कर्म का सिद्धान्त न माना जाये तो सृष्टि में बुद्धिमान्, निर्बुद्धि और दरिद्र, राजा और कंगाल की अवस्था ईश्वर किस प्रकार कर सके । क्योंकि इस में तरफदारी आती है, और पक्षपात से उस का न्याय ही नष्ट हो जाता है। जब कर्म के फल हैं तो परमेश्वर पूर्ण न्यायकारी बनता है, अन्यथा नहीं । और ईश्वर अन्याय कभी नहीं करता । **—हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी टी०जी० स्काट साहेब

पण्डित जी के कहने से तमाम जीव अनादि हैं अर्थात् अजल से हैं। तो इस हिसाब से हमारी और ईश्वर की अनादिता में कोई भेद नहीं । अर्थात् दो वस्तुएँ अनादि काल से हैं । एक प्रकार से दो ईश्वर हुए । मेरा प्रश्न यह है कि ऐसा मानना, तौरेत, जबूर और इञ्जील के सर्वथा विरुद्ध है। मैं पूछता हूं कि कौन सा सिद्धान्त अधिक सन्तोषजनक है । अर्थात् एक यह कि हमारे जीवात्मा सदैव आवागमन के चक्कर में भ्रमते फिरते रहेंगे और कभी बैल के शरीर में जायेंगे और कभी बन्दर के । कभी अत्यन्त कीड़े मकोड़े के और कभी किसी अच्छे शरीर में । इस अनादि काल से चल रहे चक्कर में अधिक सन्तोष है कि तौरेत, जबूर और इञ्जील के सिद्धान्त में कि अन्ततोगत्वा जो लोग नेकी करते और नेक बनते हैं, वे एक ऐसे सुखपूर्ण

स्थान में पहुंचेंगे कि उन्हें फिर कभी जन्म न लेना होगा । न ही उन्हें किसी प्रकार का कष्ट होगा । विचार कीजिये कि किस ग्रन्थ की शिक्षा अधिक सन्तोषजनक है । इस के अतिरिक्त ईश्वर निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार का कैसे हो सकता है ? अर्थात् वह विशेषणों वाला भी है और विशेषणों से रहित भी है ? वह कौन सी वस्तु है कि विशेषणों से रहित है? बताइये, यदि उसमें न्याय करने का गुण न हो तो न्याय क्योंकर करे और पुनर्जन्म के रूप में लोगों को दण्ड किस प्रकार देवे ? ऐसे ही निराधार विचारों पर आधारित होने के कारण सुशिक्षित जातियां इस सिद्धान्त को छोड़ती जाती हैं । इस के अतिरिक्त यदि यह पुनर्जन्म दण्डस्वरूप है तो इस में दण्ड क्या हुआ ? उदाहरण के लिए जब बन्दर यह जानता ही नहीं कि मैंने क्या अपराध किया है या कोई पादरी साहेब या पण्डित साहेब अत्यन्त तुच्छ कीड़े के शरीर में उत्पन्न हुआ तो उन को दण्ड कैसा हुआ । वे तो जानते ही नहीं कि हम ने क्या-क्या अपराध किये हैं ? क्या कभी किसी को याद आया है या आता है कि मैं अमुक काल में बन्दर था अथवा मैं किसी समय में गीदड़ था और, जब कुल दुनिया में किसी को भी याद नहीं है तो फिर ऐसे पुनर्जन्म में किसी के लिए क्या दण्ड की बात रह जाती है। हम तो यह मानते हैं कि दुःख कभी-कभी दण्डस्वरूप होता है और कभी नहीं भी ।

—हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—

दोनों अनादि होने से बराबर नहीं होते, जब तक कि उन के सब गुण बराबर न हों । परमेश्वर अनन्त है और जीव सान्त । परमेश्वर सर्वज्ञ है, जीव अल्पज्ञ । परमेश्वर सदा पवित्र और मुक्त तथा जीव कभी पवित्र, कभी बन्ध और कभी मुक्त । इसलिए दोनों बराबर नहीं हो सकते ।

तौरेत, जबूर और इञ्जील के विरुद्ध होने से ही कोई बात सच्ची और झूठी नहीं हो सकती । क्योंकि तौरेत आदि में भ्रम से सच को झूठ और झूठ को सच बहुत जगह लिखा है । सच्ची तो उस किताब की बात हो सकती है कि जिस में आरम्भ से अन्त तक एक भी बात झूठ न हो । ऐसी किताब वेदों के अतिरिक्त भूगोल में ईश्वरकृत और कोई नहीं । क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव से अनुकूल वेद ही पुस्तक है, दूसरी नहीं । सिवाय वेद के उपदेश के किसी भी किताब में ठीक-ठीक सब बातों का निश्चय नहीं नजर आता है। इसलिए **सब से उत्तम वेद की ही शिक्षा है, दूसरे की नहीं ।**

परमेश्वर अपने गुणों से सगुण है अर्थात् सर्वज्ञ आदि गुणों से और निर्गुण—कारण के जड़ आदि गुण तथा जीव के अज्ञान, जन्म, मरण, भ्रम आदि

गुणों से, रहित होने से परमात्मा निर्गुण है । इसलिए यह निश्चय जानना चाहिए कि कोई पदार्थ भी इस रीति से सगुणता और निर्गुणता से रहित नहीं है ।

जब जीव का पाप अधिक और पुण्य कम होता है, तब उसे बन्दर आदि का शरीर धारण करना पड़ता है । और जब पाप पुण्य बराबर होते हैं, तब मनुष्य का । और, जब पाप कम और पुण्य अधिक होता है, तब विद्वान् इत्यादि का । **–हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी स्काट साहेब–

सब पुराने सिद्धान्त मिथ्या नहीं हैं । और न ही सब नये सिद्धान्त सत्य हैं । परन्तु जब सुशिक्षित जातियां भली प्रकार विचार विमर्श करके किसी सिद्धान्त को मिथ्या उद्घोषित करती हैं तो यह दृढ़ प्रमाण है कि वह सिद्धान्त मिथ्या है । और एक ही बार के जन्म लेने के विषय में सोच लीजिए ।

तौरेत नई नहीं है । यह भी बहुत पुरानी है । तौरेत किसी प्रकार भी वेद से नई नहीं है । उस में पुनर्जन्म का कुछ भी उल्लेख नहीं है । तौरेत और इञ्जील सत्य हैं वा मिथ्या यह आज का विषय नहीं है । इस विषय को व्यर्थ ही खण्डित करना कि ये मिथ्या नहीं अथवा वेद के विषय में कुछ नहीं कहना है क्योंकि यह भी आज का विषय नहीं । परन्तु इस बात पर ध्यान दीजिये कि सुशिक्षित और उन्नत जातियां तौरेत और इञ्जील की शिक्षाओं पर दृढ़ रहती हैं । इसके प्रतिकूल हिन्दू लोग ज्यों-ज्यों उन्नत और सुशिक्षित होते जाते हैं वेद को छोड़ते जाते हैं । आवश्यकता हो तो मैं सैकड़ों प्रमाण दे सकता हूं । और यह कहना कि कर्म अनादि काल से है, इसलिये पुनर्जन्म होता है । तब तो परमेश्वर को भी जन्म लेना चाहिये । और यदि कोई कहे कि उसके सब कर्म अच्छे हैं तो क्या कठिन है कि उसकी दया और कृपा से हम लोग भी ऐसे दृढ़ और उत्तम हो जावें कि हमें बन्दर या गीदड़ बनना न पड़े । जैसा कि हमारे पवित्र धर्म ग्रन्थ में लिखा है–''एक बार मनुष्य के लिए मरना है । बाद इसके न्याय ।''

निर्गुण और सगुण के विषय में स्वामी जी के अर्थ को मैं नहीं मानता। निर्गुण का यह अर्थ नहीं है कि कोई गुण न हो । जब उसमें गुण नहीं है, तब तो वह सगुण भी नहीं हो सकता । फिर इस समय जन्म-मरण का प्रबन्ध कौन करता है ? अब फिर मैं पूछता हूं कि यदि दण्ड-भोग के लिए जन्म लेता है तो यह चाहिये कि दण्ड भोगने वाला यह जाने कि मुझे दण्ड क्यों भोगना पड़ा है । अन्यथा दण्ड भोग की सब बात ही व्यर्थ हो जाती है । मैं फिर पूछता हूं कि किसी को याद क्यों नहीं रहता, कि तुम बन्दर या गीदड़ पिछले जन्म में थे । **–हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी–

पहले प्रश्न के विषय में उत्तर–जीव अल्पज्ञ है, इसलिए पूर्वजन्म की बात को याद नहीं रख सकता । पादरी साहेब को विचार करना चाहिये कि ऐसी बात क्यों पूछते हैं क्योंकि इसी जन्म में जन्म के पांच वर्ष तक की बातें भी क्यों नहीं याद रहतीं ? और सुषुप्ति अर्थात् गहरी नींद में जब सो जाता है, तब जागृत अवस्था की बात एक भी याद नहीं रहती । और कार्य-कारण के अनुमान से अर्थात् कार्य का निश्चय कर लिया । सब विद्वान् लोग मानते हैं कि जब पाप-पुण्य का फल सुख-दुःख, नीच-ऊंच जगत् में दीखता है तो कारण जो पूर्वजन्म का कर्म है, सो क्यों नहीं? पुरानी और नई शिक्षा वा सिद्धान्त की बात दृष्टान्त के लिये पर्याप्त नहीं है । क्योंकि वह सर्वथा सत्य नहीं । और जिन को आप सुशिक्षित कहते हैं, उन जातियों में से कोई मनुष्य अर्थात् **दार्शनिक वा विचारक बन्दर से मनुष्य का होना मानता है यह सर्वथा मिथ्या है ।**

ये वेद की ही बातें हैं कि वेदी का बनाना । इब्राहीम को ईश्वर ने कहा कि–इस से मैं प्रसन्न होता हूं, तुम यज्ञ किया करो । इत्यादि वेदों की बातें बाईबिल में मौजूद हैं । और ईसा ने साक्षी दी है कि इस का एक विन्दु भी झूठ नहीं है ।

इसलिये और भी एक प्रमाण देता हूं कि आजकल मोक्षमूलर (व्याख्याता) अपने ग्रन्थों में लिखते हैं कि ऋग्वेद से पहले की कोई भी पुस्तक संसार में नहीं है । अब मैं सैकड़ों साक्षियां दे सकता हूं कि बाइबिल इन-इण्डिया के बनाने वाले इत्यादि और आजकल के सैकड़ों विचारकों की वाणी से मैंने सुना है कि बाइबिल वा इञ्जील को नहीं मानते । और कर्नल अल्काट इत्यादि ने भी बाइबिल की शिक्षा को सर्वथा त्याग दिया है । और हमारे आर्य लोग–एफ०ए०, बी०ए०, एम०ए०, एल०डी०, लाखों लोग बाइबिल को सर्वथा नहीं मानते और वे सभी सुशिक्षित हैं । अस्तु, पादरी साहेब का यह कथन पर्याप्त नहीं है। परमेश्वर का पुनर्जन्म नहीं होता। क्योंकि वह अनन्त और सर्वव्यापक है । वह शरीर में नहीं आ सकता । वह तो नित्य मुक्त है। बन्धन का काम कभी नहीं करता । **–हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी स्काट साहेब–

पण्डित जी का पक्ष, बालक के उदाहरण से कि वह किसी बात को याद नहीं रखता, जो कि बचपन में हुई हो, मिथ्या सिद्ध होता है । इसलिये कि बच्चे कुछ न कुछ तो याद रख ही लेते हैं । और फिर यह भी प्रश्न होता है कि जब हमारे आत्मा अनादि काल से हैं, तब तो हम भी बच्चे की

अपेइक्षा से कुछ बढ़ गये हैं । हमें कुछ न कुछ तो वृत्तान्त ज्ञात होने ही चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता । इस युक्ति पर विचार कीजिये ।

यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि हम अनादिकाल से चले आ रहे हैं। और जन्म ग्रहण करके यदि सब बातें भूल गये हैं, तब तो जन्म धारण करने का दण्डग्रहण करने का भी कुछ अर्थ न निकला । और नींद का जो वर्णन किया गया, सो इस उत्तर से सिद्ध होता है कि नींद की बात भी याद रहती है । कतिपय तो नींद के समय बड़े उत्तमोत्तम विचार प्रकट करते हैं। यहां पर मैं एक पुष्ट प्रश्न और करना चाहता हूं । वह यह कि इस शिक्षा से संसार में पाप को प्रोत्साहन प्राप्त होता है । क्योंकि लोग कहते हैं कि जो चाहें सो करें, भोगेंगे तो फिर कभी किसी अन्य योनि में ही । अच्छा जन्म भी कभी होगा । यह भी कहते हैं कि यह परम्परा सदैव चलती रहेगी । क्या करें, हम मानते हैं कि संसार में जो दुःख हैं, उन का कोई न कोई कारण अवश्य है । कभी बुरों को दण्ड के लिए और कभी अच्छों को कि उनको अनेक प्रकार की शिक्षा मिलती है ।

कहानी है बादशाह का लड़का था । पण्डित के पास पढ़ने के लिए भेजा गया । पण्डित ने उस को सब प्रकार से सुशिक्षित करके योग्य बनाया। फिर बादशाह के पास लाया । और उस से कहा कि केवल एक ही काम बाकी है । उस ने पूछा कि इस ने कोई अपराध किया । कहा कि नहीं । तब कहा कि मुझे चाबुक देना । और खुद सवार होकर लड़के से कहा कि दौड़ो और उस को खूब मारता गया । फिर बादशाह के पास ले आया । बादशाह ने कहा कि ऐसा क्यों किया ? पण्डित ने कहा इसलिए कि दूसरों पर दया करना सीखे और दयालु व कृपालु बन जाये । सो यह सम्भावना है कि अच्छे मनुष्यों को भी कष्ट भोगना पड़े, किसी अच्छे उद्देश्य के लिये । यह कुछ आवश्यक नहीं है कि पुराने जन्म के कारण से । डारविन साहेब पुनर्जन्म को नहीं मानते । वे केवल यही कहते हैं कि संसार में विकास क्रम से नीची योनियों के प्राणी ऊंची योनियों को प्राप्त हो गये हैं । उन का यह अभिप्राय नहीं है कि कोई प्राणी जो अब है, वह पहले भी था । कर्नल अल्काट साहेब की जो चर्चा चली है, सो उसका जो पक्ष है, वह सुन लीजिये । तब मालूम होगा कि वे कैसे आदमी हैं ? **–हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी–

लड़के के उदाहरण से मेरा यह अभिप्राय है कि वह जो कुछ सुख-दुःख भोगता है, उसकी स्मृति उसे स्वयमेव नहीं होती, कहीं किसी के कहने से होती है । और जीव का स्वाभाविक गुण एक सा रहता है । परन्तु नैमित्तिक

गुण घटते-बढ़ते रहते हैं । इसलिये जीव एक से हैं परन्तु उसके ज्ञान की सामग्री पांच वर्ष के पश्चात् बढ़ जाती है । अब यदि पादरी साहेब को या मुझ को कोई पूछे कि दस वर्ष के पहले किसी से एक दिन भर बातचीत क्या की । क्या वह सम्पूर्ण पदों और अक्षरों सहित याद है ? तो यही कहना पड़ेगा कि ठीक-ठीक याद नहीं है । जब सदा से जीव नहीं आते तो फिर कहां से हुए ? जेलखाने के कैदियों को यद्यपि सब लोग ठीक-ठीक नहीं जानते तथापि अनुमान करते हैं कि किसी अपराध के करने से जेलखाने में पड़े हैं । इस से हम कभी भी अपराध न करें । अन्यथा हमारा भी यही हाल होगा । पादरी साहेब मेरे अभिप्राय को नहीं समझे । वह स्वप्न की बात नहीं, सुषुप्ति की बात है कि जिस नींद में कुछ भी स्मरण नहीं रहता । बस नींद में कोई एक भी विचार कोई भी स्मरण नहीं रख सकता । जो पुनर्जन्म को नहीं मानते, उनकी शिक्षा से संसार में पापों की वृद्धि होती है । क्योंकि फिर आगे जन्म लेने की बात तो वे मानते ही नहीं हैं । जो मन में आवे, वही करते हैं और मरने पर व्यर्थ ही हवालाती के समान पड़े रहते हैं । आज मरे! कयामत तक हवालात में रहे । कचहरी के द्वार बन्द हैं, और खुदा बेकार बैठा है । जो दोजख में गया, वह वहां का हो गया । जो जन्नत में गया वह वहां का हो गया । और कर्म तो ससीम किये जाते हैं परन्तु उस का फल असीम प्राप्त होता है । इस प्रकार ईश्वर बड़ा अन्यायी ठहरता है । और आशावादिता के विना मनुष्य सुधर नहीं सकते । केवल रंज में दुःख का कारण क्या है ? और यदि शिक्षण के लिए उसको कष्ट दिया जाता है, वह सुधार के लिए है परन्तु उस का फल तो विद्या आदि हैं । और पादरी साहब ने कहा था कि एक स्थान में सदैव सुख-दुःख भोगेंगे, वह स्थान कौन सा है ।

–हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी

पादरी टी०जी० स्काट साहेब–

कर्नल अल्काट साहेब का एक कागज मेरे पास है कि जिस में ईसाइयों की, और पादरियों की, ईसाई दीन की व्यर्थ ही कठोर भाषा में बहुत बुराई लिखी है । वह इतनी अधिक कठोर है कि मैं किसी बाजारी व बदमाश के लिए भी न बकता । कहते हैं कि ये कठोर और निर्दयी हैं । यह ईसाई दीन संसार में सारी बुराई और खराबी की जड़ है । इस के अतिरिक्त और भी कई प्रकार से कठोर भाषा का प्रयोग किया गया है । जरा विचार कीजिये कि इस व्यक्ति का हृदय और उस की बुद्धि किस प्रकार की होगी ।

यह बात सिद्ध नहीं होती कि वेद तौरेत की अपेक्षा अधिक पुराना है।

इसी वास्ते कि तौरेत में यज्ञ का वर्णन है और हम दावे से कह सकते हैं कि सर्वप्रथम तौरेत में ही यज्ञ का वर्णन हुआ और वेद वालों ने वहां से ले लिया। दोनों बातों का दोनों में ही वर्णन है। निश्चय से कोई नहीं कह सकता कि किस ने किस से ले लिया। और यह कहना कि कुछ गुण स्थायी हैं और कुछ अस्थायी, इसलिए इस जन्म की बातें हमें याद नहीं रहतीं। कुछ गुण तो स्थायी हैं ही। अतः यह अवश्य ही होना चाहिये कि पिछले जन्म की कोई बात तो याद हो। यदि हमारी और पण्डित जी की बातचीत इस वर्ष कहीं हुई हो तो कुछ बातें तो अवश्य ही याद रहती हैं।

निद्रा का उदाहरण ठीक नहीं है, क्योंकि कभी-कभी नींद में बात याद नहीं रहती और कभी-कभी याद रहती भी है। जेलखाने का उदाहरण भी पूरा ठीक नहीं है। क्योंकि इस में दण्ड का केवल एक ही अभिप्राय प्रकट होता है। दण्ड के दो अभिप्राय हैं। एक तो दण्डित व्यक्ति का सुधार और दूसरे देखने वालों को शिक्षा। परन्तु इस पुनर्जन्म में तो केवल देखने वालों को शिक्षा की ही कुछ व्यवस्था मानी जा सकती है। यह नहीं कि उसे यह दण्ड क्यों मिला है ?

रहा यह प्रश्न कि आत्माएँ (रूहें) कहां से आईं ? शिक्षित जातियों में आज कल यह सिद्धान्त है कि जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज उत्पन्न होते हैं, और कोई भी यह नहीं कहता कि पहले वृक्ष हुआ, अथवा पहले बीज हुआ है। इसी प्रकार रूह से शरीर और शरीर से रूह उत्पन्न होते हैं। तथापि यह बात हमारे लिए बुद्धिगम्य नहीं है कि ऐसा किस प्रकार होता है ? परन्तु ऐसा नहीं है कि जो रूह अब मौजूद है, वह पहले किसी अन्य शरीर में थी। वह अभी पैदा हुई है और जब यहां से जावेगी तो उस का यथोचित न्याय होगा। कर्मानुसार। इससे परमेश्वर अन्यायी नहीं है, अपितु इस से भी परेमश्वर का न्याय सिद्ध होता है। यह कहना कि रूह सदा कहां रहती है ? हम यह नहीं कहते कि हम परोक्ष की बातें जानने वाले हैं कि सुख वा दुःख के स्थान बतायें। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। वह रूह को सभी स्थानों पर सुख अथवा दुःख दे सकता है। हमारा जानना या न जानना क्या हुआ !

—हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—

जो कर्नल अल्काट साहेब के विषय में पादरी साहेब ने कहा कि वह अच्छा मनुष्य नहीं है, सो मैं ठीक नहीं मान सकता। क्योंकि जिन का जिन से विरोध होता है, वे उनके विषय में उलटा सूधा कहा ही करते हैं। वेद

तौरेत की अपेक्षा बहुत पुराना है । और जिसकी बात पूरी से अधूरी दूसरी में लिखी हो तो दूसरी ही पुस्तक बाद की होती है । बालकपन में नैमित्तिक गुण-कर्म थे और स्वाभाविक गुण एक से हर समय रहते हैं । इस बात को पादरी साहेब ठीक-ठीक नहीं समझे । जो कि आग के संयोग से जल में उष्णता आती है, वह नैमित्तिक और जो आग में उष्णता आती वा दाहकता है, वह स्वाभाविक है । जो-जो जीव के स्वाभाविक गुण हैं, वे न्यूनाधिक कभी नहीं होते ।

और पादरी साहेब ने कहा कि जेलखाने के कैदियों को देखकर देखने वालों को भय होता है कि मैं ऐसा कर्म न करूँ परन्तु जिस को दण्ड पूर्व-जन्म के कर्मों का मिलता है, उस को याद ही नहीं । जैसे और लोग कार्य-कारण को जानते हैं, क्या वे न जानेंगे कि दण्ड अवश्य ही कर्मों का होता है ।

एक वैद्य को ज्वर आया और एक मूढ़-गंवार को भी । वैद्य ने अपनी विद्या के प्रभाव से ज्वर के कारण को जान लिया कि अमुक कारण है परन्तु उस गंवार ने न जाना । फिर भी ज्वर का कष्ट तो दोनों ही अनुभव करते हैं । फिर भी गंवार इतना अवश्य जानता है कि कोई न कोई बदपरहेजी हुई है और इसीलिये यह ज्वर आया है । इस से उसे दण्ड द्वारा सुधारने का फल प्राप्त होता है कि जो मैं बुरा काम करूँगा तो बुरा फल जैसा कि उस को है, मुझे भी प्राप्त होगा ।

जब जीव से शरीर और शरीर से जीव पैदा होते हैं तो आप का बनाने वाला परमेश्वर नहीं । इस से आपका कथन ठीक नहीं रहा । और आप के कथनानुसार जो जीव प्रथम-प्रथम उत्पन्न हुए, वे किन शरीरों से हुए ? जो कहें परमेश्वर भी आदमी, घोड़े और वृक्ष तथा पत्थर के समान हुआ । क्योंकि जिसका कार्य जैसा होता है, उस का कारण भी वैसा ही होता है । और जीवों को मध्य में हवालातियों के समान दौरा सुपुर्द करना-बहुत दिन तक कि जो दण्ड से भी भारी है, फिर उस को स्वर्ग मान के किन कर्मों से मिल सकता है ? कोई भी नहीं । जब आप सर्वज्ञ नहीं हैं तो फिर ऐसा क्यों कहते हैं कि पुनर्जन्म नहीं होता । इस से आप का एक जन्म सिद्ध नहीं हुआ और पुनर्जन्म सिद्ध हो गया । **-हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी**

विषय-ईश्वर देह धारण करता है

तारीख २६ अगस्त, सन् १८७९

पादरी टी०जी० स्काट साहेब-

आज का सवाल यह है कि **परमेश्वर देह धारण करता है,** अर्थात्

साकार हो सकता है या नहीं । उचित यह है कि इस विषय में अत्यन्त सावधानी से और गम्भीरता पूर्वक विचार विमर्श और प्रश्नोत्तर किया जावे। जब उस सर्वेश्वर के विषय में वार्तालाप हो तो मनुष्य को चाहिये कि बहुत सोच समझ कर गम्भीरता के साथ बोले । इस विषय में अहंकार और अभिमान की कुछ भी गुञ्जाइश नहीं है । किसी को भी ऐसा घमण्ड नहीं करना चाहिये कि हम ईश्वर के विषय में सब कुछ जानते हैं । कवि का कथन है—

अर्श से ले फर्श तक, जिस का कि यह सामान है ।
हिम्द् उस की गर लिखा, चाहूं तो क्या अमकान है ।।*
जब पैगम्बर ने कहा हो, मैंने पहिचाना नहीं ।
फिर कोई दावा करे, उसका बड़ा नादान है ।।

विचार कीजिये कि ईश्वर की अनादिता के विषय में क्या हम जानते हैं ? सो इसी प्रकार हम सर्वशक्तिमान् के विषय में क्या जानते हैं? वह सर्वव्यापक अर्थात् प्रत्येक स्थान पर मौजूद है, उस के विषय में हम क्या जानते हैं ? हां, इन शब्दों के कुछ-कुछ अर्थ हम जानते हैं । परन्तु यह कथन तो मूर्खों का ही है कि ईश्वर के विषय में हम सब कुछ जानते हैं । आज के वार्तालाप में दो प्रश्न ये हैं कि—**क्या ईश्वर देह धारण कर सकता है?** दूसरे यह कि ऐसा कभी हुआ है कि नहीं ? विशेष रूप से पहली बात का ही विचार इस समय है । पहले प्रश्न का भाव यह है कि क्या यह सम्भव है कि ईश्वर अपने आप को कभी सदेह रूप में प्रकट करे ? ध्यान दीजिये। यह भाव कदापि नहीं है कि ईश्वर सदेह बन जाये । प्रथम पक्ष यह है कि देह धारण करने की सम्भावना है । आत्मा और परमात्मा (इन्सानी रूप और इलाही रूप) बहुत-सी बातों में समान हैं । अपितु यह कहना चाहिये कि दोनों की एक ही जाति है, क्योंकि ईश्वर की वाणी में लिखा है कि—'खुदा ने इन्सान को अपनी सूरत पर बनाया ।' यह नहीं कि शारीरिक रूप में अपने जैसा बनाया, अपितु भाव यह है कि आध्यात्मिक रूप में । अर्थात् बहुत से गुण-कर्म और स्वभाव, जो ईश्वर में हैं, वे ही मनुष्य में भी हैं । अर्थात् दया, न्याय तथा और भी अनेक प्रकार की धार्मिक विशेषताएँ । इस कारण ईश्वर के साथ मनुष्य मेल कर सकता है । ऐसी अवस्था में हम लोग जो कि स्वयं सशरीर हैं, क्यों अहंकार करें कि ईश्वर साकार न हो । यदि उसकी इच्छा

*** आकाश से लेकर पृथ्वी पर्यन्त यह नाना प्रकार का जड़-जंगमस्वरूप संसार, जिस का है, मैं यदि उस की महिमा का गान करना भी चाहूं तो कैसे करूँ । उस के गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ तो अनन्त हैं । और मेरी सामर्थ्य बहुत ही अल्प है । —अनुवादक**

हो कि वह सदेह रूप में प्रकट हो तो क्या बाधा है ।

–हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी–

जो पादरी साहेब ने कहा–उस की परीक्षा हम नहीं कर सकते । इस पर सवाल यह है कि सर्वथा नहीं कर सकते या कुछ-कुछ कर सकते हैं। वैसे सर्वव्यापक के विषय में कुछ जानते हैं या नहीं ? और जो कुछ जानते हैं तो कितना ? जो किसी का कहना हो कि मैं ईश्वर को जानता हूं तो वह मूर्ख है और जो यह पादरी साहेब का कहना है तो कुछ उस के जानने में वश नहीं रहा । और पादरी साहेब अपने पहले कथन के विरुद्ध बोले हैं। वह यह है कि ईश्वर देह धारण करता है । कर सकता है या नहीं ऐसा नहीं। लेकिन देह धारण करता है ।

यहां प्रश्न होता है कि उस को क्या आवश्यकता देह धारण करने की है ? दूसरे उस की इच्छा में कोई बन्धन है या नहीं ? तीसरे, वह निराकार है या साकार ? चौथे, वह सर्वव्यापक है या एकदेशी ?

जीव और ईश्वर के गुण दया आदि क्या ठीक-ठीक मिलते हैं या नहीं? बहुत से जीवों में भी दया देखने में आती है ।

प्रश्न–वे दोनों एक हैं तो दोनों ही खुदा हैं । इस का क्या उत्तर है? आध्यात्मिक पक्ष में जो परमेश्वर देहधारी होता है, तब वह सम्पूर्ण ही देह में आ जाता है या टुकड़े-टुकड़े होकर आता है ? यदि टुकड़े होकर आता है तो नाश वाला हुआ । और जो वह सम्पूर्ण आ जाता है तो शरीर से छोटा हुआ । फिर तो ईश्वर ही नहीं हो सकता ।

जीव तथा ईश्वर में कुछ भी भेद नहीं आ सकता । और यदि वह एकदेशी है तो एक स्थान पर रहता है या घूमता फिरता है । यदि कहो कि एक स्थान पर रहता है तो उस को सब स्थानों की खबर रहना असम्भव है । और जो घूमता फिरता है तो कहीं अटक भी जाता होगा, और धक्का और शस्त्र भी लगता होगा । जब परमेश्वर सृष्टि करता है, तब निराकार स्वरूप से या साकार से ? जो कहो निराकार स्वरूप से तो ठीक है । और जो कहो कि देहधारी होकर तो उसका सृष्टि रचना सर्वथा असम्भव है, क्योंकि त्रसरेणु आदि पदार्थ सृष्टि का कारण रूप, उस के वश में कभी नहीं आ सकते हैं ।

–हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी

पादरी टी०जी० स्काट साहेब–

हम नहीं कहते हैं कि ईश्वर को सर्वथा जान ही नहीं सकते । लेकिन तो भी बहुत बातें हैं, जो हम सर्वथा नहीं जान सकते । सर्वव्यापक के विषय

में यह सिद्धान्त है कि वह ऐसा है, परन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि इस का पूर्ण अभिप्राय हम को मालूम है । यह तो कह सकते हैं कि ईश्वर ने देह धारण किया परन्तु उस का अपने आप का देह में धारण करना एक रहस्य है । अपितु हमारे आत्मा का विषय भी शरीर के साथ रहस्यमय है। रहा यह प्रश्न कि ईश्वर की इच्छा में बन्धन है या नहीं । पण्डित जी इस बात को कुछ और स्पष्ट करने की कृपा करें। मैं कहता हूं कि परमात्मा अर्थात् खुदा की रूह और इन्सान की रूह सर्वथा एक जैसी ही नहीं हैं । एक ससीम है और दूसरी असीम । इसलिए दो खुदा नहीं हैं । इन में एक रचने वाला है और दूसरा रचा गया है । परन्तु ईश्वर की इच्छा हुई और उसने इन्सान को अपने जैसा ही बनाया है ।

रहा यह प्रश्न कि ईश्वर सम्पूर्ण देह में आ जाता है, हां आ जाता है। मगर तो भी बाहर भी रहा । वह सर्वव्यापक है तो उस देह के अन्दर क्यों नहीं है ? हम यह नहीं कहते कि केवल शरीर में ही है, और कहीं नहीं है । विचार कीजिये कि इस कमरे के अन्दर वह सर्वशक्तिमान् इस समय मौजूद है । वह अनादि परमेश्वर इस समय मौजूद है । अर्थात् ईश्वर अपने सब गुणों सहित इस समय इस कमरे में मौजूद है । इस बात से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता तो इस में क्या कठिनाई है ? यदि उस की इच्छा यूं ही हुई कि अपने आप को एक शरीर में प्रकट करे । यह असम्भव नहीं है । उस की इच्छा है । जब भी आवश्यकता हो। अपनी लाचारी से नहीं करता; अपितु हम लोगों के लिये, क्योंकि हमारी बुद्धि यदि बहकाना जानती है तो आगे चलकर हम देख लेंगे कि कोई उचित कारण है अथवा नहीं कि परमेश्वर देह धारण करे । यदि कोई कहे कि देह धारण करना, उस की महिमा के विरुद्ध है तो यह भ्रान्तिपूर्ण है । यह किस बात में उस की महिमा के प्रतिकूल है ? देह में कुछ त्रुटि है या कुछ अपवित्र है ? अथवा कोई अशुद्ध वस्तु है कि ईश्वर उस से घृणा करे । देह को किस ने बनाया है? क्या वह अब सर्वव्यापक नहीं है ? अर्थात् क्या वह अब भी प्रत्येक देह में वर्तमान नहीं है ? **–हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी–

पादरी साहेब ने मेरे प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिये । जब वह सर्वव्यापक है तो एक देह में आना या एक देह से निकलना सर्वथा असम्भव है । ईश्वर ने देह धारण किया, इस की क्या आवश्यकता है, यह मैंने पूछा था । इसका कुछ उत्तर नहीं दिया और इस का भी कुछ जवाब नहीं दिया कि ईश्वर और जीव आध्यात्मिक रूप में सर्वथा समान हैं अथवा उन में भिन्नता

है । पादरी साहेब पहले कह चुके हैं कि इन्सान की देह अपने शरीर में बनाई। इस के विरुद्ध पीछे कहा कि वे पृथक्-पृथक् हैं, एक नहीं । मुझ से पूछा कि पण्डित जी इस का स्पष्टीकरण करें । मैं पादरी साहेब के अभिप्राय का स्पष्टीकरण क्यों करूँ ? यह तो वे ही स्वयं बतावें । यह मैं भी जानता हूं कि ईश्वर सर्वव्यापक है। इस कारण से वह अवतार धारण नहीं कर सकता क्योंकि क्या पहले वह उस में न था ? या उस में एक था ? अब दूसरा, तीसरा । इस से उस में हजारों घुस गये ? जब वह असीम था तो ससीम शरीर में देह धारण करना सर्वथा झूठ । और जो पादरी साहेब ने कहा कि उस ने मनुष्य की रूह अपने स्वरूप में बनाई तो मैं पूछता हूं कि बन्दर किस के स्वरूप में बनाये ? क्या बन्दरों का खुदा कोई दूसरा है ? इस प्रकार से तो हाथी, घोड़े आदि सब के ही खुदा जुदा-जुदा हो जायेंगे ।

जब सर्वव्यापक है तो उस ने देह धारण नहीं किया । अपितु उस ने तो संसार का अणु-अणु धारण कर रखा है । पादरी साहेब का यह कहना कि वह देह धारण करता है सर्वथा मिथ्या प्रमाणित हो जाता है । क्या वह पहले धारण नहीं करता था ? क्या सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपनी इच्छा से देह धारण करता है ? यदि हां, तो मैं पूछता हूं कि वह अपनी इच्छा से देह छोड़ भी देता होगा, क्योंकि जो कोई पकड़ेगा, वह कभी न कभी अवश्य ही छोड़ेगा। और वह कभी अपने आपको मारने की भी शक्ति रखता है वा नहीं ? तब तो वह आप के कथनानुसार सर्वशक्तिमान् भी न रहेगा । जैसे अविद्या आदि और अन्याय करने आदि का उस का स्वभाव ही नहीं है, सो यह ही उस के जन्म और मरण में भी प्रतिबन्धक है । क्योंकि वह अपने स्वभाव के विरुद्ध कोई कार्य चरितार्थ नहीं कर सकता ।

—हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी

पादरी टी०जी० स्काट साहेब—

मेरा प्रश्न यह ही है कि क्या पण्डित जी का यह अभिप्राय है कि अब परमेश्वर देहधारी है ? क्योंकि उन की युक्ति से प्रतीत होता है । वह यह दावा करते हैं कि परमेश्वर अब देह में है । अब जो ये सूरतें सब दृष्टिगोचर होती हैं, सब उस का देह ही हैं । यदि ऐसा है, तब तो मेरा दावा सिद्ध ही हो गया । अब उस में बाकी ही क्या रहा ? देह धारण करने का क्या अर्थ है ? इस वार्तालाप में मैंने जो देह, पशु, पत्थर इत्यादि हैं, अनादि काल से हैं । परमेश्वर सर्वव्यापक तो है परन्तु इस का यह अर्थ नहीं है कि इस प्रकार से देहधारी है । जैसे जब कोई कहे कि अमुक व्यक्ति परमेश्वर का अवतार है तो पण्डित जी इस में झगड़ा क्यों करते हैं ? देह धारण करने का अर्थ

कौन नहीं जानता ? और यह कहना कि इस विशेष अर्थ में ईश्वर के देहधारी होकर आने जाने का कुछ कथन नहीं है । अपितु केवल यही अर्थ है वह हमारे लिये शरीर में प्रकट हुआ । जब वह शरीर लुप्त हो जाता है, तब भी ईश्वर वहां वर्त्तमान रहता है । परन्तु वह ईश्वर की आत्मा उस समय भी उस शरीर में हैवानी आत्मा नहीं है । अभी रूह इस शरीर में प्रकट हुई। यह कोई आने या जाने का मामला ही नहीं है । मैंने साफ-साफ कहा है कि जो मनुष्य का आत्मा ईश्वर के आत्मा के समान है परन्तु है सर्वथा भिन्न। बन्दर की स्थिति और है । उस की चर्चा करने की यहां क्या आवश्यकता है ? रहा यह प्रश्न कि ईश्वर ने बन्दर को किसके स्वरूप पर बनाया । सो जैसी उस की इच्छा हुई, वैसा उस ने बनाया अर्थात् बन्दर की सूरत और गीदड़ की सूरत और बैल की सूरत और इन्सान को अपनी सूरत में । तब इस में आक्षेप की क्या बात है ?

अब यहां यह प्रश्न है कि ईश्वर ने क्यों देह धारण की ? इस का उत्तर देता हूं । इस की सम्भावना का होना तो कुछ असम्भव नहीं है । मकान के उदाहरण को स्मरण कीजिए और यह भी कि देह धारण करने का अर्थ यह है कि परमात्मा को एक देह में प्रकट करना । यदि इस घटना अथवा गति को आप समझ गये तो समझिये । हम डरते नहीं कि यह कहने लगें कि ईश्वर के गुण तो गति करते ही नहीं हैं तो क्या वह जड़ पत्थर है ? अथवा निर्गुण है ? उनका आना जाना कुछ न हुआ । जीना मरना कुछ न हुआ । केवल मनुष्य की अल्प सामर्थ्य के कारण अवतार होना अर्थात् देह धारण करना । देह धारण करने में लाभ यह है कि मनुष्य के लिए किसी पूर्ण गुरु, पथ-प्रदर्शक और आदर्श की जरूरत है । जब गुरु पूर्ण और आदर्श भी सर्वथा दोष रहित हो, तभी मनुष्य उन्नति करता है । अन्यथा जैसी चाहिए, वैसी उन्नति नहीं करता, क्योंकि उन्नति का साधन वा माध्यम अच्छा नहीं होता । **—हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—

जो पादरी साहेब ने कहा कि पण्डित जी के दावे ने मेरे दावे को साबित किया । यह गलत है क्योंकि देह धारण करता है, इस का अर्थ यह है कि पहले वह देह में नहीं था । इस कथन ने तो पादरी साहेब के दावे को ही खारिज किया है न कि साबित ।

जो कि सर्वव्यापक है वह देह धारण करता है या करे या छोड़े, यह कहना सर्वथा असम्भव है । और जब वह सर्वव्यापक है, तब देह धारण करने को कहां से आया ? क्या ऊपर या नीचे से अथवा बाहिर या बगल से । जो कहें कि किसी तरफ से आया तो फिर तो वह सर्वव्यापक न हुआ।

और जो कहें कि सर्वव्यापक है तो कहीं से आना साबित नहीं हो सकता। जाहिर होने में मैं पादरी साहेब से पूछता हूं कि क्या पहले गुम था कि आंख से नहीं दीखा । जाहिर होने में दीख पड़ा । क्या रूह आंख से देखने का विषय है ? जो कहें नहीं तो फिर जाहिर होने का क्या अर्थ है ? जैसे सांप बिल में से निकल कर जाहिर होकर फिर गुम हो जावे ?

वैसे ही मैंने पूछा था कि बन्दर को किस की सूरत में बनाया ? उसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया । क्या बन्दर और आदमी आदि का बनाने वाला एक ही खुदा है, अथवा दो जुदा-जुदा हैं ?

जब उस के देह धारण करने में पादरी साहेब कुछ विशेष मामला नहीं दिखला सकते तो बस, पादरी साहेब का तो मामला ही खारिज हो गया । जो पादरी साहेब ने कहा कि परमेश्वर के गुण गति करते हैं, यह सर्वथा झूठी बात है क्योंकि वह गुण है, द्रव्य नहीं । गतिशील द्रव्य होता है, गुण नहीं ।

जो पादरी साहेब कहें कि देह धारण करना जरूर है, तब तो उसकी जरूरत की बात भी ठीक-ठीक अवश्य ही बतलावें । और जो यह कहा कि मनुष्य की उन्नति के लिए देह धारण करता है, तब तो पहले कहे हुए सभी दोष पादरी साहेब के कथन में आते हैं और मैं पूछता हूं कि वह सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक क्या अपनी सामर्थ्य से जीवों की उन्नति नहीं करा सकता ? जो कहें कि करा सकता है तो देहधारण करना व्यर्थ हुआ । जो कहें कि करा नहीं सकता तो सर्वशक्तिमान् नहीं रहा । और जो मैंने दोष दिये थे कि पादरी साहेब के कथनानुसार देह धारण करने पर तो परमाणु आदि को अपनी पकड़ में लाने का सामर्थ्य ही उस में नहीं हो सकता । इतने दोष मौजूद रहे । **-हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी टी०जी० स्काट साहेब-

प्रत्येक बात में यह कहना कि यह झूठ है । सो शिष्टाचार के कुछ प्रतिकूल प्रतीत होता है क्योंकि झूठ बेईमानी और फरेब है । और भी बहुत सी मिथ्या बातें हैं, जिन को कि झूठ कहना जरा शिष्टाचार विरुद्ध प्रतीत होता है । ईश्वर तो बन्दर की देह में सर्वव्यापक के रूप में है । परन्तु कोई उस को गीदड़ बता दे, वैसे ही कोई उसको बन्दर बता दे । परन्तु हां अद्वैतवादी ही कहेंगे परन्तु पण्डित जी तो द्वैतवादी हैं । यह मैं पूछता हूं पण्डित जी से कि परमेश्वर के अतिरिक्त और भी कोई पदार्थ है वा नहीं ? संसार में नहीं, परन्तु जब ईश्वर का कोई खास अवतार हो तो उस देह में वह सर्वव्यापक है । परमेश्वर के सिवा और कोई जीव उस में नहीं । उस को अवतार कहते हैं । कुछ आने जाने का यह मामला नहीं है । कोई स्याही ऐसी होती है

कि जब उस से लिखते हैं तो कुछ नजर नहीं आता । परन्तु वह लिखाई मौजूद होती है या नहीं । स्याही मौजूद है, अक्षर मौजूद हैं, उन को जरा आग के सामने दिखाओ तो कुल लिखाई नजर आती है। पहले भी मौजूद तो थी परन्तु नजर नहीं आती थी । इसी प्रकार परमेश्वर का नजर न आना, कुछ आने जाने का मामला नहीं है । उस ने अपने आप को केवल हमारी कमजोरी के वास्ते इस शरीर में प्रकट किया है । वह कहीं गुम नहीं था । कहीं से आया नहीं । फिर इस विषय में मैं यह कथन करूँगा कि गुण का गति करना, यह है कि वह कार्य का रूप धारण करे उपयोग में आवे । जैसे कि प्रेम और दया का रखना और न्याय करना ।

और यह कहना कि देह धारण करने से परमेश्वर की लाचारी मालूम होती है, भ्रान्तिपूर्ण है । पण्डित जी का सिद्धान्त है कि जन्म लेने से मनुष्य सुधर जाता है तो इस में भी परमेश्वर लाचार है या उस की इच्छा है । यदि वह सर्वशक्तिमान् है, तब तो ऐसा नहीं कहना चाहिए कि लाचार है, पण्डित जी के कथनानुसार । और यदि उस की इच्छा है तो अपनी इच्छा से वह जानता है कि मनुष्य के विषय में कौन सा उपाय उत्तम है परन्तु कुछ-कुछ बातों के विषय में हम मानते हैं कि परमेश्वर लाचार है ।

ध्यान दीजिए—यदि वह सर्वशक्तिमान् है तो एकदम ही रूह को पवित्र क्यों नहीं कर देता ? क्यों मनुष्यों को अनेक प्रकार के दुःख देता है । विचार करना चाहिए कि मनुष्य कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्र है । और खुदा उस के विषय में बलात्कार नहीं करता है । खुदा चाहता तो है कि वह सुधर जावे परन्तु उस का सुधारना केवल खुदा के वश में नहीं है । खुदा ने इन्सान को ऐसा ही बनाया है और कर्म करने में स्वतन्त्र होना यह मनुष्य के महत्त्व का सूचक है । तो इस से वह अपनी बहुत बड़ी हानि भी कर सकता है । ईश्वर ने उचित यही समझा कि मनुष्य को सुधारने के लिए पूर्ण आदर्श नमूने के तौर पर उस को दिखावे । खुदा के गुम होने से नहीं, अपितु इन्सान के गुम होने से । और बातों को छोड़कर आगे चलकर अधिक निवेदन करूँगा ।

—हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—

जो पादरी साहेब ने शिष्टाचार के विषय में कहा, सो ठीक है परन्तु **सत्य के कहने में अशिष्टता कभी नहीं हो सकती ।** अशिष्टता तो झूठ के कहने में होती है । और जो पादरी साहेब ने मुझे द्वैतवादी बताया, सो ठीक नहीं है। मैं अद्वैतवादी हूं, क्योंकि मैं ईश्वर को एक मानता हूं । जो पादरी साहेब ने कहा कि बन्दर और गीदड़ आदि के शरीर में ईश्वर के सर्वव्यापक होने से

बन्दर और गीदड़ नहीं कहा जा सकता तो आदमी के शरीर में व्यापक होने से आदमी भी उसे नहीं कहना चाहिए । और कहा कि शरीर में ईश्वर ने अवतार लिया । उसमें दूसरा जीव नहीं था तो मैं पूछता हूं कि उस में पहले ईश्वर था कि नहीं ? जो कहें कि था तो उसका आना-जाना असम्भव है । और जो कहें कि नहीं था तो उसका सर्वव्यापक होना नहीं हो सकता ।

जो मैंने जाहिर होने के विषय में पूछा था, उसका ठीक-ठीक उत्तर पादरी साहेब ने नहीं दिया । गोलाकार कर गये । जो ईश्वर दृश्य नहीं तो उस को जाहिर होना कहना व्यर्थ है । और जो कहें कि दृश्य है तो सर्वव्यापक नहीं । और जो पादरी साहेब ने कहा कि हमारी कमजोरी के कारण वह अवतार लेता है तो हमारी कमजोरी के कारण ही क्या वह सर्वव्यापक हमारा काम नहीं कर सकता ? जो कहें कि नहीं कर सकता तो इस में क्या युक्ति है? और फिर वह सर्वशक्तिमान् भी नहीं रहता । और जो कहें कि कर सकता है तो जन्म धारण करना ही व्यर्थ हो जाता है ।

और जो कहा कि प्रीति का रखना, सो भी ठीक नहीं है । क्योंकि यहां प्रीति गुण और प्रीति करने वाला चेतन द्रव्य है । इसलिए पादरी साहेब का कहना ठीक नहीं है । परमेश्वर अपने स्वाभाविक गुण के अनुकूल काम करने में लाचार कभी नहीं है । परन्तु अवतार के धारण करने में तो लाचार ही मानना होगा । जैसे कि पादरी साहेब ने कहा कि वह आदमी को नहीं सुधार सकता । अब मैं पूछता हूं कि सर्वशक्तिमान् का क्या अर्थ है ? पादरी साहेब क्या चाहते हैं ? जैसे पादरी साहेब ने कहा कि कुछ बातों में लाचार है, वैसे ही अवतार लेने में भी लाचार है, क्योंकि सर्वव्यापक का आना-जाना प्रकट करना सर्वथा असम्भव है । जब वह दुःख-नाश नहीं करता तो पादरी साहेब के कहने से ही पादरी साहेब की बात कट जाती है । जो कि कहते हैं कि अवतार लेकर मनुष्यों का दुःख काटता है । और जो कहा कि दुःख क्यों देता है ? इस का उत्तर यह है कि वह न्यायाधीश है । जीवों के जैसे पाप-पुण्य होते हैं, वैसा ही उन का फल देना अवश्य है क्योंकि वह सच्चा न्यायकारी है । **—हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी टी०जी० स्काट साहेब—

द्वैतवादी वे होते हैं जो कि दो पदार्थ मानते हैं । एक तो ईश्वर और दूसरे ईश्वर से भिन्न यह कार्य जगत् । अद्वैतवादी वे होते हैं जो कि एक ही पदार्थ ईश्वर को मानते हैं और कुछ नहीं । सो ज्ञात नहीं कि पण्डित जी एक ही पदार्थ मानते हैं, वा दो । ईश्वर अनदेखा तो है परन्तु जब अपने

आप को प्रकट करना चाहता है तो प्रकट कर देता है । शारीरिक अर्थात् शरीर में तो आत्मा से हम आप के शरीर को देखते हैं, आत्मा को नहीं । परन्तु उस प्रकार से होने से ईश्वर का हाल बहुत अधिक जानते हैं । क्योंकि एक नमूना पवित्र और पूर्ण हमारी दृष्टि में होता है । इसलिए ईश्वर का अवतार होता है । ईश्वर ने देख लिया कि मनुष्य के लिए उचित यही है, इसलिए ऐसा ही हुआ और होता है ।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् तो है परन्तु तब भी इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई बात उस के वश से बाहर नहीं । वह अधर्माचरण नहीं कर सकता। झूठ नहीं बोल सकता । दो और दो को वह पांच नहीं मान सकता । इस से यह नहीं हो सकता कि एक वस्तु हो भी और न भी हो । अर्थात् एक अर्थ से उस की शक्ति की भी सीमा है ।

मैंने यह कहा कि यदि मनुष्य को रोग नहीं है तो ईश्वर उसे सुधार नहीं सकता । सुधार का सर्वोत्तम उपाय यही है कि देह धारण करे और एक पूर्ण आदर्श मनुष्य के सामने प्रस्तुत करे । मनुष्य तो आदर्श को चाहता ही है । संसार में सर्वश्रेष्ठ और पवित्र गुरु कोई नहीं है कि जिस ने कभी भी पापाचरण न किया हो । कोई गुरु ऐसा नहीं है जो सब बातों में पूर्ण हो । केवल ईश्वर ही देह धारण करके मनुष्य के सामने ऐसा नमूना पेश कर सकता है । जिस से ठीक-ठीक धर्म का मार्ग प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त हो सके और वह हर बात में नेकी और पुण्य को जान सके । यह बहुत रहस्य की बात है । कौन नहीं जानता कि मनुष्य अनुकरणप्रिय है । नमूने को देखकर उस के अनुसार कार्य करता है । पाठशालाओं और सेनाओं में देखो और घर में भी देखो, जब नमूना अच्छा है, गुरु पूर्ण है, तब उन्नति भी बहुत अच्छी होती है । क्या यह बात उत्तम और रहस्यमयी नहीं है कि ईश्वर देह धारण करके इन्सान के लिए एक पूर्ण और पर्याप्त नमूना दिखावे कि जिस में मनुष्य अपनी मोक्ष-प्राप्ति में समर्थ हो सके ?

ईश्वर की इच्छा यूं है और यही मेरा भी अभिप्राय है कि खुला करके कह देना कोई अच्छी बात नहीं है । उस में सावधानता होनी ही चाहिए । यदि ईश्वर ने अपनी इच्छा से ऐसा किया क्योंकि उस को यही उत्तम प्रतीत हुआ तो फिर हम इस के विरुद्ध क्यों बोलें ?

अब शब्द-प्रमाण को लीजिये । इञ्जील में लिखा है–'आरम्भ में शब्द था और शब्द खुदा के साथ था और शब्द खुदा था । और शब्द साकार हुआ।' अर्थात् वही खुदा शरीर धारण करके प्रकट हुआ, यही लिखा है। और जिस

किताब में यह लिखा है, ऐसी उत्तम किताब है । और वह अपना प्रमाण कि वह ईश्वर की ओर से है । और जो कुछ कि उस में लिखा है, वह बुद्धिपूर्वक, तर्कसंगत और प्रमाणयुक्त है । और यह कहा कि बहुत से लोग इस को झूठ समझकर छोड़ देते हैं, जैसा कि वेद को । क्योंकि वह सर्वथा मिथ्या है और उस के समर्थन में कोई भी युक्ति वा प्रमाण नहीं है ।

—हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—

अद्वैत विशेषण परमेश्वर का है, किसी दूसरे का नहीं । इस के कहने से यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर एक है । जीव अनेक हैं और जगत् का कारण अनेक प्रकार का है । और जो पादरी साहेब कहें कि ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा और कोई न था तो फिर जीव और यह जगत् कहां से आया ? जो कहें कि ईश्वर से तो जीव ईश्वर हुआ । जो कहें कि कारण से तो पादरी साहेब को भी कारण मानना पड़ेगा । और यदि जीव की उत्पत्ति मानी जाये, तब तो उस का नाश भी अवश्य ही मानना पड़ेगा । यह बात कई बार चली, परन्तु अभी तक ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया गया कि उस को देह धारण करने की आवश्यकता ही क्या है ? और इस के विना ही वह अपना काम क्यों नहीं कर सकता ? इस का कुछ जवाब नहीं हुआ । जब उस की शक्ति की सीमा है तो फिर ईश्वर की भी सीमा क्यों नहीं है ? जो कहें ईश्वर की भी सीमा है तो वह सर्वव्यापक नहीं । और यह बात पादरी साहेब के पहले कथन के भी विरुद्ध होगी । जब परमेश्वर की सब बातों को नहीं जानते तो फिर पादरी साहेब ने ऐसा क्यों कहा था कि ईश्वर अवतार लेता है । और वे अब इस बात में जिद क्यों करते हैं ? और जब अवतार लेने से पहले उसे कोई जान ही नहीं सकता तो उसी ने अवतार लिया यह कहना भी व्यर्थ ही है क्योंकि वही पुरुष या पादरी साहेब आज भी हैं, जो कि कल के शास्त्रार्थ में थे । जब कि अवतार होने से पहले कभी देखा या जाना ही नहीं तो फिर उसी ने अवतार लिया है, यह कहना भी तो अनुचित और अयुक्त ही है ।

क्या पादरी साहेब ने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, मनुष्य शरीर आदि भी तो ईश्वरीय शक्ति के ही नमूने हैं । और एक साढ़े तीन हाथ के शरीर में आकर, खा, पी, बढ़, घट कर मर जाना भी क्या कोई बड़ा नमूना है ।

और जो इञ्जील के लेख की बात कही कि वह शब्द अवतार हुआ। यह कथन सर्वथा मिथ्या है क्योंकि शब्द गुण होता है और वह द्रव्य कभी भी नहीं

हो सकता । ऐसी मिथ्या बात जिस इञ्जील में लिखी है, वह सत्य कभी नहीं हो सकती और नहीं कभी उत्तम हो सकती है । पादरी साहेब की इञ्जील में योहन्ना के स्वप्न के प्रकाशित वाक्य की कथा सर्वथा असम्भव है कि जो पोथी के एक बन्धने के खोलने पर उस में से एक सवार घोड़े सहित निकला । क्या ऐसा कभी हो सकता है ? ऐसी-ऐसी कई झूठ बातें हैं । क्या पादरी साहेब ने ही कभी भी नहीं देखी होंगी और फिर भी ऐसी किताब के सत्य होने का दावा करते हैं, सो जिद करने के सिवा और कुछ नहीं है ।

इसलिये पादरी साहेब और सब सज्जन पुरुषों को चाहिये कि सब-सर्वथा सत्य, ईश्वरकृत वेदों की शरण लेकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि अवश्य करें । **-हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी टी०जी० स्काट साहेब-

योहन्ना के विषय में 'मकाशफात की पुस्तक' में लिखा है । उस के विषय में यदि पण्डित जी की बुद्धि ऐसी ही है तो मैं क्या उत्तर दे सकता हूं ? ईश्वर ने अपनी सामर्थ्य से इस सम्पूर्ण सृष्टि को अभाव से भाव रूप में रचा है । उचित यही है कि वह जब भी चाहे इस का नाश कर दे । जब तक यह सृष्टि स्थिर है, तब तक ईश्वर इस में सर्वव्यापक नहीं है । वह तो इस से पृथक् है । और मैंने बार-बार यह कहा है कि उस ने जो अवतार लिया, इस का कारण था । सो आप फिर से पहले लेख को देख लीजिये ।

ईश्वर की शक्ति की सीमा यही है कि वह अपने विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता । हम दावा करते हैं कि हम सब के शरीर में भी उस का प्रकाश होता है । और सब कामों के लिये उस ने एक पूर्ण नमूना भी हमें दिया है । मनुष्य के लिए उस की महिमा चांद, सूर्य, सितारे से अधिक है।

शब्द का भाव यह है कि वह ईश्वर को प्रकाशित करने वाला हो। जैसे कि शब्द ही मनुष्य के अर्थ को भी प्रकट करता है । उसी प्रकार मसीह जैसे अवतार ईश्वर की महिमा और अर्थ को प्रकट करते हैं ।

अब देखिये कि लोग बाइबिल के विषय में कितने पुरुषार्थी और सावधान हैं । और इस पुस्तक को कैसी दृढ़ता के साथ पकड़े हुए हैं । पच्चीस सोसाइटियां हैं, जो कि इसकी छपाई में संलग्न हैं । दो सौ भाषाओं में इस के अनुवाद हो चुके हैं । उदाहरण के रूप में दो सोसाइटियों के कार्य को लें। एक वर्ष में इंगलिस्तान में एक ने बाईस लाख, छियानवे हजार, एक सौ, तीस प्रतियाँ छपवाईं । और बतलाइये । अमेरिका में एक सोसाइटी में सत्तर बड़ी-बड़ी मशीनें छापने के लिये हैं । चार सौ कार्यकर्त्ता हैं । उस में बीस

हजार पांच सौ प्रतियां एक ही दिन में तैयार की जाती हैं। कौन कह सकता है कि इस किताब को नहीं मानते। सो मैंने सिद्ध कर दिया कि ईश्वर की देह धारण करने की पूर्ण सम्भावना है। ऐसा होना बुद्धि से परे की बात नहीं; अपितु यह युक्तिसंगत और उचित है। उस का बहुत आवश्यक कारण भी मैंने बता दिया और इस पुस्तक का वचन सत्य प्रामाणिक होता है।

–हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब

विषय–ईश्वर पाप को क्षमा भी करता है

(ता० २७ अगस्त, सन् १८७९ ई०)

पादरी टी०जी० स्काट साहेब–

मेरा यह दावा नहीं है कि ईश्वर दण्ड नहीं देता। दण्ड भी वह अवश्य ही देता है। परन्तु मेरा निवेदन यह है कि वह समय-समय पर, जब भी और जैसा भी उस को उचित प्रतीत होता है, मनुष्य के कल्याण के लिए पाप को क्षमा कर सकता है। जब कोई ईश्वर है, वह सर्वगुण सम्पन्न है और चेतन भी है और भी उस में अनेक प्रकार के गुण, कर्म और स्वभाव विद्यमान हैं तो यह भी अवश्य ही समझना चाहिये कि वह हम को देखता है। हमारे लिए चिन्तन करता है। हमारा कल्याण चाहता है और हम को सुधारना चाहता है। सो यह दावा कोई अनुचित नहीं है।

बहुत-सी बातों में हमारी ईश्वर से समानता है अर्थात् हम धर्म की बातें जैसे कि न्याय और अन्याय इत्यादि जानते हैं। ईश्वर में अनेक प्रकार की विशेषताएं हैं। जैसा कि न्याय, प्रेम, दया इत्यादि। सो ये मनुष्य में भी पाई जाती हैं। जब हम इस बात पर विचार करें कि बहुत-सी बातों में हम और ईश्वर एक ही हैं, तब हम ईश्वर की सत्ता को कुछ-कुछ जान सकते हैं। हमें यह भी समझना चाहिये कि ईश्वर के साथ हमारा सम्बन्ध ऐसा है, जैसा कि हम आपस में रखते हैं अर्थात् ईश्वर हमारा शासक है। वह हम पर शासन करता है। वह हमारा पिता है। उस ने हम को उत्पन्न किया है। वही हमारा पालन और संरक्षण करता है।

जब हम इन बातों पर विचार करते हैं, तब हम ईश्वर के विषय में अधिकाधिक बोध प्राप्त करते हैं। और वेदों में तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में भी पिता तथा शासक आदि के रूप में ईश्वर का उल्लेख किया गया है। अब विचारना चाहिये कि जब सभी धर्म-ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख है तो इसमें कुछ न कुछ बात हमारे समझने-समझाने की भी है। हमें यह समझना

चाहिये कि जिस प्रकार उस के साथ हमारा शासक वा पिता के रूप में सम्बन्ध है, उसी प्रकार वह पिता और शासक के कर्तव्य कर्मों का पालन भी अवश्य ही करता है । अब विचारिये कि पिता और शासक का काम क्या-क्या होता है ? इस में कुछ भी सन्देह नहीं है कि ये दण्ड देने वाले भी होते ही हैं। दण्ड देने का भी एक उत्तम उद्देश्य होता है और वह यह कि दण्ड देकर अपराधी सन्तान वा प्रजा को सुधारा जाये । और इस प्रकार दूसरों को भी शिक्षा मिले। हम और आप यह भी कहते ही हैं कि बदले की भावना से दण्ड न दिया जावे । दण्ड उतना ही दिया जावे, जितना कि आवश्यक हो और शिक्षादायक हो । फिर भी यदि पिता वा शासक चाहें तो क्षमा कर दें। और इसीलिए क्षमा होती है । **-हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी-

पादरी साहेब का पक्ष यह था कि ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है। क्षमा कर सकता है, ऐसा पक्ष नहीं । फिर पादरी साहेब ने दूसरी प्रकार से क्यों कहा ? और यह कहा कि दण्ड भी अवश्य देता है । यह तो परस्पर विरोधी कथन है। क्या आधा दण्ड देता ? और क्या आधा क्षमा कर देता है ? या कुछ कम-अधिक करता है ? जैसे ईश्वर सब बातें जानता है, क्या जीव लोग भी वैसे ही जानते हैं ? अथवा कम-अधिक जानते हैं । जैसे हमारे बीच में न्यायाधीश न्यायकारी होता है और अन्यायकारी होता है, क्या ईश्वर भी वैसा ही है ? अथवा ईश्वर केवल न्यायकारी है ? जो न्यायकारी है तो फिर क्षमा करना कहां रहा ? क्योंकि न्याय उस का नाम है जिस ने जितना जैसा काम किया उसको उतना वैसा ही फल देना ।

जो ईश्वर को थोड़ा बहुत कुछ न कुछ जानते हैं तो मैं पूछता हूं कि ईश्वर की सब ही बातों में ऐसी रीति है, या कुछ कम-अधिक ? यह मैं भी मानता हूं कि ईश्वर के साथ हमारा राजा और पिता का सा सम्बन्ध है। परन्तु यह सम्बन्ध क्या अन्याय करने के लिए है ? ऐसा कभी नहीं हो सकता। वेद आदि पुस्तकों में क्षमा करना कहीं नहीं लिखा है । ईश्वर के न्याय करने का क्या अर्थ है ? न्यायाधीश सभा आदि के दण्ड और पुरस्कार आदि सुधार के लिए होते हैं अथवा इन का कुछ और अर्थ है ? और जो क्षमा करता है तो किस-किस काम पर क्षमा करता है और किस-किस पर नहीं? जब क्षमा करता है तब तो ईश्वर पाप का बढ़ाने वाला होता है, क्योंकि वह जीवों को पाप करने में उत्साहित करता है । जब ईश्वर सर्वज्ञ है तो उस के न्याय आदि गुण और कर्म भी भूल और भ्रान्ति आदि सब दोषों से रहित

हैं । इसलिए जब ईश्वर अपने स्वभाव के विरुद्ध कोई कार्य कभी कर ही नहीं सकता तो फिर न्याय के प्रतिकूल क्षमा वह कैसे कर सकता है ? और ईश्वर जो दयालु है तो दया का भी वही अर्थ है, जो कि न्याय का है । क्षमा करना दया नहीं है । जैसे कि एक डाकू पर कोई दया करे अर्थात् क्षमा करे तो क्या वह दयालु गिना जा सकता है ? कभी नहीं ? क्योंकि हजारों जीवों को उस ने दु:ख दिया है । जब डाकू क्षमा कर दिया जावेगा, तब तो वह बड़े साहस के साथ और भी खूब डाके मारेगा । इसलिए दया का मतलब भी और ही है, जो पादरी साहेब जानते हैं, वह नहीं ।

–हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी

पादरी टी०जी० स्काट साहेब–

पण्डित जी जल्दी न करें । मेरा मतलब बेईमानी पर कमर बांध ने का नहीं है । ईश्वर क्षमा करता है तो उस में 'सकता या नहीं सकता' का उल्लेख आरम्भ में इसलिये किया गया है कि इस प्रकार की सम्भावना प्रतीत होती है । निस्सन्देह आज का विषय तो यही है कि वह क्षमा करता है । हम यह नहीं कह सकते कि वह कहां तक दण्ड देता है और कहां तक क्षमा करता है । यह उस का काम है, हमारा नहीं । परन्तु जब वह सर्वज्ञ है और हम लोगों के समान भूल भी कभी नहीं करता । हम लोग तो अपने कामों में भूल किया ही करते हैं । ईश्वर अपनी अच्छी बातों में, और उस की सभी बातें अच्छी हैं, भूल कभी नहीं करता, ईश्वर तो सब कुछ जानता है । हम वास्तव में कुछ भी नहीं जानते । उस के क्षमा करने में भी अवश्य ही कोई भेद है । क्योंकि क्षमा करना सदा ही एक सूक्ष्म विवेक का कार्य होता है। ईसाई लोग दृढ़तापूर्वक कहा करते हैं कि वह विना किसी सिफारिश के और विना किसी न्याय के क्षमा किया करता है । परन्तु जब वह दयालु है और न्यायकारी भी है तो वह सर्वथा एक ही बात है । अर्थात् दया और न्याय एक ही बात है ।

परन्तु जरा न्यायकारी बनकर सोचिए । दया में कुछ न कुछ मतलब ऐसा भी जरूर होगा जो कि न्याय में नहीं है । वेद में यह जरूर लिखा है कि ईश्वर पापों को क्षमा करता है ।

अब मैं यहां पर एक पुस्तक म्यूर साहेब की कि जिस में लिखा है कि–"अदिति पाप को क्षमा करती है" का प्रमाण देता हूं । पण्डित जी कहेंगे कि यह अर्थ गलत है । अब अंग्रेजी जानने वालों का यह काम है कि वे म्यूर साहेब की पुस्तक देखकर न्याय करें । मैं यह पूछना चाहता हूं कि क्या क्षमा शब्द का विचार वेद वालों को कभी भी नहीं सूझा । क्या वे क्षमा का

अर्थ नहीं जानते थे । और क्या क्षमा करना भूल है ?

मैं यह सिद्ध करूँगा कि समय-समय पर क्षमा करना बहुत ही श्रेष्ठ कार्य है । यदि इसे संसार में से हटा दिया जाये तो संसार की अवस्था बहुत ही बिगड़ जायेगी । और यह तो अनुमान से प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है कि क्षमा से संसार में बहुत अच्छे-अच्छे परिणाम होते हैं । कौन जानता है कि माता-पिता के बीच में और बेटा-बेटी के बीच में क्या वास्ता है और परस्पर एक का दूसरे से तथा मित्र का मित्र से क्या सम्बन्ध है ? यदि इन सब के बीच में क्षमा करने का भाव कभी भी, सर्वथा न आवे तो ये सम्बन्ध जरा भी न चलें ।

और यह कहना कि क्षमा करने से पाप बढ़ जाता है तो यह ठीक है । यदि क्षमा सदा ही क्षमा हो, और वह कभी किसी भी रूप में दण्ड न हो । और यह भी ठीक है कि कुछ अवस्था ऐसी भी होती हैं कि जिन में किसी को कभी भी क्षमा नहीं करना चाहिये जैसा कि डाकुओं के विषय में । संसार में सभी बातें इस प्रकार की नहीं हैं कि हम क्षमा को संसार से सदा के लिए सर्वथा दूर कर दें । जो अनादि और न्यायकारी है, वह भी जानता है कि कब और किस पर क्षमा और दया आदि का व्यवहार किस प्रकार करना चाहिये । आगे चलकर मैं यह भी बताऊंगा कि क्षमा करने से पापवासना का अन्त हो जाता है और साथ ही यह भी कि दण्ड देने से पाप की प्रवृत्ति बढ़ जाती है । और इस प्रकार मनुष्य और भी अधिक निडर तथा बड़ा शैतान बन जाता है । **—हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—

जो शास्त्रार्थ का विषय है और जिस को सिद्ध करने की प्रतिज्ञा प्रथम पादरी साहेब ने की थी, उस से दूसरा कथन न्याय-शास्त्र के अनुसार पराजय का सूचक है । इस प्रकार की पराजय को दार्शनिक भाषा में प्रतिज्ञान्तर कहा जाता है । पादरी साहेब ने कहा कि असल विषय वही है कि ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है । इस से यह सिद्ध हुआ कि ऐसे अवसर पर पादरी साहेब को अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए विशेष बल देना चाहिये था । जब पूर्ण निश्चय से नहीं जानते तो फिर प्रतिपादन या समर्थन कैसा ? मैं पूछता हूं कि जितने अंश में क्षमा करना पादरी साहेब मानते हैं, उस को भी ठीक-ठीक जानते हैं या नहीं ? क्या आपके मत में ईश्वर डाकू आदि को क्षमा नहीं करता? आप डाकू आदि को क्षमा करने का उपदेश नहीं करते? और यदि ईश्वर किसी के वसीले से क्षमा करता है तब तो वह पराधीन ठहरता है। और यह भी बतायें कि ईश्वर किस के वसीले से क्षमा करता है ? वह

वसीला आप का है या किसी दूसरे का । यदि कहो कि अपने आप का वसीला है तो झूठ है । और यदि कहो कि किसी दूसरे का है तो फिर ईश्वर स्वतन्त्र नहीं रहा ।

और जो पादरी साहेब ने कहा कि अदिति माता क्षमा करती है, वेद में लिखा है तो मैं पूछता हूं कि अदिति किस का नाम है ? और क्षमा करना तो चारों वेदों में कहीं भी नहीं लिखा । जब क्षमा करना है ही व्यर्थ तो फिर ऐसी मिथ्या बातों का उपदेश वेदों में क्यों कर हो सकता है ?

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अंग्रेजी जानने वाले वेदों के सिद्धान्तों का निर्णय करें । यह बात तो ऐसी ही है, जैसे कि कोई संस्कृत पढ़कर, अंग्रेजी के सिद्धान्तों का निर्णय करे ।

और जो माता-पिता क्षमा करते हैं, ऐसा पादरी साहेब का कथन है सो वे भी पूर्णतया क्षमा करते हैं या कुछ-कुछ । जो कहें कि कुछ-कुछ, तब भी ठीक नहीं है । क्योंकि पाप करने से माता-पिता अपने अन्तरात्मा में अपने सन्तान के प्रति प्रसन्न होते हैं ? यदि हां तो फिर वे बालकों की ताड़ना क्यों करते हैं ? यही तो दण्ड है । जब बालक कुछ समर्थ हो जाते हैं और पांच वर्ष से बड़े हो जाते हैं, तब माता-पिता बालकों के साधारण पाप वा अपराध भी क्षमा नहीं किया करते । और जो क्षमा करते हैं तो कभी-कभी माता-पिता और सन्तान में वैर विरोध क्यों होता है ? इस से पादरी साहेब का दृष्टान्त गलत ठहरता है । हां यदि सब माता-पिता क्षमा करते, तब तो पादरी साहेब का दृष्टान्त भी ठीक होता और कथन भी । आपके मत के अनुसार शैतान ने बहुत से अपराध किये हैं । परन्तु ईश्वर ने उस को आज तक कोई दण्ड दिया कि नहीं ? और भविष्य में भी उस को कोई दण्ड देगा या नहीं । जब शैतान को बनाया तब तो वह पवित्र था । फिर जब उस ने पाप किया ईश्वर ने उसे क्षमा क्यों नहीं किया ? और आगे भी क्षमा करेगा या नहीं । **–हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी**

पादरी टी०जी० स्काट साहेब–

हमारे सुयोग्य विद्वान् और प्रिय मित्र स्वामी दयानन्द जी घबरायें नहीं। मैं विषय से बचकर न चलूंगा । परन्तु यह मुझे अधिकार है कि मैं जिस प्रकार भी उचित समझूं, उसी प्रकार अपनी युक्ति का आधार स्थिर करूँ । पहले मैं बुद्धि से यह सिद्ध कर रहा हूं कि क्षमा की सम्भावना है । फिर आगे चलकर देख लेना, मैं शास्त्रीय प्रमाणों से भी यह सिद्ध करूँगा कि ईश्वर पाप क्षमा करता है । अर्थात् आज का विषय कि ईश्वर पाप क्षमा भी करता है, वह बुद्धि पूर्वक है कि नहीं ? और फिर इस का विशेष कथन न करूँगा ।

मेरी युक्ति तीन प्रकार की हैं—बुद्धिपूर्वक हैं, शास्त्रसिद्ध हैं और अनुभव से भी पुष्ट हैं । वह डाकू का उदाहरण इस प्रकार से है कि अनुशासन को स्थिर रखने के लिए डाकू को क्षमा करना अच्छा नहीं है । परन्तु कौन नहीं जानता कि कभी-कभी डाकुओं को क्षमा करने के भी बड़े उत्तम-उत्तम परिणाम निकलते हैं । एक उदाहरण है—

योहन्ना रसूल ने एक आदमी को ईसाई धर्म में दीक्षित किया । वह डाकू था । बाद में वह धर्म से बहिष्कृत किया गया और जंगल में भाग गया तथा बड़े-बड़े डाकुओं का काम करने लगा । योहन्ना उस की खोज करने जंगल में गया । पहले तो डाकू ने उसे मार डालना चाहा, परन्तु योहन्ना बूढ़ा था । वह उस से न डरा और पास जाकर बोला कि मैं तो बूढ़ा आदमी हूं, मुझे क्यों मारते हो ? डाकू का हृदय-परिवर्तन हो गया । उस ने डाकुओं का साथ छोड़ दिया और योहन्ना के साथ चला आया। फिर वही डाकू बहुत उत्साही प्रचारक और साधु पुरुष बन गया । उसने फिर कभी कोई अपराध नहीं किया और अपना जीवन बहुत पवित्रता से व्यतीत किया । डाकुओं आदि के विषय में जब कि मनुष्य भी क्षमा-पूर्ण व्यवहार करते ही हैं, तब यह भी सम्भावना है कि ईश्वर भी क्षमा कर देता है । और यह पूर्णतया सम्भव है । ईश्वर तो मनोगत बातों को भी जानने वाला है ।

ईसाइयों का सिद्धान्त यह है कि यह वसीला, जिस से क्षमा प्राप्त होती है, निष्कलङ्क अवतार ईसा मसीह का इस संसार में पैदा होना है ।

मैं पण्डित जी से पूछता हूं कि अदिति का क्या अर्थ है ? म्यूर साहेब की पुस्तक का जो जिकर मैंने किया है, सो स्वामी जी जल्दी में किसी बात को उलटी न समझें । मैं कोई मूर्ख नहीं हूं । म्यूर साहेब की पुस्तक अंग्रेजी में है परन्तु उस में साथ ही संस्कृत श्लोक भी वेद के भरे हुए हैं । अंग्रेजी जानने वाले सज्जन म्यूर साहेब के प्रमाणों और युक्तियों को अंग्रेजी में भी देख सकते हैं और अपनी संस्कृत में भी समझ सकते हैं ।

शैतान का जो हाल है, सो हम नहीं जानते । शायद उस को बीस बार क्षमा मिल चुकी है और अब उसे क्षमा मिलने की कोई आशा नहीं है। फिर भी कौन जानता है। हां, इतना हम जानते हैं कि आज शैतान का विषय नहीं है । मैं पण्डित जी से यह पूछता हूं कि क्या क्षमा कभी भी नहीं होनी चाहिये ? क्या मनुष्य के हृदय में क्षमा करने वा क्षमा चाहने का कुछ भी विचार कभी नहीं होता ? क्या क्षमा शब्द का संसार में कुछ भी काम नहीं है ? पण्डित जी इस बात पर विचार करें ।

—हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी–

मैं कब घबराया हूं जो आपने कहा कि घबरायें नहीं । जब आप ने पहले कहा कि ईश्वर पापों को माफ भी करता है और अब कहा कि कर सकता है तो क्या ये दोनों परस्पर विरोधी बातें नहीं हैं और क्या इस प्रकार आप प्रतिज्ञा हानि नहीं कर रहे ? **तर्कशास्त्र में प्रमाण और अनुभव आप्त पुरुषों का ही सत्य होता है ।** प्रत्येक जनसाधारण का नहीं । जब डाकू का कहीं-कहीं क्षमा करना अच्छा है तो आजकल की सरकार को भी चाहिये कि किसी अवसर पर डाकुओं को क्षमा करे ।

योहन्ना के क्षमा करने से क्या प्रत्येक अपराधी क्षमा के योग्य हुआ। उस ने भयवश या किसी स्वार्थवश क्षमा किया होगा तो क्या उस ने यह कोई अच्छा काम किया ? और जब तक उस ने डाका मारना न छोड़ा था, तब तक अपने साथ क्यों न रखा ? और जो कहो कि क्षमा करने से लिया तो यह बात सत्य नहीं है; क्योंकि जब उस ने डाके का काम छोड़ दिया और अच्छे काम करके अच्छा आदमी बना, तब साथ रखा । भले और बुरे दोनों प्रकार के कामों का फल ईश्वर यथायोग्य देता है । जब पादरी साहेब का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है, फिर उसके विरुद्ध पादरी साहेब ने कथन किया कि जब हम कभी क्षमा करते हैं तो ईश्वर क्षमा नहीं करता । और जब हम क्षमा नहीं करते तो ईश्वर क्षमा करता है ।

पादरी साहेब ने मुझ से अदिति का अर्थ पूछा है । सो पृथिवी, अन्तरिक्ष, माता, पिता और ईश्वर आदि अर्थ हैं । जैसे किसी हल जोतने वाले के सामने या विद्या वाले के सामने रत्नों की या और-और विद्याओं की बात करें तो क्या वह व्यर्थ नहीं है ? जो शैतान का पाप क्षमा न किया जायेगा, तब तो शैतान के विषय में आपका सिद्धान्त अटक गया । क्षमा शब्द किसी और मुहावरे के लिए है । दण्ड तो दिया जाता है, परन्तु समर्थ को जैसा दण्ड दिया जाता है, वैसा असमर्थ को नहीं । जैसे कि पागलों को पागलखाने में भेजा जाता है । यदि ईश्वर ईसा के वसीले से क्षमा करता है तो क्या वह खुशामदी नहीं है ? क्या आप ईश्वर के सामने भी वकील आदि की आवश्यकता समझते हैं ? क्या आप उसे सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् नहीं मानते । और यदि आप ईसा के वसीले से पापों का क्षमा होना मानते हैं तो ईसा ने जो पाप किये, उन को क्षमा करने का वसीला क्या है ?

–हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी

पादरी टी०जी० स्काट साहेब–

अब यहां पर कुछ विचार करना उचित है । क्षमा करना और बात है

तथा दिल को पवित्र करना और बात है । इसलिए मनुष्य की क्षमा और ईश्वर की क्षमा में बहुत भेद है । जब मनुष्य तोबा करे और उस नियम पर चले जो कि उस के लिये नियत और विहित है, तब ईश्वर उस को क्षमा कर देता है । और उसके हृदय को भी पवित्र कर देता है । और मेरा भाव यह है कि ईश्वर ने किसी को क्षमा किया और उस के हृदय को भी पवित्र किया, इस की पूर्ण सम्भावना है, परन्तु फिर भी मनुष्य की स्वतन्त्रता और धर्मशास्त्र के कारण नियम के अनुसार वह क्षमा नहीं होता । यह मेरा अभिप्राय है ।

और क्षमा का लाभ इस में प्रतीत होता है कि बीसियों विचारवान् युक्ति–तर्क–विशेषज्ञ भली प्रकार जानते हैं कि क्षमा का परिणाम बहुत उत्तम निकलता है । कोई हठ वा दुराग्रहवश इस सिद्धान्त से इन्कार करे तो करे। पण्डित जी का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर किसी को भी विना दण्ड दिये छोड़ता नहीं; परन्तु योहन्ना ने उस डाकू को दण्ड नहीं दिलाया, क्षमा कर दिया । और हमारा यह सिद्धान्त है कि ईश्वर जब भी उसे उचित प्रतीत होता है, क्षमा कर देता है । जैसा कि धर्म–शास्त्र में लिखा है ।

पण्डित जी ने अदिति के अर्थ परमेश्वर भी लिखे हैं । और म्यूर साहेब का दावा कि अदिति वेद के प्रमाण से पापों को क्षमा भी कर देती है । यदि शैतान अभी तक माफ नहीं किया गया तो यह किसी प्रकार भी मेरे दावे के विरुद्ध नहीं है क्योंकि आज के विषय में एक शब्द ''भी'' मौजूद है और यह ''भी'' अवस्था और परिस्थिति के अनुसार कभी दण्ड और कभी क्षमा इन दोनों को बताता है । पण्डित जी का दावा है कि ईश्वर कभी भी क्षमा नहीं करता, अतः ''क्षमा'' शब्द को संसार से हटा दो । इस के प्रतिकूल यदि ईश्वर कभी किसी एक पाप को क्षमा भी करता है तो केवल उसी से मेरा पक्ष सिद्ध हो जाता है । मेरा पक्ष यह नहीं है कि ईश्वर क्षमा ही करता है; अपितु यह मेरा पक्ष है कि ईश्वर क्षमा भी करता है । इस ''भी'' पर विशेष ध्यान दीजिये ।

ईसा के वसीले का विषय आज नहीं है । इसलिये इस विषय में मैं आज कुछ नहीं कहता । हमारे लिये आज यह जान लेना ही बहुत है कि किस वसीले से पाप क्षमा होता है । उदाहरण कि लिये देखिये, दवाई से दर्द हट जाता है । हम दवाई के विषय में विशेष कुछ नहीं जानते, परन्तु न जानने से क्या भेद पड़ता है ? दर्द तो दूर हो ही जाता है । इसी प्रकार क्षमा होने की भी एक शर्त तो है ।

अब शास्त्रीय प्रमाण आरम्भ होता है । इसमें मैं अधिक कुछ नहीं

लिखता। जो लोग इस विषय में कुछ विशेष जानना चाहें, और प्रमाण पूछें, वे कल की लिखित पर विचार करें तथा तौरेत में, खरूज की किताब अध्याय चौंतीस आयत आठ और गिनती की किताब अध्याय चौदह आयत अट्ठारह को पढ़ें एवं विचार करें । **–हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी–

क्षमा करना पवित्र होना है या नहीं ? क्या क्षमा करना पवित्र होने के लिए है ? जो कहें कि पवित्र होने के लिए है तो ठीक नहीं, क्योंकि क्षमा करने से पाप की निवृत्ति संसार में देखने में नहीं आती । और जो अशुद्ध होने के लिये क्षमा होना कहा जाये तब तो क्षमा करना ही सर्वथा व्यर्थ हो जाये । जब हमारे क्षमा करने और ईश्वर के क्षमा करने में भेद है तो आपने पहले क्यों कहा था कि हम भी दयालु हैं और ईश्वर तुल्य हैं । और ईश्वर के सामने क्षमा कराने वाला योहन्ना मौजूद है तब तो ईश्वर भी खुशामद को पसन्द करने वाला तथा बेसमझ सिद्ध होता है । क्या योहन्ना मनुष्य नहीं था कि जिस ने क्षमा किया ? क्या योहन्ना कोई राजा था । वह राजा या ईश्वर नहीं था, यह मैं जानता हूं ।

न्याय दण्ड देने से छोड़ता नहीं है और छोड़ता भी है । यह बात परस्पर विरुद्ध है । जो पादरी साहेब ने यहां मनुष्यों के राज के विषय में यह कहा कि कानून की पाबन्दी करनी आवश्यक है, अतः डाकुओं को क्षमा नहीं किया जा सकता तो मैं पूछता हूं कि क्या ईश्वर के घर में कानून की पाबन्दी नहीं है ? क्या कोई कह सकता है कि ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है ? यदि नहीं तो फिर योहन्ना के कहने, फुसलाने और खुशामद करने से वह क्षमा करने को राजी क्यों हो गया ? ऐसी बातों से तो ईश्वर की सर्वज्ञता नष्ट होती है।

और जो पादरी साहेब ने कहा कि ईश्वर कभी दण्ड देता है और कभी क्षमा भी करता है । यह बात ऐसी ही मिथ्या है, जैसे कि अग्नि कभी गर्म होती है और कभी ठण्डी हो जाती है । और जो यह बात कही कि आज ईसा मसीह का विषय नहीं है । सो आपने ही आज ईसा का विषय बीच में छेड़ा है । क्योंकि आप ने कहा कि ईश्वर ईसा के वसीले से पापों को क्षमा करता है । यहां मैं यह पूछता हूं कि ईसा जीव था या ईश्वर ? जो कहें कि जीव था तो सभी आदमी जीव हैं । सभी ईश्वर के सामने क्षमा कराने वाले हुए । फिर आप एकमात्र ईसा का नाम ही क्यों लेते हैं । और जो कहो कि ईसा ईश्वर था तो अपने आप ही वह वसीला अथवा साक्षी कभी नहीं बन सकता । जो कहें कि उस में जीव आत्मा और परमात्मा दोनों

थे तो दोनों के क्या-क्या काम थे । और दोनों साथ-साथ थे या पृथक्-पृथक्?

जो कहें कि पृथक् थे तो व्याप्य-व्यापकता न रही । जो कहें कि व्याप्य-व्यापकता है तो **ईसा में और इन सब जीवों में क्या भेद है ?** जो कहें कि विद्या पढ़े थे । सो भी ठीक नहीं । क्योंकि इञ्जील के लेख से मालूम होता है कि वह विद्वान् नहीं था परन्तु एक साधु पुरुष था ।

जो लोग ईसा को मानते हैं, उनके सिद्धान्तानुसार जब यहूदियों ने ईसा को फांसी पर चढ़ाया तो उस ने ईश्वर से प्रार्थना की कि–हे ईश्वर ! तूने मुझे क्यों छोड़ दिया ? ऐसी बातों से उस में केवल साधारण जीव ही गति करता था, ईश्वर नहीं । किन्तु ईश्वर तो जैसे सब में व्यापक है वैसे ही उस में था। जो कहें कि उस ने मुरदों को जीवित किया, अन्धों को आंखें दीं और कोढ़ियों को चंगा किया, भूत निकाले, इसलिए वह ईश्वर था । यहां मैं कहता हूं कि ये बातें प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों और सृष्टिक्रम आदि से विरुद्ध होने से विद्वानों के मानने योग्य न कभी थीं, न हैं और न कभी होंगी । हां, ये बातें पौराणिकों के अनुसार हैं ।

पक्षी बोला, पशु, हाथी आदि आदमी की बोली में बोले । जैसा कि तौरेत में लिखा है कि गदहे आदमी की बोली बोले । क्या इन बातों को कोई विद्वान् मान सकता है ? अथवा किसी विद्वान् से इन बातों को मनवा सकता है ?

और जो यह कहा कि दवा खाने से रोग छूट जाते हैं, वैसा ही यह पापों को क्षमा करना भी है तो क्या दवा का नियम से सेवन करना, परहेज करना, वैद्य के कहने के अनुसार चलना, अपनी मर्जी से न चलना, ये सब दण्ड नहीं हैं ?

अब तीन दिन से मुझ से और पादरी साहेब से जो वार्तालाप हुआ है, उस के विषय में मैं अपनी बुद्धि के अनुसार यह समझता हूं कि मैंने पुनर्जन्म का सिद्धान्त सिद्ध कर दिया। पादरी साहेब उस का खण्डन नहीं कर सके। और पादरी साहेब अपने सिद्धान्तों का मण्डन करने में तथा उस के विषय में मेरे प्रश्नों के युक्ति और प्रमाण से उत्तर देने में भी समर्थ नहीं हुए ।

–हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती जी

पादरी टी०जी० स्काट साहेब–

अब विचार करने वाले भाई विचार करें, क्योंकि इस लिखाई के बीच में शास्त्रार्थ के नियमों के विरुद्ध बहुत सी बातें कही गई हैं और वे लिखी नहीं गईं । इस का परिणाम वही हुआ है कि जिस के ऊपर झगड़ा हुआ अर्थात् केवल अर्थ मिलाने के लिए मैं एक वाक्य सुनाना चाहता था । परन्तु

मैंने यह आवश्यक न समझा कि लिखने वाले से उसे लिखने के लिए भी कहूं । अब मैं केवल उस प्रमाण का ही उल्लेख करता हूं । भाषा के शब्दों का विचार मैं न करूँगा । जो चाहें वे पुस्तक में स्थल को निकाल कर देख लें । हां, यह मैं लिखवा दूंगा कि मैं प्रमाण किस उद्देश्य से देता हूं । पण्डित जी का यह कहना कि मेरी दलील पक्की नहीं है, और मैंने यूं सिद्ध किया है, इत्यादि । इसमें कुछ भी सार नहीं है । मैं भी इस प्रकार कह सकता हूं । अब यह सुनने वालों का काम है कि वे विचार करके, स्वयमेव निर्णय करें । और यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मैं यही नहीं चाहता कि इस विषय में किसी प्रकार का पक्षपात किया जाये ।

पण्डित जी ने इस बात का कुछ उत्तर नहीं दिया कि "क्षमा" शब्द को संसार से बहिष्कृत क्यों नहीं कर दिया जाता । यह एक व्यर्थ और हानिकारक शब्द है । इस से सदा सब की हानि ही होती है, यदि पण्डित जी के कथनानुसार यही बात है तो बहिष्कार जरूरी है । मैं तो निस्सन्देह यह कहता हूं कि क्षमा करने से भगवान् की महिमा का प्रकाश होता है। ईश्वर की बड़ाई इसी में है कि वह मनुष्य को क्षमा करे क्योंकि मैंने कहा कि वह सब गुप्त भेदों को भी यथावत् जानता है । और क्षमा करने के देश, काल तथा पात्र को भी भली प्रकार जानता है । और क्षमा करने के कारणों को भी पूर्णतया जानता है । ईश्वर के घर में न तो कुछ कमी है और न ही किसी प्रकार की भूल या भ्रान्ति की कोई सम्भावना है । ये सब कमियां और त्रुटियां इस संसार में ही हैं ।

देखो, संसार में कितना पाप, अन्याय, घमण्ड और रक्तपात तथा अनेक-विध अनाचार दृष्टिगोचर हो रहा है । पण्डित जी इसे स्वीकार नहीं करेंगे, परन्तु प्रत्यक्ष ही संसार में भारी कमी और त्रुटि देखने में आ रही है । जैसा कि अंग्रेजी सरकार ने इस का यथोचित प्रबन्ध किया है, ईश्वर भी इस का प्रबन्ध करेगा ।

मैं निःसन्देह मसीह के विषय में कोई वार्ता न चलाऊंगा । मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस पवित्र धर्म-ग्रन्थ में जिस को क्षमा करने का उल्लेख है, वह उसी वसीले से है । यह दर्द का जिक्र तो है परन्तु दर्द का विवरण यह नहीं है कि कहां-कहां, कैसे-कैसे है ? जब कभी इस विषय पर वार्ता चलेगी, तब आप इसे यथार्थ रूप में देख लेंगे । युक्ति और प्रमाण के आधार पर मेरा निवेदन यही है कि क्षमा होती है ।

और तोबा के सिद्धान्त से भी यही प्रमाणित होता है कि क्षमा होती

है । उपाय को खूब जानना और ईश्वरीय पुस्तक के विषय में इस प्रकार से हंसी-ठट्टा करना यदि पण्डित जी को उचित प्रतीत होता है और वे प्रत्येक बात को उलटे रूप में ही समझना चाहते हैं तो वे जानें । वेद की अनेकानेक बातें हैं; परन्तु यहां उनके विषय में मैं विशेष कुछ कहना नहीं चाहता । अब आप मेरे इन उत्तरों को कृपया देख लीजिये-

गिनती की पुस्तक अध्याय १४ आयत १८ का अर्थ इस प्रकार है कि ईश्वर पापों को क्षमा करता है ।

लूका की इञ्जील अध्याय ९ आयत ४ तथा अध्याय १५ और आयत १०, इसी प्रकार योहन्ना का पहला पत्र अध्याय १ आयत ९ इन का अर्थ यह है कि पापों को क्षमा किया जाता है । फिर मसीह ने अपने चेलों को समझाया कि अपनी प्रार्थना में इस प्रकार से बोलो-"हे ईश्वर हमारे पापों को क्षमा कर ।।"

अब अनुभवसिद्ध प्रमाण पर भी विचार कीजिए। अनुभव के आधार पर सत्य को जानना बहुत बड़ी बात है और अपना अनुभव सत्यासत्य का निर्णय करने की सब से बड़ी कसौटी है । मनुष्य कह सकता है कि मेरा पाप क्षमा किया जाये और इस के साथ ही ऐसा कथन निराधार है क्योंकि जैसे पण्डित जी ने स्वयं भी एक उदाहरण में बताया है कि प्रत्येक पापी को दण्ड अवश्य ही मिलेगा । वह पाप भी है, फिर जब तोबा-तोबा कहा तब भी वही पाप मौजूद है । फिर खुदा के बेटे का नाम लिया तब भी पाप वर्तमान है । मैं यह मान लेता हूं कि मनुष्य मिथ्या-कथन करें ।

कल्पना करो कि वे सच्ची तोबा करके सन्मार्ग पर आ जावेंगे और प्रत्यक्ष देख भी लें कि अब वह पहले जैसी बात नहीं है । अब मन में सन्तोष है और शान्ति है । प्रकाश ही प्रकाश है । न कोई सन्देह है, न चिन्ता है और न ही कोई आशङ्का है । अब देख लीजिये कि ऐसे हजारों आदमी संसार में हैं कि जिन का यही अनुभव है और उन्होंने अपने अनुभव से यह भली प्रकार जान लिया है कि ईश्वर ने मेरे पापों को क्षमा कर दिया है । वे अब पूर्णतया सन्तुष्ट हैं । उनके हृदय पर न तो पाप की छाप शेष है और न ही पाप का कोई भार है । पापाचरण की किसी प्रकार की इच्छा वा कल्पना भी नहीं है । एक क्षणमात्र में हृदय-परिवर्तन हो गया है ।

मेरी ओर से इञ्जील के अनुसार प्रमाण मिल चुका है । यह कहना बहुत ही आसान है कि यह मिथ्या है ऐसा है । और ऐसा नहीं, परन्तु जानने वाले जानते हैं । जिस का दर्द सर्वथा चला गया है, वह जानता है, परन्तु

मेरे धर्म के मानने वाले इकतालीस करोड़ ईसाई संसार में हैं। उन में से बहुत से तो झूठे ही हैं, यह मैं स्वीकार करता हूं, उन का कथन भी झूठ ही है।

परन्तु सच्चे आदमी भी बहुत हैं और उन का कथन भी पूर्णतया यथार्थ है, सत्य है । उन की जीवनचर्या से यह भली भांति प्रमाणित हो जाता है कि उन के सब पाप सर्वथा लुप्त हो चुके हैं । उन के पापों को क्षमा किया गया है । हां इस को जानने और समझने के लिए अपना अनुभव होना भी आवश्यक है । यह कार्य अभ्यास से होगा ।

मैं फिर कहता हूं कि वह अपने अनुभव का प्रमाण, सब से बढ़कर और पक्का प्रमाण है । युक्ति और तर्क की पुष्टि से भी बढ़कर यह पुष्टि है कि जिस को अनुभव के आधार पर अपना अन्तरात्मा भी पुष्ट करता है। बात यह नहीं कि हम केवल मौखिक कथनमात्र ही करते हैं, ऐसा कथन तो मिथ्या भी हो सकता है । परन्तु जिस के पाप तोबा करने के बाद अपना अस्तित्व सर्वथा खो चुके हैं कि वह नहीं जानता कि जैसे कि कोई पिता अपने पुत्र से क्षमा का वचन कहे तो क्या वह पुत्र यह नहीं समझता कि पिता ने उसे क्षमा कर दिया है और अब चिन्ताओं की कोई आवश्यकता नहीं है । मानव-हृदय की भी इसी प्रकार अवस्था है ।

मैंने तर्क, युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणों के द्वारा तथा मनुष्यों के अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर, यह सिद्ध कर दिया है कि **ईश्वर पापों को क्षमा करता है ।** **–हस्ताक्षर टी०जी० स्काट साहेब**

(लेखराम पृष्ठ ४४९–४७०)

काशी में विज्ञापन-पत्र

सितम्बर, १८७९

सब सज्जन लोगों को विदित किया जाता है कि इस समय पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज काशी में आकर श्रीयुत महाराज विजयनगर के अधिपति के आनन्द बाग में जो महमूदरंग के समीप है, निवास करते हैं । वे वेदमत का ग्रहण करके उस के विरुद्ध कुछ भी नहीं मानते। किन्तु जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदोक्त–१–सृष्टिक्रम, २–प्रत्यक्षादि प्रमाण, ३–आप्तों का आचार और सिद्धान्त तथा ४–आत्मा की पवित्रता और विज्ञान के विरुद्ध होने के कारण पाषाणादि मूर्तिपूजा, जल और स्थलविशेष पाप निवारण करने की शक्ति, व्यास मुनि आदि के नाम से छल से प्रसिद्ध किये नवीन व्यर्थ पुराण नामक आदि, ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थ, परमेश्वर के अवतार व पुत्र होके अपने विश्वासियों के पाप क्षमा कर मुक्ति देने हारे

का मानना, उपदेश के लिए अपने मित्र पैगम्बर को पृथ्वी पर भेजना, पर्वतों का उठाना, मुर्दों का जिलाना, चन्द्रमा का खण्डन करना, कारण के विना कार्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना, स्वयं ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त वस्तु कुछ भी न मानना, जीव ब्रह्म को एक ही समझना, कण्ठी, तिलक और रुद्राक्षादि धारण करना और शैव, शाक्त, वैष्णव गाणपत्यादि सम्प्रदाय आदि हैं, इन सब का खण्डन करते हैं । इस से इस विषय में जिस किसी वेदादि शास्त्रों के अर्थ जानने में कुशल, सभ्य, शिष्ट, आप्त विद्वान् को विरुद्ध जान पड़े, अपने मत का स्थापन और दूसरे के मत का खण्डन करने में सामर्थ्य हो वह स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यवहारों को स्थापित करे । इस से विरुद्ध मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता । इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ रहेंगे । वेदार्थ निश्चय के लिए जो ब्रह्मा से लेके जैमिनि मुनि पर्यन्त के बनाये ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थ हैं वे वादी और प्रतिवादी उभय पक्षवालों को माननीय होने के कारण माने जावेंगे । और जो इस सभा में सभासद् हों वे भी पक्षपात रहित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप तथा साधनों को ठीक-ठीक जानने, सत्य के साथ प्रीति और असत्य के साथ द्वेष रखने वाले हों, इनके विपरीत नहीं । दोनों पक्ष वाले जो कुछ कहें उस का शीघ्र लिखने वाले तीन लेखक लिखते जावें । वादी और प्रतिवादी अपने-अपने लेख के अन्त में अपने-अपने लेख पर हस्ताक्षर से अपना-अपना नाम लिखें । तब जो मुख्य सभासद् हों वे भी दोनों के लेख पर हस्ताक्षर करें । उन तीन पुस्तकों में से एक वादी, दूसरा प्रतिवादी को दिया जाय और तीसरा सब सभा सम्मति से किसी प्रतिष्ठित राजपुरुष की सभा में रक्खा जावे कि जिस से कोई अन्यथा न कर सके। जो इस प्रकार होने पर भी काशी के विद्वान् लोग सत्य और असत्य का निर्णय करके औरों को न करावेंगे तो उन के लिए अत्यन्त लज्जा की बात है, क्योंकि विद्वानों का यही स्वभाव होता है जो सत्य और असत्य को ठीक-ठीक जान के सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर दूसरों को कराके आप आनन्द में रहना औरों को आनन्द में रखना ।

—पण्डित भीमसेन शर्मा (देवेन्द्रनाथ २।२२१)

सत्य वचनों का प्रभाव

(बाबू उमाप्रसाद मुकर्जी दानापुर से प्रश्नोत्तर—३० अक्टूबर, १८७९)

जब स्वामी जी ३० अक्टूबर, सन् १८७९ को दानापुर पधारे तो बाबू उमाप्रसाद मुकर्जी हेडक्लर्क महकमा मैजिस्ट्रेट साहब ने प्रश्न किया—

बाबू–यद्यपि आप का कहना ठीक है परन्तु लोग हठ से न मानें तो आप क्या करेंगे ?

स्वामी जी–हमारा काम इतना ही है कि हमारे कथन को लोग कान में स्थान दें और जब पूर्ण रूप से सुन लेंगे तो वह सूई की भांति भीतर चुभ जायेंगे, निकाले से न निकलेंगे। यदि उन का मित्र या प्यारा एकान्त में पूछेगा तो स्पष्ट कह देंगे कि ठीक है। हठ या लोभ लालच से न कहे तो न कहे।

(लेखराम पृष्ठ ४९८)

आततायी को दण्ड देना धर्म

(बाबू अनन्तलाल दानापुर से प्रश्नोत्तर–नवम्बर, १८७९)

जब स्वामी जी दानापुर में थे तो एक दिन स्वर्गीय बाबू अनन्तलाल ने एक गुलाब का फूल तोड़ा। उसे देख कर स्वामी जी ने ललकार कर कहा कि भाई ! तूने बुरा किया। यह फूल कितनी वायु को सुगन्धित करता? तूने इसे तोड़कर इस के नियत कार्य से इसे रोका। इस के पश्चात् जब स्वामी जी भीतर आनकर बैठे तो स्वामी जी के हाथ में मक्खी उड़ाने का मोरछल था उक्त बाबू ने कहा कि फूल के तोड़ने में तो आपने पाप बतलाया परन्तु क्या आप के हाथ के मोरछल से मक्खी को कष्ट नहीं होता ? इस पर स्वामी जी ने कहा कि आततायी के रोकने में तुम्हारे जैसे मनुष्यों ने बाधा डाली जिस से भारत का नाश हो गया। तुम जैसे निर्बल और साहसहीन लोगों से रणभूमि में क्या हो सकता है ? (लेखराम पृष्ठ ५०१)

अनेक विषय

(भगत जीवनलाल कायस्थ मुजफ्फरनगर से प्रश्नोत्तर–सितम्बर, १८८०)

प्रश्न प्रथम दिन–अज्ञान की निवृत्ति और ज्ञान की प्राप्ति के विना दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति होती है या नहीं ?

उत्तर स्वामी जी–**सुख दो प्रकार के होते हैं**–एक विद्याजन्य, एक अविद्याजन्य। विद्याजन्य ऐसा सुख होता है जिस को सर्वसुख कहते हैं और अविद्याजन्य ऐसा होता है कि जैसा पशु आदि को। अज्ञान की निवृत्ति विना ज्ञान के नहीं होती है और न ज्ञान की निवृत्ति विना अज्ञान के। जीव के अल्पज्ञ होने से एक विषय में उस को ज्ञान होता है और अनेक विषय में अज्ञान। और जो सर्वज्ञ है उस में अज्ञान नहीं रहता और जो अल्पज्ञ है उस में ज्ञान और अज्ञान दोनों रहते हैं और जो सर्वज्ञ है वह अल्पज्ञ नहीं और

जो अल्पज्ञ है वह सर्वज्ञ नहीं । जो अल्पज्ञ है वह परिमित और एकदेशी होता है और जो सर्वज्ञ है वह अनन्त सर्वदेश वस्तु काल रहित है । जैसे आकाश सब मूर्तिमान् द्रव्यों में व्यापक है और मूर्तिमान् द्रव्य व्याप्य हैं । व्यापक उस को कहते हैं जो सर्वदेश स्थित हो और व्याप्य उस को कहते हैं जो एकदेशी हो । व्याप्य वस्तु व्यापक से भिन्न होती है । तीनों अवस्था उसकी व्यापक के साथ ही रहती हैं और जैसे मूर्तिमान् द्रव्य किसी अवस्था में आकाश नहीं हो सकते और आकाश मूर्तिमान् द्रव्य का स्वरूप भी नहीं हो सकता। इसी से दोनों वस्तु भिन्न हैं अर्थात् व्याप्य व्यापक दो वस्तु विशिष्ट रहती हैं, एक वस्तु विशिष्ट नहीं हो सकती ।

रात के ग्यारह बज गये इसलिए वार्तालाप पूर्ण न हुआ ।

दूसरे दिन बातचीत के बीच में स्वामी जी ने कहा कि इन पोप जी की लीला है । पार्वती ने अपने शरीर से मैल उतार कर बालक बनाकर रख दिया, द्वार पर युद्ध हुआ, पार्वती को विदित न हुआ, चूहे की सवारी और हाथी का शिर लगा दिया ।

मैंने कहा कि–इस में तो कुछ आश्चर्य नहीं प्रतीत होता क्योंकि पार्वती के तो हाथ थे और शरीर से मैल उतार कर पुतला बना सकती हैं परन्तु आप यह कहते हैं कि तीन वस्तुएँ अनादि हैं, जब स्थूल सृष्टि हुई तो निरवयव परमात्मा ने संयोग कर दिया । वह निरवयव परमाणु का संयोग विभाग कैसे कर सकता है ।

स्वामी जी ने कहा कि–तुम परमाणु जानते हो ? झरोके में जो दिखाई देते हैं उन को त्रसरेणु कहते हैं उन का ६०वां भाग परमाणु होता है । तुम उस परमाणु का अपने हाथों से संयोग-वियोग नहीं कर सकते । परमात्मा उन परमाणुओं की अपेक्षा अति सूक्ष्म है, उसकी दृष्टि में वे स्थूल हैं इसलिए वह संयोग-वियोग कर सकता है ।

इस पर मैंने यह निवेदन किया कि–जो परमेश्वर सूक्ष्म है वह व्यापक कैसे है ?

स्वामी जी ने कहा कि–जो सूक्ष्म होता है वह व्यापक होता है, स्थूल कहीं व्यापक नहीं होता । जैसे आकाश सूक्ष्म है इसलिये वह व्यापक है परन्तु पृथिवी स्थूल है सो व्यापक नहीं ।

मैंने कहा कि–यदि परमेश्वर की व्यापकता आप आकाश की भांति मानते हैं तो इस से जीव और ईश्वर के स्वरूप में अभिन्नता माननी पड़ेगी।

स्वामी जी–इस का पहले उत्तर हो चुका है । अभिन्नता कदापि नहीं, व्याप्यव्यापक भाव रहता है ।

श्राद्ध

(ला० निहालचन्द वैश्य रईस मुजफ्फरनगर से प्रश्नोत्तर– सितम्बर, १८८०)

ला० निहालचन्द जी वैश्य रईस मुजफ्फरनगर ने वर्णन किया कि स्वामी जी असौज के महीने में यहां पधारे और हमारे बंगले में नगर के पूर्व की ओर उतरे थे। मुन्शी डालचन्द हेडमास्टर जिला स्कूल और ला० बद्रीप्रसाद तहसीलदार, बाबू बैजनाथ मुन्सिफ और मैं बुलाने में सम्मिलित थे। उन दिनों कनागत थे और इसी विषय में मैंने स्वामी जी से कुछ पूछा था क्योंकि नगर के कुछ पण्डित मेरे पास आये और कहा कि चलो हम चलके स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें। परन्तु मैंने जब उन से स्वयं बातचीत की तो वे मेरे ही प्रश्नों का उत्तर न दे सके परन्तु अन्त में उन के अनुरोध पर मैं स्वामी जी के पास गया। इन में ला० बद्रीप्रसाद जी भी आ गये और स्वामी जी से बातचीत आरम्भ की। ला० बद्रीप्रसाद जी ने स्वामी जी से कहा कि आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं परन्तु मैंने कहा कि–मैं न शास्त्रार्थ करना चाहता हूं और न शास्त्रार्थ की योग्यता रखता हूं परन्तु केवल शिष्यरूप में समझना चाहता हूं। उन्होंने कहा कि श्राद्ध का फल उस के पूर्वजों को नहीं पहुंच सकता क्योंकि प्रथम तो पितृ विदित नहीं कि किस लोक में हैं।

उस के उत्तर में मैंने निवेदन किया कि यदि यह सिद्धान्त स्वीकार किया जावे तो दान का देना भी निष्फल है। इस का फल हम को मरने के पश्चात् किस प्रकार मिलेगा।

उत्तर–वह जीव का अपना कर्म है और कर्म कर्त्ता के साथ रहता है, नष्ट नहीं होता परन्तु मृतक का श्राद्ध दूसरे का कर्म है और जब उस का सम्बन्ध पूर्णतया संसार से टूट चुका तब किया गया है, **इसलिए निष्फल है और शास्त्र में भी ऐसा ही लिखा है।** और इस के अतिरिक्त यदि यह माना जावे कि पितरों को हमारे दान या प्रार्थना से अच्छा लाभ पहुंच गया है तो यह भी मानना पड़ेगा कि जो उस के शत्रु शाप देते हैं या उस के बेटे उस के नाम से छल करते हैं, उस का भी प्रभाव अवश्य होगा। तो इस से यह सिद्ध हुआ कि हमारी प्रार्थना से स्वर्ग को और शाप से नरक को बार-बार आना जाना पड़ेगा।

इस पर मैंने यह कहा कि–उन को पुण्य का फल मिलना चाहिए, पाप का नहीं। इसलिए कि जिस समय वह व्यक्ति मरा तो पाप का फल अवश्य निश्चित होगा, इसलिए शाप का प्रभाव नहीं हो सकता। जैसे कि

अधिकार युक्त न्यायाधीश जब एक अपराध का दण्ड दे चुकता है तो चाहे अपराधी कितनी ही पुकार क्यों न करे परन्तु दण्ड में न्यूनता या अधिकता नहीं हो सकती । पुण्य का फल किसी मृतक पितृ को इसलिए लिखा है कि जो धन मृतक ने इकट्ठा किया था वही पुण्य कर्म करने में उस की सन्तान व्यय करती है । उदाहरणार्थ उसने अपने धन के इकट्ठा करने में यदि कोई अधर्म भी किया हो और उस का दण्ड भी निश्चित हो चुका हो तो चूंकि उस के पश्चात् उस की सन्तान ने अच्छे काम में लगाया इसलिए उस का फल उस को मिलना चाहिये ।

उत्तर—यह ठीक नहीं है कि पाप का फल निश्चित हो चुका । यदि निश्चित हो चुका तो भी कर्म के अनुसार दोनों निश्चित होंगे, पहले पिछले की कोई शर्त नहीं । यह ठीक है कि दण्ड न्यूनाधिक नहीं हो सकता तो फिर बेटे के दान करने से उस नरकगामी को क्या लाभ हो सकता है । अब रही मृतक के एकत्रित हुए धन के व्यय की बात तो यदि वह पुण्य में व्यय करता है तो और पाप में व्यय करता है तो दोनों प्रकार व्यय करने वाले का हानि-लाभ है, किसी मृतक का उस से कोई सम्बन्ध नहीं । अन्यथा यदि पुण्य कार्य में व्यय करने से मृतक को लाभ है तो पाप कार्य में व्यय करने से हानि भी अवश्य होगी क्योंकि जो पाप उस धन से लड़का पीछे करता है, यह असम्भव है कि उस का प्रभाव न हो । और चूंकि बाप के एकत्रित किये हुए धन से प्रायः सन्तान दुराचारी होती है, इसलिए यह सिद्धान्त ही अत्यन्त बुरा प्रभाव डालने वाला है ।

फिर मैंने शीघ्र जाना था, अधिक बातचीत न हुई । चलते समय भी स्वामी जी कहते थे कि इस बात का पूर्ण निर्णय नहीं हुआ । उस दिन से स्वामी जी का प्रेम मेरे हृदय में घर कर गया । (लेखराम पृष्ठ ५१२-५१३)

शास्त्रार्थ का बहाना

(पादरी गुल्बर्ट साहब से देहरादून में शास्त्रार्थ—अक्टूबर-नवम्बर, १८८०)

स्वामी जी ७ अक्टूबर, सन् १८८० से २० नवम्बर, १८८० तक देहरादून ठहरे । इसी बीच में एक दिन एक पादरी साहब जिन का नाम गुल्बर्ट और उपाधि मैक्मासर है, कुछ ईसाइयों के साथ शास्त्रार्थ के लिए आये । और आते ही स्वामी जी से यह बातचीत आरम्भ की कि वेद के ईश्वरीय वचन होने में तुम्हारे पास क्या युक्ति है ? चूंकि स्वामी जी उन के ढंग से समझ गये थे कि यह सब छेड़छाड़ है, कुछ सत्य के निर्णय पर इस बातचीत का आधार नहीं । इसलिए उनके प्रश्न के उत्तर में इस प्रकार कहा—"कि इञ्जील

के ईश्वरीय वचन होने का आप के पास क्या प्रमाण है ?''

यह सुनकर पादरी साहब कहने लगे कि वाह ! पहले तो हमारा प्रश्न है ।

उधर स्वामी जी ने कहा कि वाह ! मुझ को भी तो पहले उत्तर लेने का ध्यान है । इस पर पादरी साहब उठकर चलने लगे । तब स्वामी जी ने कहा कि पादरी साहब ! आप तो शास्त्रार्थ करने को आये थे, इतना शीघ्र क्यों भागते हैं ?

पादरी साहब ने इस पर यह कहा कि जब आप उत्तर ही नहीं देते तो फिर हम बैठकर क्या करें ? इस पर स्वामी जी ने कहा कि बहुत अच्छा पहले मैं ही उत्तर दूंगा, परन्तु उसके पश्चात् इञ्जील के विषय में प्रश्न करूँगा और आप से उत्तर लूंगा । इस पर भी पादरी साहब न जमे और उठकर भागने को हुए । तब स्वामी जी ने कहा कि पादरी साहब ! आप पहले केवल एक नहीं प्रत्युत दो-तीन प्रश्न कर लीजिये परन्तु उत्तर देने के पश्चात् मेरे आक्षेपों को सुनिये परन्तु यह बात भी पादरी साहब को बुरी लगी और उठकर चलने को उद्यत हुए । तब स्वामी जी ने यह कहा कि अच्छा पहले आप पांच प्रश्न तक वेद पर कर लीजिये और जब उन के उत्तर मैं दे चुकूं फिर मुझ को अपनी इञ्जील पर आक्षेप करने दीजिये परन्तु यह भी पादरी साहब को स्वीकार न हुआ और पूर्ववत् डरते रहे । तब स्वामी जी ने कहा कि आप इञ्जील पर आक्षेपों के होने से क्यों इतना घबराते हैं ? लीजिये पहले आप वेद पर दस प्रश्न तक कर लीजिये और उत्तर सुनने के पश्चात् मुझ को इञ्जील पर आक्षेप करने की आज्ञा दीजिये ताकि सुनने वालों को आनन्द आवे और सत्य और झूठ की वास्तविकता प्रकट हो जावे । भला यह कहां की रीति है कि आप अपनी कहे जावें और दूसरे की न सुनें । इस पर पादरी साहब को भीड़ की लज्जा ने रोका और तब उन्होंने विवश होकर कहा कि बहुत अच्छा परन्तु जिस समय इञ्जील पर आक्षेप किये जाने की घड़ी आई और लिखने की अवस्था उत्पन्न हुई तब तो पादरी साहब की विचित्र दशा हुई अर्थात् वही मुसलमान लोगों की सी रट लगाये जाते थे कि जब तक हम अपने प्रश्न के उत्तर से सन्तोष प्राप्त न कर लेंगे और उस की स्वीकृति न दे देंगे तब तक हम तुम को न बोलने देंगे और न तुम्हारी सुनेंगे ।

यह देखकर स्वामी जी ने कहा कि आप अपने प्रश्नों के विषय में तो कहते हैं परन्तु मेरे प्रश्नों के विषय में भी इस बात को स्वीकार करते हैं ? तो बस ''नहीं'' के अतिरिक्त और क्या उत्तर था क्योंकि यह सारा बखेड़ा

तो अपना बड़प्पन छौंकने और झूठी कीर्ति प्राप्त करने के अभिप्राय से था। शास्त्रार्थ से तो पूर्णतया इन्कार ही था । जब स्वामी जी ने पादरी साहब का अन्तिम ''नहीं'' का उत्तर सुना तो यह कहा कि पादरी साहब ! आप बिल्कुल न्याय से काम नहीं लेते, केवल शास्त्रार्थ का नाम करते हैं परन्तु आप की यह चतुराई कि कहीं पोल न खुल जाये, व्यर्थ गई और आप की सारी वास्तविकता प्रकट हो गई क्योंकि आप उन नियमों को जो शास्त्रार्थ में आवश्यक होते हैं, स्वीकार नहीं करते और न और की सुनना चाहते हैं । देखो मैं पहले भी कह चुका हूं और फिर भी कहता हूं कि प्रथम आप वेद पर एक से लेकर दश तक आक्षेप कीजिये और मुझ से उत्तर लीजिये और तत्पश्चात् मुझ को अपनी इञ्जील पर आक्षेप करने दीजिये और उत्तर प्रदान कीजिये । और जब आप मेरे आक्षेपों का उत्तर दे चुकें तो फिर आप चाहें और नये दश प्रश्न मुझ पर कीजिये, चाहें अपने पहले दश प्रश्नों में से यदि किसी में कोई सन्देह शेष रहे और मेरे उत्तर से इच्छानुसार सन्तोष न हो तो वह पूछिये और फिर उत्तर सुनिये ताकि सभा में उपस्थित लोग भी जान लें कि सत्य क्या है और असत्य क्या है ?

सारांश यह कि जब पादरी साहब के पास कोई और बहाना अवशिष्ट न रहा तो यह कहा कि या तो आप केवल मेरा ही सन्तोष कीजिये और अपने आक्षेपों को रहने दीजिये अन्यथा मैं जाता हूं, आप बैठे रहिये ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पादरी साहब ! इस सभा में उपस्थित लोग तो आपके बार-बार भागने और किसी शर्त पर न जमने से भली-भांति जान ही गये हैं कि आप इञ्जील पर आक्षेप होने से थर-थर कांपते हैं और पीछा छुड़ाने के लिये बार-बार कूदते फांदते फिरते हैं । अब आप जानें और आपका काम । अच्छा तो यही था कि आप शास्त्रार्थ करते और अपने जी की भड़ास निकाल लेते । यह सुनकर पादरी साहब ने कठोर शब्दों में कहा कि बस आप उत्तर देते ही नहीं, मैं जाता हूं । इस पर स्वामी जी ने भी कहा कि—आप प्रश्न का उत्तर लेते ही नहीं क्योंकि आप का तो प्रयोजन कुछ और ही है, शास्त्रार्थ का तो केवल नाम है । अच्छा जाइये, मुझ को इस समय काम है । (लेखराम पृष्ठ ५१८-५१९)

राधा स्वामी मत

(राधास्वामी मत के साधुओं से आगरा में प्रश्नोत्तर—नवम्बर, १८८०)

स्वामी जी के आगरा निवास के समय एक दिन राधास्वामी मत के

५-७ पंजाबी साधु आये, जिनमें स्त्रियां और पुरुष दोनों सम्मिलित थे। और प्रश्न किया कि कोई गुरु के उपदेश और सहायता के विना संसार-सागर से पार नहीं हो सकता।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि गुरु की शिक्षा तो आवश्यक है परन्तु जब तक कोई चेला अपना आचार ठीक न करे कुछ नहीं हो सकता।

उन्होंने प्रश्न किया कि—**ईश्वर के दर्शन कैसे हो सकते हैं ?**

स्वामी जी ने कहा कि जैसे तुम मूर्खता से ईश्वर के दर्शन करना चाहते हो उस प्रकार नहीं हो सकते। एक प्रश्न उन का यह था कि ईश्वर तो भक्त के वश में है।

स्वामी जी ने कहा कि—भक्ति तो ईश्वर की आवश्यक है परन्तु पहले यह समझ लो कि भक्ति चीज क्या है। विना किसी पुरुषार्थ के किये कोई वस्तु स्वयमेव प्राप्त नहीं हो सकती और जिस प्रकार से तुम भक्ति करना चाहते हो ऐसे बहुत से पथ लोगों के बिगाड़ने के लिए हुए। इन से इस लोक या परलोक को कोई लाभ नहीं हो सकता।

मूर्तिपूजा पर भी बात चली। उन्होंने कहा कि हम और हिन्दुओं से अच्छे हैं।

स्वामी जी ने कहा—नहीं, वे रामचन्द्र और कृष्णादि उत्तम पुरुषों को देवता और अवतार मानते हैं, तुम गुरु को परमेश्वर से बढ़कर मानते हो। **इसलिये तुम उन से किसी प्रकार अच्छे नहीं, प्रत्युत बुरे हो।**

उन्होंने कहा कि—वेद के पढ़ने में बहुत समय नष्ट होता है परन्तु उस से कुछ भक्ति प्राप्त नहीं होती।

स्वामी जी ने कहा कि—**जो पुरुषार्थ कुछ नहीं करता और भिक्षा मांगकर पेट पालना चाहता है उसे वेद का पढ़ना बहुत कठिन है।**

ये लोग कुछ भी विद्वान् नहीं थे। (लेखराम पृष्ठ ५२५-५२६)

पुनर्जन्म

(तुफैल अहमद कोतवाल आगरा से प्रश्नोत्तर—नवम्बर, १८८०)

२५ नवम्बर, सन् १८८० से १० मार्च, सन् १८८१ तक स्वामी जी आगरा में ठहरे। इसी बीच में एक दिन मौलवी तुफैल अहमद नगर कोतवाल ने पुनर्जन्म पर आक्षेप किया कि यह गलत प्रतीत होता है, इस के मानने से कई आरोप उत्पन्न होते हैं। ईश्वर ऐसा अन्यायी नहीं कि जीवों को बार-बार उत्पन्न करे और उनके द्वारा अनुचित अपराध किये जावें। उदाहरणार्थ एक

व्यक्ति मर गया, जो इस समय उस की बेटी है अगले जन्म में वही उस की पत्नी होवे ।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि बेटी और बाप का सम्बन्ध शरीर का है—आत्मा का नहीं । चूंकि आत्मा का किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इस से यह आक्षेप आत्मा पर लागू नहीं हो सकता ।

इस पर उन की शान्ति हो गई और वे फिर कोई उत्तर न दे सके ।

(लेखराम पृष्ठ ५२४)

अग्नि का अर्थ परमात्मा

(एक पादरी साहब ने आगरा में स्वामी जी से प्रश्न किया—दिसम्बर सन् १८८०)

मुन्शी गिरधरलाल साहब वकील ने वर्णन किया कि—

एक पादरी साहब हमारे मकान पर आये थे । उन्होंने प्रश्न किया कि आपने वेदभाष्य में जो अग्नि को परमेश्वर कहा है, वहां अग्नि का अर्थ परमेश्वर नहीं हो सकता । स्वामी जी ने कहा कि—प्रथम तो व्याकरण के अनुसार इस शब्द का अर्थ परमेश्वर हो सकता है । इस पर उन की कोई शंका शेष न रही ।

(लेखराम पृष्ठ ५२४)

नास्तिक तथा जैन मत

(आत्माराम जी पूज लुधियाना से पत्र-व्यवहार द्वारा प्रश्नोत्तर—नवम्बर, १८८० से जनवरी, १८८१)

नोट—जैनियों के आचार्य पूज्यवर आत्माराम जी पञ्चायत सराओगियां, लुधियाना और ठाकुरदास जी रईस गूजरांवाला ने स्वामी जी महाराज से पत्र द्वारा कुछ प्रश्न पूछे थे । उन के उत्तर स्वामी जी ने अपने पत्र मिति ६ नवम्बर, सन् १८८० मन्त्री आर्यसमाज देहरादून के द्वारा आर्यसमाज गूजरांवाला में भिजवा दिये, जिन्हें १३ नवम्बर, सन् १८८० को प्रधान आर्यसमाज गूजरांवाला ने प्रश्नकर्त्ताओं के पास भेज दिया । उपप्रधान आर्यसमाज ने प्रश्नकर्त्ताओं को निम्नलिखित पत्र भी अपनी ओर से लिखा—

"श्रीयुत पण्डित आत्माराम जी और ला० ठाकुरदास जी को नमस्ते! देहरादून से यहां एक पत्र उन प्रश्नों के उत्तर का जो आप सज्जनों ने स्वामी जी से किये थे, इस प्रयोजन से पहुंचा था कि इसकी एक प्रतिलिपि आपके पास भेजी जावे, सो प्रतिलिपि आपके समीप भेजी जाती है और यह भी प्रकट

किया जाता है कि इस की एक प्रतिलिपि स्वामी जी की आज्ञानुसार लुधियाना के श्रावक सज्जनों के पास भी भेजी गई है । मुन्शी प्रभुदयाल जी से आपको विदित हुआ होगा ।''

मिति १३ नवम्बर, सन् १८८० नारायणकृष्ण उपप्रधान आर्यसमाज गूजरांवाला ।

प्रश्नोत्तर

(पूज्यवर आत्माराम जी पञ्चायत सराओगियां लुधियाना और ठाकुरदास जी रईस गूजरांवाला जैन मतानुयायी सज्जनों के प्रश्नों के उत्तर)

प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश में जो श्लोक लिखे हैं जैनियों के किस शास्त्र व ग्रन्थों के हैं ?

उत्तर—ये सब श्लोक बृहस्पति मतानुयायी चार्वाक जिनके मत का दूसरा नाम लोकायत है और वे जैन मतानुयायी हैं, उन के मतस्थ शास्त्र व ग्रन्थों के हैं ?

श्लोकों का भाष्य निम्नलिखित है—

(१) *जब तक जिये सुख से जिये, मृत्यु गुप्त नहीं, भस्म हुए पीछे शरीर में फिर आना कहां ? (इसी प्रकार इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत अभ्याणक का मत है ।

(२) अग्निहोत्र, तीन वेद, त्रिपुण्ड्र भस्म लगाना, यह निर्बुद्धि और साहस रहित लोगों की जीविका बृहस्पति ने रची है ।

(३) अग्नि उष्ण तथा जल शीतल और छूने वाली ठण्डी वायु किसी ने इनके बनाने वाले को देखा ? ये अपने स्वभाव से ऐसे हैं ।

(४) न स्वर्ग, न नरक, न कोई और मोक्ष, वर्ण और न आश्रम के काम फलदायक हैं ।

(५) अग्निहोत्र, तीन वेद, त्रिपुण्ड्र, भस्म लगाना, यह निर्बुद्धि तथा साहसरहित लोगों की जीविका ब्रह्मा ने बनाई है ।

(६) यदि पशु ज्योतिष्टोम यज्ञ में मारे जाने से स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने बाप को इस में क्यों नहीं मार डालता ?

*** ये श्लोक जो सत्यार्थप्रकाश प्रथमावृत्ति पृष्ठ ४०२, ४०३ पर हैं । ये समस्त श्लोक स्वामी जी से पहले सर्वशास्त्र-संग्रह में सायणाचार्य ने और उन की टीका में तारानाथ वाचस्पति ने लिखे हैं, जो जीवानन्द प्रेस में प्रकाशित हो चुके हैं । (देखो उसका प्रारम्भ) ।**

(७) मरे हुए जीवों को यदि श्राद्ध तृप्ति का कारण है तो मार्ग में लोगों को भोजन जलादि ले जाना व्यर्थ है ।

(८) स्वर्ग में बैठा हुआ यदि दान से तृप्त होता तो कोठे पर बैठा हुआ क्यों न होता ?

(९) जब तक जिये सुख से जिये, ऋण लेकर घृत पीये, भस्म हुए पीछे शरीर में फिर आना कहां ?

(१०) यदि शरीर से निकल कर जीव परलोक को जाता है तो बन्धुओं के प्रेम से फिर लौटकर क्यों नहीं आता ?

(११) यह सब जीवन-निर्वाह का साधन ब्राह्मणों ने बना लिया है। मरे हुए जीवों की क्रियादि और कुछ नहीं है ।

(१२) घोड़े का लिङ्ग स्त्री ग्रहण करे भांडों ने इस प्रकार की बातें बना रखी हैं ।

(१३) तीन वेद के बनाने वाले भांड, धूर्त निशाचर हैं और जर्फरी और तुर्फरी शब्द पण्डितों के कल्पित हैं ।

(१४) मांस खाना राक्षसों का काम है ।

इसी प्रकार ये सब श्लोक इस बात को प्रकट कर रहे हैं कि जैन मत के सम्प्रदायों ने कठोर निन्दा वेद मत की की है और जो कुछ मैंने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है, वह सब ठीक-ठीक है ।

"पहले पत्र के उत्तर में ला० ठाकुरदास आदि को लिख भेजा गया था कि जैन मत की कई शाखाएं हैं । यदि आप प्रत्येक शाखा के मन्त्र सिद्धान्त जानते होते तो आपको सत्यार्थप्रकाश के लेख में सन्देह कभी न होता । आप लोगों के प्रश्नों के उत्तर में विलम्ब इसलिए हुआ कि यदि कोई सज्जन सभ्य विद्वान् जैसा कि श्रेष्ठ पुरुषों को लेख करना चाहिये वैसा करता है तो उसी समय उत्तर भी लिखा दिया जाता है क्योंकि **सभ्यतापूर्वक लेख के उत्तर में स्वामी जी विलम्ब कभी नहीं करते ।** देखिये ! अब पञ्चायत सराओगियां लुधियाना ने योग्य लेख किया तो स्वामी जी ने उत्तर भी शीघ्र लिखवा दिया और अब भी लिख दिया गया है कि जितने सत्यार्थप्रकाश विषयक आप लोगों के प्रश्न हों, सब लिखकर भेज दीजिये ताकि सब के उत्तर एक संग लिख दिये जावें । जैसा स्वामी जी ने लिखवाया था कि आत्माराम जी को जैन मत वाले शिरोमणि पण्डित गिनते हैं । इनका स्वामी जी का पत्र-लेखानुसार समागम होता तो सब बातें शीघ्र ही पूरी हो जातीं परन्तु ऐसा न हुआ । और यह भी शोक की बात है कि हम ने इस विषयक रजिस्टरी चिट्ठी पञ्चायत

सराओगियां लुधियाना को भेजी, उस का उत्तर भी अब तक नहीं मिला न प्रश्न भेजे । किन्तु जो ठाकुरदास ने एक बात लिख भेजी थी कि यह श्लोक जैनमत के किस शास्त्र और किस ग्रन्थ के अनुसार है और जो बात करने के योग्य आत्माराम जी हैं उन का शास्त्रार्थ करने में निषेध लिख भेजा और ठाकुरदास जी की यह दशा है कि प्रथम चिट्ठी में संस्कृत और भाषा के लिखने में अनेक दोष लिखे हैं । अब आप लोग धर्म न्याय से विचार लीजिये कि क्या यह बात ऐसी होनी योग्य है कि जब-जब चिट्ठी ठाकुरदास ने लिखी तब-तब स्वामी जी के पास और उस में जो बात शिष्ट पुरुषों के लिखने योग्य न थी, सब लिखी और जो योग्य है अर्थात् आत्माराम जी उस को बात करने और लिखने वा चिट्ठी पर हस्ताक्षर करने से अलग रखते हैं और एक यह कि ठाकुरदास जी से स्वामी जी का सामना कराते हैं क्या ऐसी बात करनी शिष्टों को योग्य है ? अब अधिक बात करते हो तो आप अपने मत के किसी योग्य विद्वान् को प्रवृत्त कीजिये कि जिस से हम और आप को सत्य और झूठ का निश्चय होकर बहुत उत्तम ज्ञान हो सके । बुद्धिमानों के सामने अधिक लिखना आवश्यक नहीं किन्तु अपनी सज्जनता उदारता, अपक्षता तथा बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता में थोड़े लिखने से बहुत जान लेते हैं ।
मिति कार्तिक सुदि ४, शनिवार, संवत् १९३७ तदनुसार ६ नवम्बर सन् १८८०

कृपाराम मन्त्री, आर्यसमाज—देहरादून

अपने हस्ताक्षरों से आत्माराम जी ने जो प्रश्न भेजे थे—१४ नवम्बर सन् १८८० को उन के नाम स्वामी जी ने यह पत्र भेजा—

पूज्यवर आत्माराम जी, "मिति १४ नवम्बर सन् १८८०"

नमस्ते । पत्र आप का मिति नवम्बर सन् १८८० का लिखा हुआ १० नवम्बर सन् १८८० को सायंकाल को मेरे पास पहुंचा, देखकर आनन्द हुआ। अब आपके प्रश्नों का उत्तर विस्तारपूर्वक लिखता हूं ।

(समाचार पत्र "आफताबे पंजाब," १३ दिसम्बर, १८८०)

प्रश्न नं० १—सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १२ पृष्ठ ३९६, पंक्ति १६ में लिखा है कि जब प्रलय होता है तो पुद्गल जुदी-जुदी हो जाते हैं ऐसा नहीं है।

उत्तर—मैंने ठाकुरदास जी के उत्तर में एक पत्र आर्यसमाज गूजरांवाला के द्वारा भेजा था, जो आपके पास भी पहुंचा होगा । उस में यह बतलाया गया है कि जैन और बौद्ध दोनों एक ही हैं चाहे उन को बौद्ध कहो चाहे जैन कहो । कुछ स्थानों में महावीरादि तीर्थङ्करों को बुद्ध और बौद्धादि शब्दों से पुकारते हैं और कई स्थानों पर जिन, जैन, जिनवर, जिनेन्द्रादि नामों से

बोलते हैं। जिन को चार्वाक बुद्ध की शाखाओं में कहते हैं उन्हें लोग बुद्ध, स्वयं बुद्ध और चारबोधादि कहते हैं। आप अपने ग्रन्थों में देख लीजिये (ग्रन्थ विवेकसार, पृष्ठ ६५, पंक्ति १३) बिध, बोध–यह एक सिद्ध अनेक सिद्ध भगवान् हैं। (पृष्ठ ११३, पंक्ति ७)

चारबुद्ध की कथा (पृष्ठ १३७, पंक्ति ८) प्रत्येक बुद्ध की कथा (पृष्ठ १३८, पंक्ति २१) स्वयं बुद्ध की कथा। (पृष्ठ १५२, पंक्ति १४)

चार बुद्ध समकाल मोक्ष को गये। इसी प्रकार और भी आपके ग्रन्थों से कथा स्पष्ट विद्यमान है जिनको आप या और कोई जैन श्रावक विरुद्ध न कह सकेंगे।

और ठाकुरदास जी पहली चिट्ठी में (उन श्लोकों के साथ जो मैंने इस से पहले पत्र में लिखकर आपके पास भिजवाये हैं) आप लोग कई श्लोक स्वीकार भी कर चुके हैं। उस चिट्ठी की प्रतिलिपि मेरठ में है और आप के पास भी होगी। कल्पभाष्य भूमिका (जिस में राजा शिवप्रसाद जी ने अपने जैनमतस्थ पितादि पूर्व पुरुषों की परम्परा का वृत्तान्त लिखा है, उन की साक्षी भी लिख भेजी और इतिहासमितिर नाशक खण्ड ३, पृष्ठ ८, पंक्ति २१ से लेकर पृष्ठ ९ की पंक्ति ३२ तक) स्पष्ट लिखा है कि जैन और बौद्ध एक ही के नाम हैं।

कई स्थानों पर महावीरादि तीर्थङ्करों को बौद्ध कहते हैं, उन्हीं को आप लोग जैन और जिनादि कहते हैं। अब रहे बौद्ध की शाखाओं के भेद जो चार्वाक अभ्याणकादि हैं। जैसा कि आप के यहां श्वेताम्बर, दिगम्बर, ढूंढिया आदि शाखाओं के भेद हैं कि उन में कोई शून्यवाद, कोई क्षणिक, कोई जगत् को नित्य मानने वाला, कोई अनित्य मानने वाला, कोई स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति और प्रलय मानते हैं और कोई आत्मा को पांच तत्त्वों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और उनके मेल से) बनी हुई मानते हैं और उस का नाश हो जाना भी मानते हैं। (देखो रत्नावली ग्रन्थ, पृष्ठ ३२, पंक्ति १३ से लेकर पृष्ठ ४३, पंक्ति १० तक) कि उस स्थान पर सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय ही लिखा है या नहीं।

इसी प्रकार चार्वाकादि भी कई शाखावाले जिस को आप पुद्गल कहते हैं, उस को अलूदादि नाम से लिखते हैं और उन के आपस में मिलने से जगत् की उत्पत्ति और अलग होने से प्रलय होना ही मानते हैं और वे जैन और बौद्ध से पृथक् नहीं हैं प्रत्युत जैसे पौराणिक मत में रामानुजादि वैष्णवों की शाखा और पाशुपतादि शैवों की और वाममार्गियों की दस महदायास

शाखाएं, और ईसाइयों में रोमन कैथोलिक आदि और मुसलमानों में शिया और सुन्नी आदि शाखाओं के कतिपय भेद हैं और इतने पर भी वेद और बाईबिल और कुरान के सम्प्रदाय में वे एक ही समझे जाते हैं। वैसे ही आप के अर्थात् जैन और बौद्ध मत की शाखाओं के भेद यद्यपि अलग-अलग लिखे जा सकते हैं परन्तु जैन या बौद्ध मत में एक ही हैं।

आपने बौद्ध अर्थात् जैन मत के प्रत्येक सम्प्रदाय के तन्त्र सिद्धान्त अर्थात् भेद वर्णन करने वाले ग्रन्थ देखे होते तो सत्यार्थप्रकाश में जो लेख उत्पत्ति और प्रलय के विषय में है उस पर शङ्का कभी न करते।

प्रश्न नं० २—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३९७, पंक्ति २४

(प्रश्न) "मनुष्यादिकों को ज्ञान है, ज्ञान से वे अपराध करते हैं, इस से उन को पीड़ा देना कुछ अपराध नहीं"—यह बात जैनमत में नहीं।

उत्तर—ग्रन्थ विवेकसार में पृष्ठ २२८, पंक्ति १० से लेकर पंक्ति १५ तक देख लीजिये, क्या लिखा है अर्थात् गणाभ्योग और स्वजनादि समुद्री की आज्ञा जैसे विष्णुकुमार ने कुछ की आज्ञा से बौद्धरूप रचना करके निमिची नाम पुरोहित को कि वह जिन का विरोधी था, लात मारकर सातवें नरक में भेजा और ऐसी ही और बातें।

प्रश्न नं० ३—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३९९, पंक्ति ३। और उस के ऊपर (अर्थात् पद्मशिला पर) बैठ के चराचर का देखना।

उत्तर—पुस्तक रत्नसार भाग पृष्ठ २३, पंक्ति १३ से लेकर पृष्ठ २४ पंक्ति २४ तक देख लीजिये कि वहां महावीर और गौतम की पारस्परिक चर्चा में क्या लिखा है।

प्रश्न नं० ४—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०१, पंक्ति २३। और उनके मत में न हुए वे श्रेष्ठ भी हुए तो भी उस की सेवा अर्थात् जल तक भी नहीं देते।

उत्तर—पुस्तक विवेकसार पृष्ठ २२१, पंक्ति ३ से लेकर पंक्ति ८ तक लिखा है, देख लीजिये कि अन्य मत की प्रशंसा या उन का गुणकीर्तन, नमस्कार प्रणाम करना या उन से कम बोलना या अधिक बोलना या उन को बैठने के लिए आसनादि देना या उन को खाने-पीने की वस्तु, सुगन्ध, फूल देना या अन्य मत की मूर्ति के लिए चन्दन पुष्पादि देना, ये छः बातें नहीं करनी चाहियें।

प्रश्न नं० ५—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०१, पंक्ति २७। किन्तु साधु जब आता तब जैनी लोग उस की दाढ़ी मूंछ और सिर के बाल सब नोच लेते हैं।

उत्तर—ग्रन्थकल्प भाष्य पृष्ठ १०८, पंक्ति ४ से लेकर ९ तक देख लीजिये

और प्रत्येक ग्रन्थ में दीक्षा के समय (अर्थात् चेला बनाने के समय) पांच मुट्ठी बाल नोचना लिखा है । यह काम अपने हाथ से अर्थात् चेले या गुरु के हाथ से होता है और अधिकतर ढूंढियों में है ।

प्रश्न नं० ६—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०२, पंक्ति २० से लेकर जो श्लोक जैनियों के बनाये लिखे हैं वे जैनमत के नहीं ।

उत्तर—मैं इस का उत्तर इस से पहले पत्र में लिख चुका हूं (मिति कार्तिक सुदि ४, शनिवार) । आपके पास पहुंचा होगा, देख लीजिये ।

प्रश्न नं० ७—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०३, पंक्ति ११ । अर्थ और काम दोनों पदार्थ मानते हैं ।

उत्तर—यह मत जैनधर्म से सम्बन्धित सम्प्रदाय चार्वाक का है जिस ने ऐसे-ऐसे श्लोक कि जब तक जिये, सुख से जिये, मृत्यु गुप्त नहीं, भस्म होकर शरीर में फिर आना नहीं आदि आदि अपने मत के बना लिये हैं। इसी प्रकार नीति और कामशास्त्र के अनुसार अर्थ और काम दो ही पदार्थ पुरुषार्थ और विधि से माने गये हैं ।

यहां संक्षेप से आपके प्रश्नों का उत्तर दिया गया है क्योंकि पत्रों के द्वारा पूरी व्याख्या नहीं हो सकती थी । जब कभी मेरा और आपका समागम होवे तब आप को मैं ग्रन्थों के प्रमाण और युक्तियों के साथ ठीक-ठीक निश्चय करा सकता हूं । आप को और भी जो कुछ सन्देह सत्यार्थप्रकाश के १२वें समुल्लास में होवें (मेरठ आर्यसमाज के द्वारा) लिखकर भेज दीजिये । सब का ठीक उत्तर दे दिया जावेगा । अब मैं यहां थोड़े दिन तक रहूंगा और यदि आप अम्बाला तक आ सकें तो मिति १७ नवम्बर, सन् १८८० तक प्रातः आठ बजे से पहले-पहले देहरादून में और उसके पश्चात् आगरे में मुझ को तार द्वारा सूचना देनी चाहिये कि मैं आप से शास्त्रार्थ अर्थात् पारस्परिक बातचीत के लिए वहां पहुंच सकूं । बुद्धिमान् व्यक्ति के लिए इतना ही पर्याप्त है, अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं । मिति कार्तिक सुदि १३ रविवार, संवत् १९३७ । **हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती** (देहरादून)

फिर पं० आत्माराम जी पूज ने ८ माघ, संवत् १९३७ तदनुसार १९ जनवरी, सन् १८८१ को एक पत्र स्वामी जी के पास भेजा । जिस में कुछ बातों को माना और कई बातों पर फिर आक्षेप किये । स्वामी जी ने उस का उत्तर भेजा ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का दूसरा पत्र

मिति २१ जनवरी, सन् १८८१

आनन्द विजय आत्माराम जी !

नमस्ते । आपका पत्र ८ माघ का लिखा हुआ मेरे पास पहुंचा । लिखित वृत्तान्त विदित हुआ । मेरे प्रश्नों के उत्तर में जो आपने लिखा है कि **बौद्ध और जैन एक मत के नाम मानने से हमारी कुछ मानहानि नहीं**, इस को पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई । यही सज्जनों का काम है कि सत्य को मानें और असत्य को न मानें परन्तु यह बात जो आपने लिखी है कि "योगाचारादि चार सम्प्रदाय जैन बौद्ध मत के हैं सो वह बौद्धमत जैनमत से एक पृथक् शास्त्र का है।" इस का उत्तर मैं आपके पास भेज चुका हूं कि मत में शाखाओं का भेद थोड़ी बातें पृथक् होने से होता है परन्तु मत की दृष्टि से शाखाएं एक ही मत की होती हैं । देखिये कि उन ही नास्तिकों में चार्वाकादि नास्तिक हैं। और जो आप उन का इतिहास और जीवनचरित्र पूछते हैं, सो उस का उत्तर भी मैं दे चुका हूं अर्थात् इतिहास-तिमिरनाशक के तीसरे अध्याय में देख लीजिये ।

और आप जिन बौद्धों को अपने मत से पृथक् कहते हैं, वे आप के सम्पद्राय से चाहे पृथक् हों परन्तु **मत की दृष्टि से कदापि पृथक् नहीं हो सकते ।** जैसे कई जैनी उदाहरणार्थ श्वेताम्बर दूसरे जैनियों जैसे समवेगी साधुओं पर आक्षेप करके उन्हें पृथक् और नया मानते हैं । यह प्रकटरूप से "होवेक" नामक पुस्तक में लिखा है । इसी प्रकार से आप लोगों ने उन पर बहुत से आक्षेप करके उनके मत में संयुक्त निर्णय पुस्तक लिखी है फिर भी इस से वह और **आप बौद्ध या जैनमत से अलग नहीं हो सकते ।** और न कोई विद्वान् उनके धार्मिक सिद्धान्तों की दृष्टि से उन्हें अलग मान सकता है । उनकी समस्याओं में भेद तो अवश्य होगा ।

आपके इस वचन से कि 'इस में क्या आश्चर्य है कि महावीर तीर्थङ्कर के समय में चार्वाक मत था, उन से पीछे नहीं हुआ ।" इस से मुझ को आश्चर्य हुआ । क्या जो महावीर तीर्थङ्कर के पहले २३ तीर्थङ्कर हुए उन सब के पहले चार्वाक-मत को आप सिद्ध नहीं कर सकते । यदि किसी प्रकार का सन्देह आपके लिए हो तो प्रश्नकर्त्ता पूछ सकता है कि ऋषभदेव भी चार्वाक-मत से चले हैं ? फिर आप उस के उत्तर में क्या कह सकते हैं। क्या चार्वाक १५ जातियों में से एक जाति का भी नहीं है ? और उस में एक सिद्ध और मुक्त नहीं हुआ ? क्या वे आपके सिद्धान्तों और पुस्तकों

से अलग हो सकते हैं ?

इसके अतिरिक्त आपने भी अपने लेख में बौद्धमत को अपने मत में स्वीकार कर लिया है क्योंकि करकण्डा आदि को आपने बौद्ध माना है और मैंने भी अपने पहले पत्र में **जैन और बौद्ध के एकमत होने का लिखित प्रमाण** दे दिया है फिर आप का पुनः पूछना निरर्थक और निष्प्रयोजन है । जिस अवस्था में स्वयं वादी की साक्षी से मुकदमा ठीक सिद्ध हो जाता है तो फिर न्यायाधीश को अन्य पुरुषों की साक्षी लेनी आवश्यक नहीं होती । भला जिस की कई पीढ़ियां जैनमत में चली आई हों अर्थात् राजा शिवप्रसाद की साक्षी को और वर्तमान काल में जो यूरोपियन लोग बड़े परिश्रम से इतिहास बनाते हैं उन की साक्षी को आप गलत कह सकते हैं कि जिन्होंने अपने इतिहासों में बौद्ध और जैन को एक ही लिखा है और साथ ही यह भी लिखा है कि कुछ बातें आर्यों की और कुछ बौद्धों की लेकर जैनमत बना है ।

दूसरे प्रश्न के बारे में जो आपने लिखा है, वह नमूची नास्तिक जैनमत का अहितचिन्तक साधुओं को निकालने और कष्ट देने वाला था, उस को मार कर सातवें नरक में भेजा गया । यह लेख आपने सत्यार्थप्रकाश के लेख के उत्तर में नहीं समझा । विचार कीजिये कि वह नमूची जैनमत का शत्रु था, इसलिए मारा गया तो क्या उस ने जानबूझ कर पाप नहीं किया था । कितने खेद की बात है कि आप सीधी बात को भी उलटा समझ गये ।

तीसरे प्रश्न के उत्तर में जो आपने प्राकृत भाषा का एक श्लोक लिखा है परन्तु उसके अर्थ स्वयं नहीं लिखे, केवल मेरे पर उस का समझना छोड़ दिया । उस का यह अभिप्राय होगा कि मैं उसके अर्थ तक नहीं पहुंच सकूंगा। हां मैं कुछ सब देशों की भाषा नहीं जानता हूं, केवल कुछ देशों की भाषा और संस्कृत जानता हूं परन्तु मतों और उनकी शाखाओं तथा सम्प्रदायों के सिद्धान्त अपनी विद्या और बुद्धि और विद्वानों की सङ्गति के प्रभाव से जानता हूं । **आप और आप लोगों के पथप्रदर्शकों ने ऐसी भाषा बिगाड़ कर अपनी भाषा बना ली है जैसे धर्म का धम्म आदि ।** जिनका मत बौद्धिक तथा लिखित युक्तियों से सिद्ध नहीं हो सकता, वे ऐसे-ऐसे अप्रसिद्ध शब्द बना लेते हैं ताकि कोई दूसरा उस को समझ न सके । जैसे मद्य का नाम तीर्थ, मांस का नाम पुष्पादि बना लिया है ताकि उन के अतिरिक्त कोई दूसरा न जान ले । जो राजा लोग न्यायकारी होते हैं वे तो मार्ग ऐसे सीधे बनाते हैं कि अन्धा भी निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जाये परन्तु उन के विरोधी मार्गों को इस प्रकार बिगाड़ते हैं कि कोई परिश्रम से भी चल न सके । आप पुस्तक

''रत्नसार भाग'' को विश्वसनीय नहीं समझते तो क्या हुआ, बहुत से श्रावक और जैन लोग उसको सच्चा मानते हैं ।

देखिये आप ऐसे विद्वान् होकर 'मूर्ख' को 'मूर्रा' लिखते हैं, और पत्र में लिखित शब्दों के ठीक करने में बहुत सी हड़ताल भी लपेटते हैं । कैसे शोक की बात है कि संस्कृत तो दूर रही, देशी भाषा भी आप लोग नहीं जानते परन्तु इस लेख के स्थान पर यह लिखना उचित था कि आपकी भूल का कुछ नहीं क्योंकि मनुष्य प्राय: भूल किया ही करता है ।

चौथे प्रश्न के उत्तर में जो कुछ आपने लिखा है, वह बहुत चकित करने वाला है । विद्या प्राप्ति की इच्छा मनुष्य वहां प्रकट कर सकता है जहां अपने से अधिक किसी विद्वान् को देखता है । मैंने भी उन्हीं विद्वानों से शिक्षा पाई है जो मुझ से अधिक बुद्धिमान् तथा विद्वान् थे । आप भी कदाचित् इस को स्वीकार करते होंगे । क्या आप लोग अन्य मत के विद्वानों को विद्वान् न समझकर शिष्य के विचार से और मोक्ष के परिणाम का ध्यान रखकर किसी विपरीत प्रयोजन की प्राप्ति की इच्छा से दान करते हो । क्या ये बातें अविद्वानों की नहीं हैं कि अपने मत और उस के साधुओं के बड़प्पन का ध्यान रखना और अन्य मत के विद्वानों के विषय में उस के विपरीत चलना। ये अच्छे लोगों की बातें नहीं हैं । निश्चयपूर्वक समस्त सृष्टि में से अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा मानना अन्वेषकों, धर्मात्माओं का काम है और उस को ही हम मानते हैं और उचित है कि आप भी इस को स्वीकार करें। मेरे लेख का अभिप्राय ठीक-ठीक आप उस समय समझेंगे जब कि मेरी और आपकी भेंट होगी । मेरी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के लेख से कोई मनुष्य यह परिणाम नहीं निकाल सकता कि जैनमत के लोगों को चिरकाल तक कष्ट देना और दान न देना और जैनमत बेईमानी की जड़ है । प्रत्युत यह सिद्ध है कि 'अच्छे और ईमानदार लोगों और अनाथों की सहायता करना और बुरे लोगों को समझाना ।'

परन्तु इन छ: निषेधों का कलङ्क आपको ऐसा लिपट गया है कि जब ईश्वर की दया हो और आप लोग पक्षपात को छोड़कर यत्न करें तब धोया जा सकता है अन्यथा कदापि नहीं ।

भला यह जब प्रकट रूप में लिखा है कि अन्य मत की प्रशंसा न करना और दूसरों को रोटी और पानी न देना तो फिर आप उस को अशुद्ध क्योंकर कर सकते हैं । ये बातें आपके हजारों ग्रन्थों में लिखी हुई हैं और आप लोग इस को समझ लें कि मुझे ऐसा स्वप्न में विचार नहीं आया है।

हां जो आप लोग कुछ भी विचार कर देखें तो उन का छोड़ देना ही धर्म है, आगे आपकी इच्छा ।

पांचवें प्रश्न का उत्तर–उसके विषय में जो आपने लिखा है उससे मेरे उत्तर का खण्डन नहीं हो सकता क्योंकि जब बालों के नोचने का प्रमाण आपकी पुस्तकों में लिखा है, और मैंने उसके उद्धरण से सिद्ध कर दिया। फिर भला कहीं दार्शनिक युक्तियों का आश्रय लेने से उस बात का अस्वीकार हो सकता है, कदापि नहीं ।

छठे प्रश्न के उत्तर में–जब मैं यह सिद्ध कर चुका हूं कि जैन और बौद्ध जिस मत का नाम है, उसी की शाखा चार्वाकादि हैं फिर यह कैसे अशुद्ध हो सकता है ।

जो आप जैन लोगों के ग्रन्थों में हमारे धर्म के विषय में लिखा है, और जिस का हमारी धार्मिक पुस्तकों में कहीं वर्णन नहीं पाया जाता और इस से हमारे धर्म का अपमान टपकता है । इसलिए आप जैन लोगों से पूछा जाता है कि लौटती डाक से शीघ्र उत्तर दें कि वे बातें हमारी किन धार्मिक पुस्तकों में लिखी हुई हैं । ज्ञात रहे कि जिस व्याख्या और ठीक-ठीक पता दिन मान के साथ पृष्ठ व पंक्त्यादि के उद्धरण सहित मैंने आपके प्रश्नों का उत्तर दिया है । इसी प्रकार आप भी उत्तर दें अन्यथा आप सज्जनों की बड़ी हानि होगी। इस बात को आप केवल विहङ्गम दृष्टि से न देखें, प्रत्युत एक प्रकार की सावधानता दृष्टिगत रखें ताकि यह लम्बी न हो जावे । उत्तर भेजने में शीघ्रता करने से कल्याण है ।

'जैनियों के विवेकसार ग्रन्थ के लेख पर कुछ शङ्काएं'–

पहली शङ्का–विवेकसार, पृष्ठ १०, पंक्ति १ में लिखा है कि श्री कृष्ण तीसरे नरक को गया ।

दूसरी शङ्का–विवेकसार, पृष्ठ ४०, पंक्ति ८ से १० तक लिखा है कि हरिहर, ब्रह्मा, महादेव, राम, कृष्णादि कामी, क्रोधी, अज्ञानी, स्त्रियों के दूषी, पाषाण की नौका के समान आप डूबते और सब को डुबाने वाले हैं ।

तीसरी शङ्का–विवेकसार, पृष्ठ २२४, पंक्ति ९ से पृष्ठ २२५ की पंक्ति १५ तक लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादि सब अदेवता और अपूज्य हैं।

चौथी शङ्का–विवेकसार, पृष्ठ ५५, पंक्ति १२ में लिखा है कि गङ्गादि तीर्थों और काशी आदि क्षेत्रों से कुछ परमार्थ सिद्ध नहीं होता ।

पांचवीं शङ्का–विवेकसार, पृष्ठ १३८, पंक्ति ३० में लिखा है कि जैन का साधु भ्रष्ट भी हो तो भी अन्य मत के साधुओं से उत्तम है ।

छठी शङ्का–विवेकसार, पृष्ठ १, पंक्ति १ से लेकर कहा है कि जैनों में बौद्धादि शाखाएं हैं। इस से सिद्ध हुआ कि जैनमत के अन्तर्गत बौद्धादि सब शाखाएं हैं। **–हस्ताक्षर स्वामी दयानन्द सरस्वती, आगरा**

मिति माघ बदि ६, शुक्रवार, संवत् १९३७ तदनुसार २१ जनवरी, सन् १८८१

उधर स्वामी जी तो अपने योग्य पण्डित आत्माराम जी के प्रश्नों का खण्डन लिख रहे थे और आत्माराम जी भी अपने प्रश्न लिखकर जो स्वामी जी ने उन का उत्तर लिखा था, उस का उत्तर तैयार कर रहे थे कि ठाकुरदास ने बीच में अपनी हानि समझ और अपनी प्रसिद्धि कम होती जानकर स्वामी जी के नाम २२ नवम्बर, सन् १८८० को एक नोटिस जारी कर दिया।

जिस में प्रथम तो समस्त पिछले पत्रव्यवहार का अपने विचार के अनुसार सार था और अन्त में ये असभ्यतापूर्ण शब्द लिखे थे–

''यदि आप की अब भी क्षमा मांगने की इच्छा हो तो शीघ्र मांग लो परन्तु पीछे से यह न कहना कि जैनियों में दया और क्षमा नहीं। अब भी यदि आप अपना क्षमा-पत्र भेज दें तो आप पीछे से निर्लज्जता उठाने की आपत्ति से बच सकते हैं, नहीं तो आप को अधिकार है। आप की आज्ञानुसार हम ने अम्बाला, लुधियाना इत्यादिक स्थानों के बहुत से जैनों को इस काम में अपने साथ मिला लिया है जो अपना-अपना नोटिस भी आप को देंगे और आप ने चिट्ठी-पत्री भेजने में ही इतने छल किये हैं कि इस में भी आप पकड़े जायेंगे क्या आप झूठ लिख-लिखकर औरों को धोखे में फंसाते और मेरा नाम बदनाम करते हैं। आप स्मरण रखिये कि आप के ये सब कपट न्यायालय में प्रकट किये जावेंगे और उस का यथायोग्य दण्ड भी आप को दिलाया जावेगा। इस पत्र का उत्तर चाहे आप भेजें या न भेजें, यह आप की इच्छा है।''

परन्तु यह नोटिस वापस आ गया। स्वामी जी को न पहुंचा क्योंकि हमारे चालाक ला० ठाकुरदास ने उसे न तो देहरादून भेजा और न आगरा प्रत्युत अम्बाले भेजा। इसलिए अवश्य वापस आना ही था क्योंकि पता अशुद्ध था। यद्यपि आर्यसमाज गूजरांवाला ने भी उन को ठीक-ठीक पता बतला दिया था। (देखो 'आर्य-समाचार' पृष्ठ ३७३, खण्ड २, संख्या २३) और यदि न भी बतलाते तो स्वामी जी के पत्र से भी आत्माराम जी और उन को विदित था कि वे १७ नवम्बर के पश्चात् आगरा जायेंगे और उन का वहां जाना और उपदेश करना प्रत्युत शास्त्रार्थ करना 'नसीम' आगरा और 'भारती

विलास' में प्रकाशित हो चुका था । इसलिए यह जान बूझ कर चालाकी थी या अनपढ़ होने के कारण आगरा का अम्बाला स्मरण रखा । धन्य है।

फिर ला० ठाकुरदास ने २१ दिसम्बर, सन् १८८१ को फारसी अक्षरों में एक नोटिस लिखा और समाजों के नाम भेजा जिस का विषय यह था कि 'हमारे प्रश्न का उत्तर स्वामी जी के पास नहीं है इस से स्वामी जी छुपकर बैठे हैं तो आप उन का ठांव ठिकाना बता दो । इसके उत्तर में आर्यसमाज की ओर से एक नोटिस जारी हुआ जिस के शीर्षक में यह शेर लिखा गया था–

'गर न वीनद बरोज शपर्रा चश्म ।
चश्मये आफताब रा च गुनाह ॥'

अर्थात् यदि दिन के समय में अन्धे को न दिखाई दे तो इस में सूर्य का क्या दोष है ।

इस में उस की समस्त बातों का उत्तर और स्वामी जी का पता भी लिखा हुआ था । (देखो समाचार, पृष्ठ ३३७, बुधवार) परन्तु ठाकुरदास चूंकि स्वयं पढ़ा हुआ नहीं है और कुछ ख्याति का भी इच्छुक है उस को विज्ञापन में भी पता न मिला अर्थात् न पढ़ सका ।

'उन्मत्त अपने काम में चतुर होता है इस कहावत के अनुसार उसने १२ जनवरी को एक पत्र आर्यसमाज गूजरांवाला के नाम भेजा जिसमें लिखा था कि–'स्वामी जी के साथ सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए हम २०-२३ जनवरी तक अम्बाला में इकट्ठे होंगे । तुम स्वामी दयानन्द जी को अम्बाला भेजो ।

परन्तु स्वामी जी के लेखानुसार न तो आत्माराम जी ने उन को लिखा और न तार दिया और न आत्माराम जी शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हुए और न ठाकुरदास के अतिरिक्त किसी और विद्याप्रेमी जैन ने स्वामी जी को लिखा। इसलिए वहां कोई शास्त्रार्थ न हुआ क्योंकि आत्माराम जी शास्त्रार्थ से और फिर स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करने से अत्यन्त जी चुराते और घबराते थे । (दिग्विजयार्क पृ० २६-३१, लेखराम पृष्ठ ६५०-६८०)

वैदिकधर्म तथा ईसाई मत

(फादर कानरीड साहब आगरा से धर्मचर्चा–१२ दिसम्बर, १८८०)

नोट–यह धर्मचर्चा फादर कानरीड साहब ओ०सी०वाई० रेवरेण्ड नायब विशप सैंट पीटरसन रोमन कैथलिक चर्च आगरा और श्रीमान् स्वामी दयानन्द

सरस्वती जी महाराज के मध्य १२ दिसम्बर, सन् १८८०, रविवार तदनुसार मगसिर शुक्ला ११, संवत् १९३७ विक्रमी को हुई ।

स्वामी जी कई वकीलों और सम्मानित व्यक्तियों तथा मार्टिन साहब म्यूनिसिपल कमिश्नर सहित बिशप साहब से मिलने को गये ।

स्वामी जी–नास्तिक लोग उत्पन्न करने वाले को नहीं मानते । यदि हम और आप और दूसरे मत के बुद्धिमान् लोग मिलकर और सब मतों में जो सत्य बातें हैं उन का विचार करके जिन पर सब लोग एकमत हो जावें, और आपस का मतभेद जाता रहे तो विरोध में केवल नास्तिक लोग ही रह जावेंगे । फिर उन को हम अच्छी प्रकार बौद्धिक युक्तियों के द्वारा परास्त कर देंगे । गोरक्षा जिस से लाभ ही लाभ है, ऐसी श्रेष्ठ बातों में हम को और आप को और सब को मिलकर काम करना चाहिये ।

बिशप साहब–यह काम अत्यन्त कठिन है इसलिए कि मुसलमान हलाल करना कभी न छोड़ेंगे । वैसे ही ईसाई लोग मांस खाना कभी न छोड़ेंगे। इस में सन्देह नहीं कि ईश्वर अवश्य है और चूंकि ईश्वर की सूरत नहीं देखी और वह बोलता नहीं है, इस कारण से यह अवश्य है कि उस ने अपना एक स्थानापन्न धर्म का बतलाने वाला संसार में भेजा । जिस प्रकार महारानी विक्टोरिया विना दूसरे के भारतवर्ष का शासन नहीं कर सकती, उसी प्रकार खुदा विना खुदावन्द यीशु मसीह की सहायता के संसार के मनुष्यों का तथा मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता ।

स्वामी जी ने कहा कि–प्रथम तो जो उदाहरण है वह ठीक नहीं क्योंकि जीव की परमेश्वर से कोई समानता नहीं । पहले ईश्वर का लक्षण होना चाहिये कि ईश्वर क्या वस्तु है । स्वामी जी ने उस के विशेषण, सर्वज्ञ, अविनाशी, सर्वशक्तिमान् आदि बताये और कहा कि ऐसे गुणों वाला ईश्वर किसी के आधीन नहीं कि स्वयं प्रबन्ध न कर सके और दूसरे से सहायता लेनी पड़े। तीसरे यदि हम मान भी लें कि ईसा कोई अच्छे पुरुष थे तो भी एक मनुष्य थे । और ईश्वर न्यायाधीश है वह एक मनुष्य के कहने से अन्याय नहीं कर सकता । जैसा जिस का कर्म होगा वैसा ही फल देगा । इसलिए यह असम्भव है कि न्यायविरुद्ध परमेश्वर किसी की सिफारिश मानकर पुण्य-पाप के अनुसार फल न देवे । अतः ईश्वर को स्थानापन्न भेजने की आवश्यकता नहीं । स्थानापन्न देना यह कार्य मनुष्यों का है । वह ऐसा स्वामी है कि समस्त कार्य और प्रत्येक प्रबन्ध विना स्थानापन्न के कर सकता है ।

बिशप साहब–क्योंकर प्रबन्ध कर सकता है ?

स्वामी जी–शिक्षा अर्थात् ज्ञान के द्वारा ।

बिशप साहब–वह पुस्तक ज्ञान की कौन सी है ?

स्वामी जी–चारों वेद ईश्वर की ओर से प्रमाण हैं । (१८ पुराणों का नाम नहीं लिया ।)

बिशप साहब–क्या अठारह पुराण भी धर्मपुस्तक हैं ?

स्वामी जी–नहीं ।

बिशप साहब–चारों वेद कैसे आये, ईश्वर ने किस को दिये, किस ने संसार में पहले समझाये ?

स्वामी जी–अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा, चारों ऋषियों के आत्मा में ईश्वर ने वेदों का ज्ञान दिया, उन्होंने समझाया ।

बिशप साहब–वेद ईश्वर की ओर से नहीं प्रत्युत वेद का बनाने वाला एक ब्राह्मण है, जिस का नाम इस समय स्मरण नहीं रहा ।

स्वामी जी–**ऐसा नहीं, वेद सृष्टि की आदि में परमात्मा ने प्रकाशित किये । किसी ब्राह्मण ने इन को नहीं बनाया, प्रत्युत वेद पढ़ने से मनुष्य ब्राह्मण बन सकता है** और जो वेद न पढ़े वह कदापि ब्राह्मण नहीं कहला सकता।

बिशप साहब–वे चारों मर गये या जीवित हैं ?

स्वामी जी–मर गये हैं ।

बिशप साहब–उनके पश्चात् उन का स्थानापन्न कौन हुआ और एक के पश्चात् कौन स्थानापन्न होता रहा और अब कौन है ?

स्वामी जी–**हजारों लाखों ऋषि मुनि उनके स्थानापन्न होते रहे ।** जैसे छः शास्त्रों के कर्ता छः ऋषि, उपनिषदों तथा ब्राह्मणों के लेखक ऋषि मुनि लोग । उनके अतिरिक्त प्रत्येक काल में जो ऋषियों के निश्चित नियमों के अनुसार चले, शुद्धाचारी हो वही स्थानापन्न हो सकता है परन्तु आप बतलाइये ईसा के पश्चात् आप के यहां अब तक कौन हुआ ?

बिशप साहब–हमारे यहां ईसा के पश्चात् **रोम का पोप** अर्थात् उच्चतम पादरी ईश्वर का स्थानापन्न समझा जाता है । जो भूल हम लोगों से हो जाये उस का सुधार उच्चतम पादरी अर्थात् रोम के पोप द्वारा होता है ।

स्वामी जी–और जो भूल रोम के पोप से हो उस का सुधार किस प्रकार हो सकता है ? आप को पोप के अत्याचार और धार्मिक झगड़े जो लूथर के काल से पहले और उस समय होते थे और कुछ अब तक जारी हैं, भली प्रकार विदित होंगे और इसी प्रकार ईसाइयों की पहली सभाओं का वृत्तान्त और धार्मिक झगड़े और सार्वजनिक हत्याएं आप से छुपी न होंगी।

उन का सुधार किस प्रकार वह पोप जो स्वयम् उन का आरम्भकर्ता है और जो स्वयम् उन रोगों में फंसा हुआ है, कर सकता है ? यह बात ठीक वैसी ही है जिस प्रकार हमारे पोप पौराणिक लोगों की ।

बिशप साहब इस का कोई बुद्धिपूर्वक और युक्तियुक्त उत्तर जिस से स्वामी जी और श्रोताओं का सन्तोष हो, न दे सके । तत्पश्चात् लगभग १२ बजे के समय स्वामी जी एक बड़ा गिर्जा देखने के लिए चले गये ।

(लेखराम पृष्ठ ६९१-६९३)

विविध विषय

(पं० लेखराम जी द्वारा किये हुए प्रश्नों का उत्तर–१७ मई, १८८१)

आर्यपथिक पं० लेखराम जी अपने बनाये हुए महर्षि के जीवनचरित्र में लिखते हैं–

११ मई, सन् १८८१ को संवाददाता पेशावर से स्वामी जी के दर्शनों के निमित्त चलकर १६ की रात को अजमेर पहुंचा । और वहां पहुंचकर स्टेशन के समीप वाली सराय में डेरा किया । और १७ मई को प्रातःकाल सेठ जी के बागीचे में जाकर स्वामी जी का दर्शन प्राप्त किया । उन के दर्शन से मार्ग के समस्त कष्टों को भूल गया और उन के सत्योपदेशों से समस्त समस्याएं सुलझ गईं । जयपुर के एक बंगाली सज्जन ने मुझ से प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी, दो व्यापक किस प्रकार इकट्ठे रह सकते हैं ?

मुझ से इस का कुछ उत्तर न बन पाया । मैंने यही प्रश्न स्वामी जी से पूछा । उन्होंने एक पत्थर उठाकर कहा कि इसमें अग्नि व्यापक है या नहीं ?

मैंने कहा कि–व्यापक है ।

फिर पूछा कि–मिट्टी ? मैंने कहा कि–व्यापक है ।

फिर पूछा कि–जल ? मैंने कहा कि–व्यापक है ।

फिर पूछा कि–आकाश और वायु ? मैंने कहा कि–व्यापक हैं ।

फिर पूछा कि परमात्मा ? मैंने कहा कि–वह भी व्यापक है ।

कहा कि देखा कितनी चीजें हैं परन्तु सब इस में व्यापक हैं । वास्तव में बात यह है कि जो जिस से सूक्ष्म होती है वह उस में व्यापक हो सकती है । ब्रह्म चूंकि सब से अति सूक्ष्म है इसलिए सर्वव्यापक है, जिस से मेरी शान्ति हो गई ।

मुझ से उन्होंने कहा कि और जो तुम्हारे मन में सन्देह हों सब निवारण कर लो मैंने बहुत सोच विचार कर दश प्रश्न लिखे जिन में से आठ मुझे स्मरण हैं, शेष भूल गये ।

प्रश्न–जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइये ?

उत्तर–**यजुर्वेद का ४०वां अध्याय सारा जीव-ब्रह्म का भेद बतलाता है।**

प्रश्न–अन्य मत के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिये या नहीं ?

उत्तर–**अवश्य करना चाहिये ।**

प्रश्न–**विद्युत् क्या वस्तु है और किस प्रकार उत्पन्न होती है ?**

उत्तर–विद्युत् सर्वत्र है और रगड़ से उत्पन्न होती है । बादलों की विद्युत् भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है ।

मुझ से कहा कि **२५ वर्ष से पूर्व विवाह न करना।** कई ईसाई और जैनी प्रश्न करने आते परन्तु शीघ्र निरुत्तर हो जाते थे । (लेखराम पृष्ठ ५३२)

जैनमत

(जैन साधु सिद्धकरण जी से मसूदा में शास्त्रार्थ– ६ जौलाई से १६ जौलाई, १८८१ तक)

जब आषाढ़ बदि १२, संवत् १९३८ तदनुसार २३ जून, सन् १८८१ को स्वामी जी धर्मोपदेश के निमित्त मसूदा पधारे तो कई दिन तक निरन्तर व्याख्यान देने के पश्चात् ५ जौलाई, सन् १८८१ को राव बहादुरसिंह साहब रईस मसूदा ने अपनी रियासत के सम्मानित जैनियों को बुलाकर कहा कि तुम अपने किसी विद्वान् पण्डित या मतावलम्बी को बुलाओ ताकि उस से स्वामी जी का शास्त्रार्थ कराया जावे और सत्यासत्य का निर्णय हो ।

जैनियों ने उत्तर दिया कि हम अपने साधु सिद्धकरण जी को बुलाते हैं, वे स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे ।

रावसाहब ने कहा कि वे कहां हैं ? जैनियों ने उत्तर दिया कि वे ग्राम सर्वाड़ किशनगढ़ क्षेत्र में यहां से १६ कोस पर हैं । रावसाहब ने कहा कि हमारे यहां से सवारी ले जाओ और तुम में से कोई जाकर साधु जी को बुला लाये । उन्होंने उत्तर दिया कि सवारी पर बैठकर वे नहीं आते परन्तु उन का चतुर्मासा यहां पर करना निश्चित हुआ है, इसलिए विश्वास है कि कल आ जावेंगे । दैवयोग से प्रातःकाल आषाढ़ सुदि १०, संवत् १९३८ तदनुसार ६ जौलाई, सन् १८८१, बुधवार को साधु जी वहां आ विराजे । आषाढ़ सुदि १३, अर्थात् ९ जौलाई, सन् १८८१, शनिवार को स्वामी जी महाराज अपने

नियमानुसार भ्रमण को गये तो सिद्धकरण साधु से जो शौचादि से निवृत्त होकर आते थे, मार्ग में भेंट हो गई । साधु ने स्वामी जी के निकट आकर कहा कि–आपका क्या नाम और कहां से पधारना हुआ ।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मेरा नाम दयानन्द सरस्वती है और अजमेर से आया हूं । फिर स्वामी जी ने कहा कि आप का क्या नाम है और कहां से आना हुआ । साधु जी ने कहा कि मेरा नाम सिद्धकरण है और सर्वाड़ किशनगढ़ क्षेत्र से आया हूं, चार मास यहीं रहूंगा ।

स्वामी जी–यहां पर आप कहां ठहरे हैं ?

साधु ने कहा कि एक उपाश्रय में ।

स्वामी जी ने कहा कि आप ही को जैनियों ने बुलाया है ?

साधु–हां मुझी को ।

और साधु जी ने कहा कि आप का पेट तो बड़ा मोटा है, क्या इस में ज्ञान भरा है ? आप लोहे का तवा बांध लीजिये नहीं तो फट जायेगा । आप को ज्ञान-अजीर्ण हो रहा है ।

स्वामी जी ने उस का उस समय उत्तर देना अनुचित समझ साधु से यह प्रश्न किया कि आप लोग मुख पर पट्टी बांधते और गर्म जल क्यों पीते हो ?

साधु जी ने कहा कि जो आप भी मुख पर पट्टी बांधें तो मैं इस का उत्तर दूं ।

अभी इन में परस्पर वादानुवाद हो ही रहा था कि रावसाहब ने जो प्रायः अपने महल की छत पर बैठ प्रातःकाल दूरवीक्षण द्वारा स्वामी जी को भ्रमण करते देखा करते थे, देखा कि किसी से स्वामी जी वार्ता कर रहे हैं। तत्काल ही रावसाहब घोड़े पर सवार होकर स्वामी जी के पास आ उपस्थित हुए । रावसाहब को देख साधु चलने लगा । तब रावसाहब ने साधु जी से कहा कि ठहरो, प्रश्न करो, क्यों जाते हो ? अन्त को रावसाहब के आते ही साधु जी चले ही गये और स्वामी जी महाराज और राव बहादुरसिंह जी मार्ग में परस्पर वार्ता करते हुए निज स्थान को पधारे । फिर स्वामी जी ने श्रावण बदि २, संवत् १९३८, बुधवार तदनुसार १३ जौलाई, सन् १८८१ को निम्नलिखित प्रश्न पण्डित छगनलाल कामदार और ज्योतिषी जगन्नाथ आदि सम्मानित व्यक्तियों के हाथ सिद्धकरण साधु के पास भेजे ।

प्रश्न–जैन मतान्तर्गत तुम लोग ढूंढ़िये जो मुख पर पट्टी बांधना अच्छा जानते हो, यह तुम्हारी बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणों की रीति से सिद्ध

नहीं है । इस से जो तुम ऐसा मानते हो कि मुख की वायु से जीव मरते हैं तो भी ठीक नहीं क्योंकि जीव अजर-अमर हैं और तुम भी ऐसा ही मानते होगे । जो तुम कहो कि जीव तो नहीं मरता परन्तु उस को पीड़ा अर्थात् दुःख देवें तो हम पाप के भागी होते हैं तो भी सर्वथा ठीक नहीं क्योंकि ऐसा किए विना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता । इस में जो तुम कहते हो कि जहां तक बन सके, वहां तक जीवों की रक्षा करनी चाहिए । कारण सर्व वायु आदि पदार्थ जीवों से भरे हैं । इसलिए हम लोग मुख पर कपड़ा बांधते हैं कि मुख से उष्ण वायु निकलने से बहुत से जीवों को दुःख और बांधने से थोड़े जीवों को कष्ट पहुंचता है तो यह भी कहना आप लोगों का अयुक्त है क्योंकि कपड़ा बांधने से जीवों को बहुत दुःख पहुंचता है । कारण यह है कि मुख पर कपड़ा बांधने से गर्मी रखने से उष्णता अधिक होती है जैसे किसी मकान का द्वार बन्द हो और पर्दा डाला जाये तो उसमें गर्मी अधिक होती है और खुला रखने से कम होती है । इस से विदित होता है कि मुख पर कपड़ा बांधने से जीवों को अधिक पीड़ा होती है । इसलिए जो कोई मुख पर कपड़ा बांधते हैं वे जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाने से अधिक पापी होते हैं । जो नहीं बांधते वे उन बांधने वालों से अच्छे हैं । किन्तु, जब तुम मुख पर कपड़ा बांधते हो मुख द्वारा वायु रुककर नाक के छिद्र से जो बाहर निकलती है, वह जीवों के लिए अधिक दुःखदायी होती है । जैसे मुख से कोई अग्नि फूंके और कोई नल से तो नल से वायु चारों ओर से रुक अधिक बलवान् हो अग्नि से लगती है । इसी प्रकार नाक की वायु जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाती है । इस से तुम हिंसक हो। जो तुम कहो कि हम नाक और मुख पर एक कपड़ा बांधेंगे तो पूर्वोक्त रीति से मुख और नासिका दोनों की गर्मी बढ़कर दुगुनी हिंसा होगी । इससे मुख और नासिका पर कपड़ा बांधना कदापि योग्य नहीं । दूसरे कपड़ा बांधने से बोला भी ठीक-ठीक नहीं जाता । निरनुनासिक शब्दों को सानुनासिक कर देना दोष है । दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध है । शरीर से जितना वायु निकलता है वह दुर्गन्धयुक्त ही है । जब वह रोका जाये तो अधिक दुर्गन्ध बढ़ता है जैसा कि बन्द जाजरूर । इस प्रकार मुखादि प्रक्षालन न करने और मुख पर कपड़ा बांधने से अधिक दुर्गन्ध होकर रोग उत्पन्न करता है जैसा कि मेले आदि में । और न्यून दुर्गन्ध विशेष रोग नहीं करता, यह बात प्रत्यक्ष है। इस से यह सिद्ध हुआ कि अधिक दुर्गन्ध बढ़ाने वाला अधिक अपराधी होता है । जैसा कि आप लोग दन्तधावन और स्नानादि कम करने से दुर्गन्ध

बढ़ाते हो । जिस से रोगोत्पत्ति कर बुद्धि और पुरुषार्थ को नष्ट करके धर्मानुष्ठान के बाधक होते हो । जैसे जाजरूर (मलागार) के शुद्ध करने वालों की दुर्गन्ध के संग से न्यून बुद्धि होती है वैसे आप लोगों की क्यों नहीं होती होगी । जब दुर्गन्धयुक्त पुरुष की बुद्धि अति मन्द होती है तो उस के संगियों की क्यों नहीं होती होगी ।

('देशहितैषी' खण्ड १, संख्या २, पृष्ठ ७ से १३, ज्येष्ठ मास, संवत् १९३९)

"जो तुम लोग कच्चा जल पीने आदि में दोष गिनते और उष्ण में नहीं, यह भी तुम को अत्यन्त भ्रम हुआ है क्योंकि ठण्डे के जीव **उष्ण जल करने में अधिक दु:ख पाते हैं** और उन के शरीर जीवित जल में घुल जाते हैं जैसे सौंफ का अर्क । सिद्ध हुआ कि उक्त जल के पीने वाले मानो मांस का जल पीते हैं और जो ठण्डा जलपान करते हैं वे (इन जीवों को) गर्म जल पीने वालों की अपेक्षा थोड़ा दु:ख देते हैं । दूसरे वे जीव जठराग्नि में प्राप्त होकर भी बहुत से प्राणवायु के साथ बाहर भी निकल जाते हैं । इस से ठण्डा जल पीने वाले तुम से बहुत कम जीवों को दु:ख देने वाले ठहरते हैं । जो तुम कहो कि न हम जल गर्म करते हैं और न हम किसी को शिक्षा अपने लिए जल को उष्ण करने की करते हैं तो भी तुम अपराध से नहीं छूट सकते क्योंकि जो तुम गर्म जल न लेते, न पीते और न उष्ण करने की शिक्षा करते तो वे अधिक जल क्यों गर्म करते। जो ऐसा कहो कि पाप करने वालों को दोष लगता है, अन्य को नहीं । यह भी कथन ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि चोरी करने वाला तो आप ही चोरी करता है परन्तु शिक्षा करने वाले बहुतों को चोर बना देते हैं, इसलिए तुम ही अधिक पापी हुए । फिर जल के गर्म करने में अग्नि जलाते और उस जल से भाप ऊपर उड़ाने से भी जीवों को बहुत दु:ख पहुंचता है । इस कारण यह भी तुम्हारा कथन व्यर्थ हुआ ।

तुम्हारे मत में ऐसी-ऐसी बहुत-सी बात अयुक्त हैं, जैसे एक छोटे से अर्थात् पैसा भर के कुण्ड में अनन्त जीवों का रहना । इस में जो कोई तुम से प्रश्न करे कि जिस में जीव रहते हैं उस का अन्त है, उस में रहने वालों का अन्त क्यों नहीं ? फिर तुम से उस के उत्तर में केवल चुप वा हठ के अतिरिक्त और कुछ न बन पड़ेगा । यह थोड़ा सा अर्थात् समुद्र में से बिन्दुवत् तुम्हारे मत के सिद्धान्तों में दोष दिखलाया है । जो तुम सम्मुख बैठ कर चर्चा करो तो तुम को और तुम्हारे साथियों को तुम्हारे मत के दोष भली-भांति विदित हो जायें परन्तु जब कोई विद्वान् तुम्हारे सम्मुख तुम्हारे मत

के खण्डन-विषय में चर्चा करना चाहे तो भी तुम कभी न चाहोगे क्योंकि जो तुम्हारा मत निर्दोष होता तो दूसरे मत वालों से संवाद करने में कभी न डरते । इस का दृष्टान्त यह है कि तुम अपनी पुस्तकों को बहुत गुप्त रखते और अपने मतवालों के अतिरिक्त दूसरों को देखने के लिए नहीं देते। यह तुम्हारा सिद्धान्त पुस्तक और तुम्हारे सिद्धान्तों को तुम्हारी ही बातें झूठी कर देती हैं । जिस का चांदी का रुपया है, वह सर्राफा और सुनारादि को दिखलाने में क्यों डरेगा ? देखो! हमारा वेद-मत सच्चा है इस से हम को किसी के साथ चर्चा करने में डर नहीं होता । जैसे तुम डर के कारण हठ करते हो कि मुख पर कपड़ा बांधे विना तुम से हम बात नहीं करते । यह तुम्हारा केवल छल है क्योंकि ''नाच न आवे आंगन टेढ़ा ।''

-हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती

जब उक्त प्रश्नों को लेकर साधु जी के स्थान पर पहुंचे तो क्या देखते हैं कि साधु जी बहुत से स्त्री और पुरुषों के मध्य में बखान (व्याख्यान) कर रहे हैं तब ये लोग वहां जा बैठे । जब बखान पूर्ण हो चुका तब पण्डित छगनलाल मन्त्री राव मसूदा ने जो उक्त प्रश्न ले गये थे सब लोगों के सम्मुख पढ़कर सुना दिये और कहा कि इन का उत्तर देना आप को योग्य है । इस पर साधु जी ने कहा कि जो तुम लोग मुख पर पट्टी बांधो तो मैं उत्तर दूं। तब उन लोगों ने कहा कि हम मुख पर पट्टी बांधना पाप गिनते हैं । आप इन प्रश्नों का उत्तर दें, जब पट्टी का बांधना सिद्ध कर देंगे तब हम प्रसन्नतापूर्वक पट्टी क्या जैसा आप हम से कहेंगे, स्वीकार करेंगे । यह सुन साधु ने कहा कि मैं उत्तर नहीं दे सकता और उठ कर भीतर की ओर चले गये । फिर उन्होंने सब वृत्तान्त स्वामी जी और राव साहब को सुनाया और अपने-अपने स्थान को पधारे । तत्पश्चात् साधु जी ने तीसरे दिन अर्थात् १५ जौलाई, सन् १८८१ को सुजानमल कोठारी के हाथ स्वामी जी के प्रश्नों के निम्नलिखित उत्तर भेजे ।

''साधु सिद्धकरण जी की ओर से प्रश्नों के उत्तर''

प्रश्न-मुंह बांधने में क्या धर्म है? हम को तो पाप प्रतीत होता है इत्यादि।

उत्तर-जबकि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है, उस मकान के द्वार में होकर वायु भीतर जाती है तो वायु के जीव सब मर जाते हैं। जब बारड़ा (द्वार) बन्द किया जावे वायु की ओट से सब जीव बच सकते हैं और भी उस ज्वाला का तेज कपड़े की ओट से ठण्डा होकर जाता है जैसा कि उष्ण जल की भाप । बाहर एक गर्म की हुई चीज की भाप के

निकलते समय कपड़े की ओट दो तो फिर ओट से बचकर भाप बाहर जावेगी वह फिर वैसी गर्म कभी न रहेगी वा आड़ा हाथ देकर देखो तो पहले जो हाथ देगा उस का जलेगा । वही जल की भाप निकलेगी तो दूसरी ओर जो आजूबाजू जो हाथ रहेगा कभी वैसा नहीं जल सकता । यह तो प्रत्यक्ष दीख पड़ता है और जीव अजर, अमर है परन्तु वायु के जीव का शरीर है । विना शरीर के जीव नहीं रह सकता । दूसरे खुले मुख रहने से प्रत्यक्ष दोष भी है कि उस को सब कोई समझ सकता है क्योंकि जो कोई बड़े मनुष्य के निकट बात करे तो मुंह के पल्ला लगा रहता है क्योंकि जिस से थूक न उछले वा अपनी दुर्गन्धता का श्वास उन के द्वारा न पहुंचे तो आपड़ों से (आप सरीखे) बुद्धिमान् होकर यह क्या प्रश्न पूछा । आपको भी तो यह विचार करना चाहिए कि वेद की पुस्तकों को खुले मुंह बांचना क्या पुस्तक के थूकारा वा दुर्गन्ध-श्वासा नहीं पहुंचती होगी ? इसलिए अवश्य आपको उघाड़े (खुले मुख) रहना उचित नहीं और हम तो साधु हैं, हम निरर्थक जोड़ नहीं करते क्योंकि यह बात पक्षपात कहलाती है, धर्म के अतिरिक्त साधु को कुछ प्रयोजन नहीं। कोई हमारे निकट आवे और सुनना चाहे तो सुने । जाने-आने का कुछ प्रयोजन नहीं । हां यह पक्की देखी कि कुछ धर्म की बात मानेंगे तो जा भी सकते हैं ।

—**हस्ताक्षर** सिद्धकरण

(देश-हितैषी, खण्ड १, संख्या ४ पृष्ठ ७ से १० तक)

उत्तर पक्ष—स्वामी दयानन्द जी महाराज की ओर से उत्तर—

उत्तर—जबकि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है इत्यादि । यह तुम्हारा मुख पट्टी बांधने का उत्तर अविद्यारूप है क्योंकि बाहर का वायु ही सब पदार्थों का जीवनहेतु है । विना इस के संयोग के कोई भी प्राणी नहीं बच सकता और उस के सम्बन्ध के विना अग्नि भी नहीं जल सकती । जैसे किसी प्राणी वा जलती अग्नि को बाहर की वायु से वियुक्त करें तो वह उसी समय मर जाता है । और दीपकादि अग्नि भी बुझ जाता है क्योंकि इस के जलाने आदि का कारण बाहर का वायु है । न मानो तो बन्द कर देख लो। इसलिए यह तुम्हारा अविद्यारूपी उत्तर सिद्ध होता है । यद्यपि ऐसी अन्यथा बातों पर लिखना व्यर्थ है क्योंकि जो किसी से हो ही नहीं सकता। देखो जो मकान के द्वार और छिद्र बिल्कुल बन्द किये जायें तो अग्नि कभी न जलेगी और एक ओर से ओट किया जाये तो दूसरी ओर से जहां मार्ग पाता है वहां से अतिवेग से चलकर वही वायु के जीवों से उस का सम्बन्ध होता है और कपड़े की ओट से भी वह कभी ठण्डा नहीं हो सकता किन्तु वह एक ओर से रुक कर दूसरी ओर से गर्म हो जाता है ज्वाला की जितनी

गर्मी है । जब तक बाहर की वायु से सम्बन्ध और संघात छूट एक-एक परमाणु पृथक्-पृथक् होकर न मिल जायें तब तक अग्नि ठण्डा कैसे हो सकता है। और सर्वत्र वायु में विद्युत्रूप अग्नि भी (कि जहां वायु के शरीर वाले जीव हैं) व्याप्त हो रहा है फिर वायुस्थ जीव क्यों नहीं मर जाते ? जब एक ओर कपड़े आदि से आड़ा किया जाये तो दूसरी ओर गर्म वायु अधिक इकट्ठा फैलने और टपकने से शीघ्र ठण्डा नहीं होता किन्तु जो चारों ओर से खुला रहे तो शीघ्र ठण्डा हो जाता है जैसे कि मैदान की अग्नि । जब अग्नि की ओर आड़ा हाथ दिया जाये तो हाथ की आड़ से दूसरी ओर गर्मी फैलेगी। आड़े हाथ करने से गर्मी कुछ भी कम नहीं हो सकती इस से यह अविद्वानों की बात है । देखो जो सूर्य की ओर हाथ करे तो क्या सूर्य की गर्मी घट जाती है और क्या जिस बर्तन में जल गर्म किया जाता है उस का मुख खुला रखने से अधिक गर्मी और आधा वा तीन भाग बन्द करने से अर्थात् आधे वा चौथे भाग से भाप अधिक और जोर से निकल कर बाहर की वायु में नहीं फैलती । और जो उस का मुख सर्वथा बन्द किया जाये तो क्या बर्तन टूट फूट और उड़ न जायेगा ? क्या जिस ने अग्नि की ज्वाला के सामने आड़ की तो उसकी ओर गर्मी कम होने से दूसरी ओर अधिक गर्मी नहीं होती ? क्या हाथ के आड़ किये हाथ से अग्नि के दूसरी ओर जिस किसी के हाथ और कोई वस्तु हो तो वह अधिक तप्त नहीं होती और जब चारों ओर से आड़ कर अग्नि को रोका जावे तो गोलाकार होकर ऊपर को क्यों न चढ़ेगा और भाप के दूसरी ओर हाथ जैसा कि इधर का जलता है वैसा उधर का न जलेगा और हाथ की आड़ के हाथ में गर्मी इसलिये अधिक नहीं लगती कि वह अगल बगल होकर ऊपर उठ जाती है । देखो तुम्हारी यहां अत्यन्त भूल है क्योंकि जो वायु के शरीर वाले जीव गर्म वायु से मर जाते तो वैशाख और ज्येष्ठ मास में जबकि वायु अत्यन्त तप्त हो लू चलता है तब क्या सब जीव मर जाते हैं और गर्म वायु के जीव जबकि पौष मास में अतिशीत पड़ता है तब क्या मर जाते हैं ? इससे यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या ही है क्योंकि जो ऐसा होता तो परमेश्वर इस सृष्टि में अग्नि और सूर्यादि को क्यों रचता ? इस से जो तुम सत्यासत्य बातों का निश्चय करना चाहो तो वेदादि सत्यशास्त्र पढ़ो और सुनो जिस से यथार्थ ज्ञान पाके धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी फल को प्राप्त हो सको । जो ऐसा न करके अपने मत के ग्रन्थों के विश्वास में रहोगे तो यह उत्तम मनुष्य जन्म व्यर्थ ही नष्ट करोगे ।

(देश-हितैषी, खण्ड १, संख्या ५, पृष्ठ ८ से १० तक, भादों, संवत् १९३६)

बड़े आश्चर्य की बात है कि जीवों को अजर, अमर मान कर फिर उन का मरण भी मानते हो । जो तुम खुला मुख रखने में प्रत्यक्ष दोष लिखते हो तो प्रत्यक्ष होता है कि आप प्रत्यक्ष के लक्षणादि विद्या को ही नहीं जानते। इसी से किसी बड़े मनुष्यादि से बातें करने में पल्ला लगाना अच्छा समझते हो । जो ऐसा है तो फिर वैसा क्यों नहीं करते । छोटे मनुष्य के सम्मुख हर समय मुख बांधे रहते हो । क्या बड़े मनुष्य का थूका छोटे मनुष्य के साथ लग जाना अच्छा समझते हो ? क्या बड़े के मुख में कस्तूरी घुली होती है छोटे के नहीं ? यदि बड़े छोटों का विचार है तो अपने चेलों के सम्मुख मुख क्यों बांधे रहते हो ? क्योंकि जब किसी बड़े मनुष्य से बोला करो तब बांध लिया करो । सदैव व्यर्थ बातें क्यों किया करते हो । देखो इस बात को तुम नहीं जानते, बड़े मनुष्यों से बात करते समय पल्ला लगाने से यह प्रयोजन है कि सभा में कभी गुप्त वार्ता करनी पड़ती है, यदि मुख खुला रखा जावे अर्थात् कपड़ा न लगावें तो अन्य मनुष्य जो निकट बैठे हों अवश्य सुन लें। जहां कोई तीसरा मनुष्य होता, वहां बातें करने में पल्ला नहीं लगाते और क्या पल्ला लगाने से दुर्गन्ध रुक सकता है ? इस में इतना ही प्रयोजन है कि जो वायु को रोक के न बातें करें तो उस के फैलने के साथ ही शब्द भी फैल जाये और कान में वायु लगने से ठीक-ठीक सुना भी न जाये जैसा कि वायु के वेग से चलने में ठीक-ठीक नहीं सुना जाता । देखो ! कैसे अन्धेर की बात है, क्या दुर्गन्ध को कान ग्रहण कर सकता है ? नहीं, किन्तु सुगन्ध दुर्गन्ध का ग्रहण नासिका ही से होता है । इस बात का आपने प्रयोजन नहीं समझा है । जैसे गानविद्या न जानने वाला ध्रुपद को समझ नहीं सकता क्योंकि जो विद्या की बातें हैं उन को विद्वान् ही समझ सकता है, अविद्वान् नहीं । हम शब्द, अर्थ और सम्बन्ध को वेद समझते हैं, कागज स्याही को नहीं और कागज, स्याही को जड़ होने से सुगन्ध दुर्गन्ध का ज्ञान वा सम्बन्ध नहीं होता । क्या जो तुम्हारे जैनी लोगों के ग्रन्थ वा पुस्तकों के कागज लेखादि हैं, उन को बनाने वालों ने मुख बांधकर बनाया और लिखा होगा ? हम खुले मुख से वेदों का पाठ करना अत्युत्तम समझते हैं क्योंकि मुख बांधने से स्पष्ट यथार्थ उच्चारण नहीं होता जैसा कि तुम्हारा सब अक्षरों का नासिका से अशुद्धोच्चारण होता है । इस का उत्तर हम ने पहले ही लिख दिया था कि निरनुनासिक को मुख बांध कर सदैव सानुनासिक बोलना शुद्ध नहीं परन्तु इस के समझने को विद्या चाहिये और जो आप साधु बनते हो तो साधु के क्या लक्षण हैं ? और आप स्वार्थी हो वा परमार्थी । जो स्वार्थ की इच्छा अर्थात् ''निरर्थक हम नहीं बोलते'' ऐसा क्यों कहते हो और जो स्वार्थी हो

तो साधु क्यों बनते हो ? जो आप को पक्षपात नहीं होता तो मुख पर पट्टी बांधने का झूठा आग्रह क्यों करते ? कि विना मुख पर पट्टी बांधने के हम नहीं बोलते यदि ऐसा नियम था तो प्रथम ही प्रथम (जंगल में भ्रमण करते समय) हम से क्यों बोले थे कि आप का क्या नाम है ? इत्यादि खुले मुख बोले । और अन्य जनों से भी बातें क्यों किया करते हो ? और भोजन समय (स्वप्रयोजन के लिए) क्यों मुख खोलते हो ? क्या तुम अपने शरीर-पोषण, भोजन, छादन, मलविसर्गादि कर्म मौन के अतिरिक्त नहीं समझ सकते होगे? यह बात मिथ्या है क्योंकि जब हम सुनना चाहते थे तब तो तुम सुनाने को खड़े भी न हुए और जो तुम कहीं आते जाते नहीं तो यहां कहां से आ गये ? क्या एक ही स्थान पर शिला के समान स्थिर रहते हो ? भला जिस का रुपया चांदी का है उस को कच्चेपन का क्या भय है ? क्या सब के सामने दिखलाने से ताम्र का भी हो जाता है? क्या तुम वहीं जाते हो जहां तुम्हारी बातें विना समझे बूझे मान लेवें ? हाँ ठीक है तुम तो उन्हीं गोबर-गणेशों को सुना सकते हो, जो प्रसन्नता से ''सत्यार्थ'' और ''प्रमाण'' शब्दों का हल्ला करके तुम को सन्तुष्ट किया करें, चाहे सत्य कहो वा असत्य । मान ही लें जैसे दिल्ली की मिठाई । न पूछें न शङ्का करें, न झूठ का खण्डन करें । ठीक समझ लिया जैसे तुम, वैसे तुम्हारे, सिद्धान्त हैं मानो बालकों का खेल । जो मुख की पट्टी का उत्तर तुम नहीं दे सकते तो छोटे से कुण्ड में अनन्त जीवों के होने आदि का उत्तर देना, तुम क्या किन्तु तुम्हारे तीर्थंकरों ने भी इन विद्या की बातों को नहीं समझा था । जो समझते होते तो ऐसी असम्भव बातें क्यों लिख जाते ? सत्य है जब से तुम लोगों ने वेदविरोधी होकर वेदोक्त सत्य मत को छोड़ के कपोलकल्पित असत्य मत को ग्रहण किया है तब ही से विद्यारूप प्रकाश से पृथक् होकर अविद्यारूप अन्धकार में प्रविष्ट हो गये हो । इसी से ईश्वर, जीव और पृथिवी आदि तत्त्वों को यथावत् नहीं जान सकते हो ।

आओ ! अब भी क्यों झूठ पक्षपात करके वेदोक्त सत्य मत का स्वीकार क्यों नहीं करते और मुख पर पट्टी बांधने आदि विद्याविरुद्ध कपोलकल्पित बातों को क्यों नहीं छोड़ते और अन्यथा आग्रह करते जाते हो ? सत्य है जो तुम लोगों के आत्माओं में वेदविद्या का थोड़ा भी प्रकाश होता तो ऐसी निर्मूल झूठी बातों के लिखने में लेखनी कभी न उठाते और जो तुम्हारे सिद्धान्त सत्य होते तो चर्चा करने में झूठे हीले के बहाने क्यों पकड़ते और ऐसे अशुद्ध लेख का व्यर्थ परिश्रम क्यों करते ? यदि अब भी सच्चे हो तो सम्मुख आकर थोड़े काल में सत्यासत्य का यथार्थ निश्चय क्यों नहीं कर लेते क्योंकि जो

वाद-प्रतिवाद से बात सिद्ध होती है वही मानने योग्य है । जिस किसी ने मत मतान्तर वालों से पक्ष-प्रतिपक्ष पूर्वक वादानुवाद नहीं किया वह सत्यासत्य को ठीक-ठीक कभी नहीं जान सकता । इसीलिये तुम भी ऐसा क्यों नहीं करते ? परन्तु क्या करो नाच न आवे आंगन टेढ़ा ।

-हस्ताक्षर स्वामी दयानन्द

यह उपर्युक्त पत्र १६ जौलाई, सन् १८८१ को पण्डित वृद्धिचन्द, जगन्नाथ जोशी, व्यास रामनारायण, बाबू बिहारीलाल तथा अन्य सर्दार लोगों के हाथ स्वामी जी ने साधु जी की ओर भेजा । जब वे लेकर चले तो उस समय लगभग दो सौ मनुष्यों के इकट्ठे हो गये थे । इन्होंने पहुंचते ही साधु जी को उक्त पत्र पढ़ सुनाया और निवेदन किया कि अब आप इस का फिर उत्तर दीजिये । परन्तु पाठकगण ! उत्तर देने में तो विद्या चाहिये। न जाने पहले किस की सहायता से उत्तर लिखा था । विशेष क्या लिखूं साधु जी के छक्के छूट गये ।

अन्त को उन लोगों ने जब बहुत कहा सुना तब यही मुख से निकला कि हमारे से तो उत्तर कोई नहीं बन आता । आपां तो साधु हैं । जब लोगों ने देखा कि अब साधु जी ने ही अपने मुख से हार मान ली तो अब विशेष कहना उचित नहीं, यह समझकर नमस्ते करके चले आये और सब वृत्तान्त राव साहब और स्वामी जी से निवेदन कर अपने-अपने स्थानों को चले गये।

हस्ताक्षर-वृद्धिचन्द श्रीमाल, मसूदा

(''देश-हितैषी'' खण्ड १, संख्या ६, संवत् १९३५ आश्विन, पृष्ठ १२ से १५ तक ।) (दिग्विजयार्क पृ० ३१, लेखराम पृष्ठ ६७५-६८०)

ईसामसीह पर विश्वास

(मसूदा में बिहारीलाल ईसाई से शास्त्रार्थ-जौलाई, १८८१)

श्रावण शुक्ला ४, संवत् १९३८ अर्थात् ३० जौलाई, सन् १८८१ को पूर्वोक्त बाबू बिहारीलाल ईसाई पुनः महाराज से मिलने आये । थोड़ी देर बातचीत होने के पश्चात् धर्म-विषय में वार्तालाप होने लगा । इस पर राव साहब ने उन से कहा कि आप पादरी शूलब्रेड के शिष्य हैं और मैं स्वामी जी महाराज का, आज मेरा और आप का संवाद होगा । इसे बिहारीलाल ने स्वीकार कर लिया । राव साहब ने उन से प्रश्न किया कि बाइबिल में लिखा है कि ईसामसीह ने एक बार उपदेश में कहा कि यदि आप लोगों में राई बराबर विश्वास हो तो इस पहाड़ को चलायमान कर सकते हो । अतः यदि आपका विश्वास पूरा है तो इस (सोहन नगरी) पहाड़ को अपनी जगह से हटा दो । पादरी

साहब कुछ उत्तर न दे सके । और अन्त में उन्होंने यह कहकर पीछा छुड़वाया कि इसका उत्तर मैं अब नहीं दे सकता, पादरी शूलब्रेड से पूछकर उत्तर दूंगा।

(लेखराम पृष्ठ ६८९-६९०)

मुसलमान दासी-पुत्र

(मसूदा में काजी जी से वार्तालाप-अगस्त, १८८१)

२७ अगस्त, सन् १८८१ अर्थात् भाद्रपद शुक्ला को मुसलमानों की ईदुल-फितर (रोजों की ईद) थी । काजी जी भी आ गये थे । २८ अगस्त को महाराज प्रात:काल ८ बजे भ्रमण करके लौटे ही थे कि उन्होंने यवनों का झुण्ड अपने निवास स्थान की ओर आते देखा । उन्होंने चांदमल कोठारी राज्य मसूदा को, जो उनके साथ मसूदा से आये थे, बुलाया और कहा कि देखो क्या बात है, ये लोग क्यों आ रहे हैं वे नीचे गये और यवन समुदाय के नेता से वृत्त ज्ञात करके स्वामी जी से कहा । उन्होंने कहा कि-ऊपर बुलाओ । महाराज कुर्सी पर बैठ गये और वे लोग फर्श पर बैठ गये । आते ही काजी जी से निम्न प्रश्नोत्तर हुए-

काजी-आप हमें दासी-पुत्र कैसे बतलाते हैं ?

स्वामी जी-अपने कुरानशरीफ को देखो । इब्राहीम की दो स्त्रियां थीं एक विवाहिता सारा, दूसरी दासी हाजिरा, जिसे उन्होंने घर में डाल लिया था ...... अत: आप के दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ?

काजी-कुरान में ऐसा नहीं लिखा ।

स्वामी जी-(रामानन्द ब्रह्मचारी से कुरान की पुस्तक मंगाकर) देखिये, सूरा अनकबूत में लिखा है कि उसी साल (खुदा ने) उसे (इब्राहीम को) हाजिरा (के गर्भ) से जो सारा की दासी थी, इस्माईल प्रदान किया ।

काजी-वह दासी तो थी, परन्तु निकाह कर लिया था ।

स्वामी जी-फिर भी वह वास्तव में दासी ही तो थी, फिर आप के **दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ?**

इस पर काजी जी निरुत्तर हो गये और मुसलमान देखते के देखते रह गये ।*

(देवेन्द्रनाथ २।२७८)

कबीर पन्थ

(कबीर पन्थी साधु के साथ मसूदा में धर्मचर्चा-अगस्त, १८८१)

अगस्त, सन् १८८१ के पहले सप्ताह में एक दिन एक साधु कबीरपन्थी

***इस शास्त्रार्थ का लेखरामलिखित विस्तृत विवरण पृ० २४२ पर भी है ।**

ब्यावर से स्वामी जी के पास मसूदा में आया और परस्पर धर्मचर्चा होने लगी।

स्वामी जी–आपके मत के कितने ग्रन्थ हैं ?

साधु जी–हमारे २४ करोड़ पुस्तक हैं ।

स्वामी जी–यह बात मिथ्या है क्योंकि इतने ग्रन्थों की संख्या और रखने को कितना स्थान चाहिए ? (इस पर साधु जी कुछ भी न बोले) ।

तब स्वामी जी ने फिर कहा कि तुम्हारे कबीर कौन थे और जब तुम कबीरमत में होते हो तब उन की प्रशादी और गुरु का उच्छिष्ट भी खाते हो कि नहीं ?

साधु जी–उच्छिष्ट खाते हैं । कबीर का जन्म नहीं है, अजन्म है । उस के मां बाप भी नहीं ।

स्वामी जी–कबीर जी काशी में कुकर्म से उत्पन्न हुए थे । इस कारण उस की मां ने उसे बाहर फेंक दिया था । उसी समय वहां पर (जहां पर कबीर पड़ा था) एक मुसलमान जुलाहा आ निकला । वह कबीर को उठाकर घर ले गया और अपना पुत्र सा जान उस को पाला और बड़ा किया । अब देखिये कि उस का जन्म भी हुआ और मां बाप भी ठहरे ।

साधु जी इस बात को सुनकर चुप रहे और कुछ उत्तर न दिया फिर और विषय पर बातें होती रहीं ।

(''देश-हितैषी'' खण्ड १, संख्या ८, पृष्ठ ६, ७) (लेखराम पृष्ठ ५४६)

क्या मुसलमान दासीपुत्र हैं ?

(काजी जी रायपुर से प्रश्नोत्तर–२८ अगस्त, १८८१)

१९ अगस्त, सन् १८८१, शुक्रवार दिन के आठ बजे स्वामी जी रायपुर पधारे और नगर के बाहर पहुंच कर माधोदास की वाटिका में जिसके द्वार पर एक महल है और स्वामी जी के उतारने के लिए साफ कराया गया था, आनकर ठहरे । उस समय बूंदाबांदी हो रही थी ।

स्वामी जी के पधारने की सूचना जब ठाकुर हरिसिंह जी को हुई तब वे अपने बन्धुजन और दरबारियों समेत दर्शन करने के लिए आये । एक अशर्फी और पांच रुपया भेंट कर हाथ जोड़ खड़े रहे । स्वामी जी ने पूछा कि आप प्रसन्न तो हैं ? उत्तर दिया कि हां आज आपके दर्शन से प्रसन्न हूं । फिर सब यथायोग्य बैठ गए ।

फिर स्वामी जी ने प्रश्न किया कि आप के यहां राजमन्त्री कौन हैं? ठाकुर साहब ने उत्तर दिया कि शेख इलाहीबख्श हैं परन्तु वे जोधपुर गये

हैं, उनके भतीजे करीमबख्श जी उनके पीछे सारे काम का प्रबन्ध करते हैं और बतलाया कि वे बैठे हैं। तब महाराज ने कहा कि "आपके यहां मुसलमान मन्त्री हैं। ओहो, ये तो दासीपुत्र हैं। आर्य पुरुषों को उचित है कि यवनों को अपना राजमन्त्री न बनावें।" ऐसा कहने से करीमबख्श और ५-७ मुसलमान जो वहां उपस्थित थे, क्रोध में आकर गुड़गुड़ाने लगे और ठाकुर साहब भी स्वामी जी से आज्ञा लेकर अपने राजमहलों में चले गये। और मुसलमानों ने शेख जी की हवेली में इकट्ठे होकर यह विचार किया कि उन्होंने हम को दासी का पुत्र बताया। इसलिए उन से फौजदारी (लड़ाई) करनी चाहिए। जिस पर किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ। किन्तु एक चमनू खाँ मुसलमान ने कहा कि मेरी बात मानो और पहले कुछ न करो। पांच सात दिन पश्चात् जब रमजान की ईद पर काजी जी आवेंगे तो उन को ले जाकर स्वामी जी से प्रश्नोत्तर करायेंगे। यदि झूठे होंगे तो फिर ऐसा ही करेंगे। यह बात सब ने स्वीकार की।

२७ अगस्त, सन् १८८१ को ईदउल् फितर पर काजी जी आये और २८ अगस्त, सन् १८८१, रविवार तदनुसार भादों सुदि ४ को जब प्रातःकाल स्वामी जी आठ बजे के समय बाहर से घूमकर आये तो उन्होंने यवनों का झुण्ड अपने मकान की ओर आते देखा। स्वामी जी ने मुझ को पुकारा कि कोठारी जी ! ऊपर आओ। मैं ऊपर गया। कहने लगे कि देखो कदाचित् यवनों का समूह आता है। मैंने नीचे आनकर मुसलमानों को आते देखा। उन को नीचे ठहराकर स्वामी जी से जाकर कहा कि यहां आते हैं। महाराज दुग्धपान करके कुर्सी बिछवा कर स्वयं बैठ गये और उन को बुलवाया और फर्श पर बिठा दिया। आते ही काजी जी ने प्रश्न किया–

आप हम को दासीपुत्र कैसे बतलाते हो ?

स्वामी जी–अपने कुरान शरीफ को देखो। इसराईल जिस को इब्राहीम कहते हो उस की दो पत्नियां थीं–एक ब्याही हुई "सारा", दूसरी दासी "हाजरा"। जिस को उन्होंने घर में डाला हुआ था। ब्याही हुई केवल सारा थी। अब देखिये कि **सारा से अंग्रेज लोग और हाजरा से तुम लोग उत्पन्न हुए।** फिर **दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ?**

काजी–कुरान में ऐसा नहीं लिखा।

स्वामी जी ने रामानन्द ब्रह्मचारी को कहा कि कुरान का पुस्तक लाओ। पुस्तक लाकर काजी को दिखलाया (कुरान सूरते अनकबूत–उसी वर्ष में इसमाईल को हाजरा ने उत्पन्न किया जो सारा खातून की दासी थी।

(खण्ड २, पृष्ठ १६७)

काजी—वह दासी तो थी परन्तु निकाह (विवाह) कर लिया था ।

स्वामी जी—फिर भी वास्तव में दासी ही है तो फिर आप के दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ?

इस पर काजी जी निरुत्तर हो गये । मुसलमान सब देखते के देखते रह गये ।

तब कुरान को स्वामी जी ने हाथ से पृथ्वी पर रख दिया ।

काजी जी ने कहा—आपने यह क्या किया कि कुरान को पांव में रख दिया ।

स्वामी जी—काजी साहब ! तनिक विचार करो, क्या काजी नाम ही के कहलाते हो । कागज और स्याही कैसे बनती है, और छापाखाने में किस पर कागज छपते हैं, और कलम (लेखनी) क्या चीज है और कहां उत्पन्न होती है । इस पर निरुत्तर होकर काजी जी उठ खड़े हुए और उन के साथी सब यवन शान्त होकर चले गये । (लेखराम पृष्ठ ५४७-५४८)

परमात्मा विषय

(श्रीमान् राजा गोविन्दसिंह जी बहादुर बनेड़ा नरेश के प्रश्नों का उत्तर—अक्टूबर, सन् १८८१)

प्रश्न—जीव, आत्मा और परमात्मा क्या है और उन में क्या भेद है ?

उत्तर—जीव और आत्मा को तो हम एक ही मानते हैं और परमात्मा परमेश्वर उससे न्यारा है । हम ने गीता के दो श्लोक पढ़े—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥

स्वामी जी ने कहा गीता प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है । हम गीता को प्रामाणिक नहीं मानते । (लेखराम पृष्ठ ५५०)

ईसाई मत

(बम्बई में रैवरेण्ड जौसेफ कोक पादरी से शास्त्रार्थ—१८ जनवरी, १८८२)

रैवरेण्ड जौसेफ कोक ने बम्बई टाउनहाल में १७ जनवरी, सन् १८८२ को एक व्याख्यान दिया, जिस में उस ने बतलाया कि—**केवल ईसाईमत सच्चा**

और ईश्वर की ओर से है और यह समस्त भूमण्डल पर फैलेगा । शेष कोई मत ईश्वर की ओर से नहीं ।

स्वामी जी ने एक चिट्ठी लिखी । जिस का अंग्रेजी अनुवाद कर्नल अलकाट ने स्वामी जी के सामने करके महाराज के हस्ताक्षर कराने के पश्चात् पादरी साहब की सेवा में भेज दिया । अगले रविवार को साढ़े पांच बजे का समय फ्राम जी, काऊस जी, इन्स्टीट्यूट में शास्त्रार्थ के लिए नियत किया किन्तु पादरी कोक ने एक कोरा उत्तर पत्र के द्वारा कि ''मैं चुनौतियों को स्वीकार नहीं करता हूं क्योंकि इन का प्रकट उद्देश्य अविश्वास को फैलाना है ।'' अपना पिण्ड छुड़ाया । (लेखराम पृष्ठ ६९०)

रामस्नेही मत

(शाहपुरा में रामस्नेहियों से प्रश्नोत्तर—मार्च, १८८२)

शाहपुरा में रामस्नेहियों का एक मेला था । उस में व्यावर के कुछ रामस्नेही वैश्य आए हुए थे । एक दिन वे महाराज का व्याख्यान सुनने के लिए आए । उस समय तक व्याख्यान आरम्भ नहीं हुआ था, वे महाराज को राम-राम करके बैठ गये । महाराज ने उस का उत्तर 'नमस्ते' शब्द से दिया। थोड़ी देर बाद महाराज ने पूछा कि तुम लोग इतने दिन से राम-राम जपते हो, इससे क्या लाभ है ? उन्होंने कहा—पहले नाम पीछे नामी, जैसे हम ने पहले आप का नाम सुना और पीछे ढूंढते-ढूंढते आप को पा लिया। जैसे पहले काशी कहते-कहते और पीछे ढूंढते-ढूंढते मनुष्य काशी पहुंच जाता है। ऐसे ही राम-राम कहते-कहते मनुष्य पीछे राम को पा लेता है । महाराज ने उत्तर दिया कि मैंने तो कभी पहले तुम्हारा नाम नहीं जपा, परन्तु फिर भी मैंने तुम्हें अपने सम्मुख बैठे पा लिया । **केवल नाम लेने से परमेश्वर नहीं मिल सकता।** उस के लिए साधन करना आवश्यक है । केवल लड्डू कहने से ही लड्डू नहीं मिल सकता, उस के लिए उपयुक्त साधन करना होता है। ये बातें हो ही रही थीं कि पांच छः वर्ष के बालक जो इन वैश्यों की गोद में बैठे हुए थे, हठात् उठकर कहने लगे बाबा जी ! स्वामी जी सच कहते हैं । लड्डू-लड्डू कहने से क्या लड्डू मिल सकते हैं ? यह सुनकर सब लोग विस्मित हो गए । तब महाराज ने कहा कि ये बालक पक्षपाती नहीं हैं, इन्होंने किसी के कहने से ऐसा नहीं कहा । अब इन बालकों की सरलोक्तिपूर्ण मध्यस्थता से हमारे तुम्हारे शास्त्रार्थ की सुन्दर मीमांसा हो गई।

(देवेन्द्रनाथ २।३१९)

निस्सन्देह कौन होते हैं

(शाहपुरा में राजपुरोहित से वार्त्तालाप—मार्च, १८८२)

रविवार को महाराज वेदभाष्य का कार्य नहीं किया करते थे। एक रविवार को राजपुरोहित छविमल व्यास महाराज के पास आये और 'नमो नारायण' कहकर बैठ गए। महाराज ने उन का 'नमस्ते' शब्द से अभिवादन किया और कहा कि आइये, आज हमारी छुट्टी है और आप से शास्त्रचर्चा करने की सुविधा है। व्यास जी ने कहा कि छुट्टी-मुक्ति तो हमारे लिए हो सकती है क्योंकि हम संसार-बन्धन में बद्ध हैं। आप तो संसार-बन्धन में ही नहीं, फिर आप की छुट्टी वा मुक्ति कैसी ? महाराज ने कहा कि—हमारी वेदभाष्य के कार्य से छुट्टी है। व्यास जी ने कहा कि वेदभाष्य धर्म-कार्य से छुट्टी कैसी? महाराज ने कहा कि धर्म-कार्य से नहीं, वेदभाष्य के कार्य से छुट्टी है। फिर महाराज ने कहा कि कोई शङ्का-सन्देह हो तो कहिये। व्यास जी ने उत्तर दिया कि हम तो निःसन्देह हैं, हम किसी शङ्का-सन्देह के निवारण करने के लिए आपके पास नहीं आये, हम तो केवल आप से मिलने के लिए आये हैं। महाराज ने कहा कि निस्सन्देह तो दो ही प्रकार के लोग हो सकते हैं।

यश्च मूढतमो लोको यश्च बुद्धेः पारङ्गतः ।
द्वौ हीमौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥

अर्थ—दो ही प्रकार के लोग सुख भोगते हैं एक तो वह जो अत्यन्त मूढ़ हों, दूसरा वह जो परम बुद्धिमान् हो, दोनों के बीच के लोग क्लेश पाते हैं।

आप इन दोनों में कौन हैं ? व्यास जी ने इस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया, परन्तु थोड़ी देर पीछे कहा कि आप जो समझें, आप तो बुद्धिमान् ही हैं। (देवेन्द्रनाथ २।३२०)

मूर्तिपूजा

(शाहपुरा में बिहारीलाल से प्रश्नोत्तर—मार्च, १८८२)

बिहारीलाल नामक एक विद्यार्थी थे। उन्होंने महाराज से तीन प्रश्न किये—

प्रश्न १—पाणिनि की अष्टाध्यायी के तीसरे अध्याय के दूसरे पाद के १७७वें सूत्र "भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्" में ग्राव-स्तुति अर्थात् पत्थर की स्तुति प्रतिपादित की गई है।

प्रश्न २—पाणिनि के एक सूत्र का उल्लेख करके कहा कि इस से शिव, स्कन्द, विष्णु प्रभृति की मूर्ति सिद्ध होती है।

प्रश्न ३–ईश्वर सर्वव्यापक है वा नहीं ?

महाराज ने इन प्रश्नों के उत्तर क्रमशः इस प्रकार दिये–

उत्तर १–स्तुति अनेक वस्तुओं की होती है । जैसे कारीगर कहते हैं कि यह पत्थर उत्तम है, यह काष्ठ उत्तम है । ग्रावा के अर्थ पत्थर अवश्य हैं, परन्तु इस से पत्थर की सिद्धि नहीं होती ।

उत्तर २–**उस समय शिव, विष्णु आदि मनुष्य के नाम होते थे।** विदेश आदि जाने पर उन की मूर्तियां रक्खी जाती थीं, परन्तु इस से शिव, विष्णु आदि की पूजा सिद्ध नहीं होती ।

उत्तर ३–परमेश्वर सर्वव्यापक है ।

इस पर बिहारीलाल ने कहा कि तो फिर मैं प्रस्तरादि में ईश्वर को व्यापक समझ कर उसकी पूजा कर सकता हूं ।

महाराज ने उत्तर दिया कि तुम्हारी झाँझ, घण्टे आदि और तुम्हारी वाणी, गले आदि में भी ईश्वर है । तो तुम ईश्वर के एक अंश को आहत कर के (घण्टा, घड़ियाल बजाकर) उस के दूसरे अंश (प्रस्तरादि) की पूजा करते हो, यह क्या बात है ? और यदि तुम पत्थर में यथार्थ रूप से ईश्वर-बुद्धि करके पत्थर को पूज सकते हो तो बालू को शर्करा समझ कर भोजन क्यों नहीं करते ?

बिहारीलाल ने महाराज की इस प्रकार की युक्तियाँ सुनकर मूर्तिपूजन करना त्याग दिया और वह महाराज का शुद्ध चित्त से अनुयायी हो गया।

(देवेन्द्रनाथ २।३२०)

अनेक विषय

(मुन्शी इन्द्रमणि जी के शिष्य ला० जगन्नाथदास की बनाई आर्य-प्रश्नोत्तरी की समालोचना–अप्रैल, १८८२)

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र विज्ञापन संस्करण २ पृष्ठ ३४४ से उद्धृत

श्रीयुत सम्पादक देशहितैषी महाशय मन्त्री आर्यसमाजअजमेर-समीपेषु।

प्रिय सम्पादकवर ! जो मनुष्य स्वार्थ बुद्धि छोड़ परमार्थ करने में प्रवृत्त नहीं होता, उस का हृदय पूर्ण शुद्ध होना असम्भव है । चाहे वह बहुत युक्ति और गूढ़ता अपनी कपटता को प्रसिद्ध करने में कैसा ही यत्नवान् क्यों न हो । उसका कपट कभी न कभी प्रकाशित हो ही जाता है । प्रत्यक्ष दृष्टान्त देख लो कि लाला जगन्नाथदास मुन्शी इन्द्रमणि जी के शिष्य की बनाई हुई (आर्य-प्रश्नोत्तरी) की समालोचना करने से (बहुत से विषय उस में सत्य

और परोपकारक दीख पड़ते हैं परन्तु बहुधा विषय ऐसे भी हैं कि जिन के सुनने वा पाठ करने वालों का भ्रमजाल में फंस वेदादि सत्य शास्त्रों से विरुद्ध होना सम्भव है । ये विरुद्ध विषय केवल लाला जगन्नाथदास ही के अभिप्राय से नहीं किन्तु मुन्शी इन्द्रमणि भी उन दोषयुक्त विषयों के अनुयायी प्रतीत होते हैं ।) अस्तु, जो हो मुझ को सत्य-सत्य परीक्षा इस ग्रन्थ की करके दोषों का प्रकाश करना अवश्य है । कारण सज्जन लोग गुण ग्रहण कर दोषों को छोड़ दें । इतना ही नहीं किन्तु जैसे विषयुक्त उत्तमान्न का बुद्धिमानों को त्याग करना अवश्य होता है, इसी प्रकार आर्य लोगों के लिए यह (आर्य प्रश्नोत्तरी) ग्रन्थ गुणों के साथ दोषदायक होने से श्रेष्ठ को त्याग के योग्य है । अब इस का कुछ थोड़ा सा नमूना संक्षेप से दिखलाता हूं ।

[आर्य प्रश्नोत्तरी पृष्ठ २। प्रश्नोत्तर ७] **''परमात्मा ने सृष्टि की आदि में श्री ब्रह्मा जी के हृदय में वेदों का प्रकाश किया ।** उन से ऋषि मुनि अस्मदादिकों को प्राप्त हुए ।''

[समीक्षा] **यह बात प्रमाण करने योग्य नहीं**, क्योंकि **(अग्नेर्वै ऋग्वेदोऽजायत (अजायत) वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः)** शतपथ ब्राह्मण वचन।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ —मनुस्मृति का वचन ।

अब देखिये अग्नि आदि महर्षियों से ऋग्वेदादि का प्रकाश हुआ । इत्यादि ब्राह्मण वचनों के अनुसार मनु जी महाराज कहते हैं ब्रह्मा जी ने अग्न्यादि महर्षियों के द्वारा वेदों की प्राप्ति की । अतएव **''यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।''** इस श्वेताश्वतरोपनिषद् के वचनार्थ की सङ्गति शतपथ और मनु जी के वचन से अविरुद्ध होनी चाहिए । किन्तु परमात्मा ने चारों महर्षियों के द्वारा श्री ब्रह्मा जी को चारों वेदों की प्राप्ति कराई । और **अब भी जो कोई चार वेदों को पढ़ता है वही यज्ञ में ब्रह्मासन को प्राप्त और उसी का नाम ब्रह्मा भी होता है ।** यदि मुन्शी इन्द्रमणि जी और उन के शिष्य [१]ला० जगन्नाथदास वेद और तदनुयायी ब्राह्मणादि ग्रन्थों को पढ़े होते तो ऐसे भारी भ्रम में न पड़ ऐसे ऐसे अन्यथा भाषण वा लेख

१. जब मुन्शी इन्द्रमणि ने सहायता में आए हुए धन का पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार पूर्ण ब्यौरा न बताया और न छापा, तब श्री स्वामी जी ने उन सब से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया । तब मुन्शी जी ने आर्य-प्रश्नोत्तरी (संवत् १९३८ आर्यदर्पण प्रेस शाहजहांपुर में छापी । उस का उत्तर लिखवा कर श्री स्वामी जी ने भारतसुदशाप्रवर्तक में छपने के लिए भेजा ।

क्यों करते? इन को उचित है कि अपना हठ छोड़ सत्य का ग्रहण करें ।

(पृष्ठ ३। प्रश्नोत्तर १६) ''जीव वास्तविक अनन्त हैं। इस कारण ईश्वर के ज्ञान में भी अनन्त ही हैं ।''

(समीक्षा) जब जीव देश काल वस्तु अपरिच्छिन्न अर्थात् भिन्न-भिन्न हैं । उन को अनन्त कहना मानो एक अज्ञानी का दृष्टान्त बनना है। अनन्त तो क्या, परन्तु परमेश्वर के ज्ञान में असंख्य भी नहीं हो सकते । परमेश्वर के समीप तो सब जीव वस्तुतः अतीव अल्प हैं । जीवों की तो क्या परन्तु प्रति जीव के अनेक **कर्मों के भी अन्त और संख्या को परमेश्वर यथावत् जानता है ।** जो ऐसा न होता तो वह परब्रह्म जीव और उन के कर्मों का जैसा-जैसा जिस-जिस जीव ने कर्म किया है उन उन का फल न दे सके। जब कोई इन से प्रश्न करे कि एक-एक जीव अनन्त हैं वा सब मिल के? जो एक-एक अनन्त हैं तो ''य आत्मनि तिष्ठन्'' इत्यादि ब्राह्मण वचन अर्थात् जो परमात्मा व्याप्य जीवों में व्यापक हो रहा है और ऐसा ही ला० जगन्नाथदास ने ''पृष्ठ ५ प्रश्नोत्तर ३२'' के उत्तर में लिखा है कि ''जीवेश्वर का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध और ''पृष्ठ ४, प्रश्न २१'' में जीव को अणु माना है । जीव शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में जाता और शरीर के मध्य में रहता है । **इसलिए अनन्त वा असंख्य ईश्वर के ज्ञान में नहीं ।** किन्तु जीवों के ज्ञान में जीव असंख्य हैं । जिन ला० जगन्नाथदास वा मुन्शी इन्द्रमणि जी को अपने ग्रन्थस्थ पूर्वापर विरुद्ध विषयों का ज्ञान भी नहीं है तो आगे क्या आशा होती है । इसी से इन के सब प्रपञ्चों का उत्तर समझ लेना शिष्टों को योग्य है ।

(पृष्ठ ४, प्रश्न २४) ''जीव के गुण वास्तव में विभु हैं, परन्तु वृद्धावस्था में अविद्या से आच्छादित होने से परिछिन्न हैं। मुक्तावस्था में विभु हो जाते हैं।''

(समीक्षा) विभु गुण उसी के होते हैं जो द्रव्य भी विभु हो । और जिस को अणु मानते हैं क्या उस के गुण विभु हो सकते हैं ? क्योंकि गुणों का आधार द्रव्य होता है । भला कोई कह सकता है कि परिछिन्न द्रव्य में विभु गुण हों । क्या गुणी देशी और गुण विभु हो सकते हैं ? और गुणी को छोड़ केवल गुण पृथक् भी रह सकता है ? नहीं ! नहीं !! और जो (पृष्ठ ४१ प्रश्नोत्तर २१ में) जीव को अणु माना है । वह भी ठीक नहीं । क्योंकि एक अणु में भी जीव रह सकता है । अर्थात् एक अणु में अनेक जीव रह सकते हैं । देखो अणु अणु कांच वा पृथ्वी आदि के मध्य में से पार नहीं जा सकता और जीव जा सकता है । इसलिए जीव अणु से भी सूक्ष्म है और इसके अणु भी विभु नहीं । हां मुक्तावस्था में जिस ओर उस का ज्ञान होगा

उस दूरस्थ पदार्थ को भी अपने ज्ञान से जान लेता है । नहीं तो **''युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ।''** इस न्याय शास्त्र के सूत्र का अर्थ ही नहीं घट सकेगा । जो एक क्षण में एक पदार्थ को जाने अनेक को नहीं, उसी को मन कहते हैं । वही मन मुक्तावस्था में भी रह जाता । पुनः उसी मनरूप साधन से विभु गुण वाला जीव कैसे हो सकता है ?

(पृष्ठ ४ प्रश्न २५) ''जीव परतन्त्र है ।''

(समीक्षा) जीव किस के आधीन है ? जो कहो कि परमेश्वर के तो जो कुछ जीव कर्म करता है वह स्वतन्त्रता से वा ईश्वराधीनता से ? जो ईश्वरा-धीनता से करता है तो जीव को पाप पुण्य का फल न होना चाहिये, किन्तु ईश्वर को होना चाहिए । जैसे सेनाध्यक्ष वा राजा की आज्ञा से कोई किसी को मारे तो वह अपराधी नहीं होता, अथवा किसी के मारने में लकड़ी तलवारादि शस्त्र (न) अपराधी और न दण्डनीय होते हैं, वैसे ही जीवों को भी दण्ड न होना चाहिये । किन्तु पाप पुण्य का फल सुख-दुःख ईश्वर भोगे। इसलिए जीव अपने कर्म करने में सर्वदा स्वतन्त्र और पाप का फल दुःख भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र रह जाते हैं । जैसे चोर चोरी करने में स्वतन्त्र और राजदण्ड भोगने में परतन्त्र हो जाते हैं, इसी प्रकार जीवों को भी जानो।

(पृष्ठ ४ प्रश्नोत्तर २८) **''मुक्त जीव कर्मवश होकर फिर कभी संसार में नहीं आते । ईश्वरेच्छानुकूल अपनी इच्छा से केवल धर्म रक्षा करने को आते हैं ।''**

(समीक्षा) पाठकगण! विचारिये यह अविद्या का प्रताप नहीं है तो और क्या है ? जो कहते हैं कि जीव संसार में कभी नहीं आते और ईश्वरेच्छानुकूल अपनी इच्छा से केवल धर्म रक्षा करने को आते भी हैं । धन्य ! भला इस पूर्वापर विरुद्धता को गुरु और चेले ने तनिक भी न समझा । विचारणीय है कि जिस का ज्ञान, सामर्थ्य, कर्म अन्त वाले हैं उस का फल अनन्त कैसे हो सकता है ? और जो मुक्ति में से जीव संसार में न आवे तो संसार का उच्छेदन अर्थात् नाश ही हो जाय । और मुक्ति के स्थान में भीड़ भड़क्का हरद्वार के मेले के समान हो जावे । और ईश्वर भी अन्त गुण, कर्म वाले का फल अनन्त देवे तो न्यायरहित हो जाय । और परिमित गुण, कर्म, स्वभाव वाले जीव अनन्त आनन्द को भोग भी नहीं सकते । फिर यह बात वेद तथा शास्त्र के विरुद्ध भी है । देखो **'अग्नेर्वयं प्रतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम । स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥'** (ऋग्वेद वचन) अर्थ—हम उसी सुन्दर निष्पाप परमात्मा का नाम जानते हैं

और स्व-प्रकाश स्वरूप जगदीश्वर मोक्षप्राप्त जीवों को पुनः अवधि पर संसार में माता-पिता के दर्शन कराता है अर्थात् मुक्ति सुख को भुगाकर पुनः संसार में जन्म देता है । इसी प्रकार सांख्य शास्त्र में भी लिखा है "नात्यन्तोच्छेदः" इत्यादि वचनों से यही सिद्ध होता है कि अत्यन्त जन्म-मरण का छेदन (न) किसी का हुआ और न होगा, किन्तु समय पर पुनः जन्म लेता है । इत्यादि प्रमाणों और युक्तियों से मुक्त जीव भी पुनरावृत्ति में आते हैं ।

(पृष्ठ ४, प्रश्नोत्तर ३०) **"एक वृक्ष में एक ही जीव होता है अथवा अनेक ?" ।**

(समीक्षा) **जो एक वृक्ष में एक जीव होता तो प्रत्येक जीव (वृक्ष) में पृथक्-पृथक् जीव कहां से आते और किसी वृक्ष की डाली काटकर लगाने से जम जाता है उस में जीव कहां से आया, इसलिये एक वृक्ष में अनेक जीव होते हैं ।**

(पृष्ठ ५, प्रश्नोत्तर ३५) "अनेक पूर्व जन्मों के कर्म जो ईश्वर के ज्ञान में स्थित हैं वे सञ्चित कहलाते हैं ।"

(समीक्षा) क्या जीव का कर्म जीव के ज्ञान में सञ्चित नहीं होता ? जो ऐसा न हो तो कर्मों के योग से पवित्रता और अपवित्रता जीव में न होवे। इसलिए जो-जो अध्ययनादि कर्म जीव करते हैं उन का सञ्चय जीव में ही होता है, ईश्वर में नहीं । किन्तु ईश्वर तो केवल कर्मों का ज्ञाता है और फल-प्रदाता है ।

(पृष्ठ १२, प्रश्नोत्तर ७७) "केवल देवता और शिष्ट पुरुषों के नाम पर जन्माष्टम्यादि व्रत हैं । सो ईश्वरातिरिक्त किसी देव की उपासना कर्तव्य नहीं ।"

(समीक्षा) क्या शिष्ट पुरुषों से भिन्न भी कोई देवता है ? विना पृथिव्यादि के तैंतीस और वेद मन्त्र तथा माता-पिता आचार्य अतिथि आदि के जिन का वेदों ने पूजन अर्थात् सम्यक् सत्कार करना कहा है । क्या यह भी मनुष्यों को कर्त्तव्य नहीं ।

(पृष्ठ १३, प्रश्नोत्तर ८२) "जो कुछ ईश्वर ने नियत किया है उस में न्यूनाधिक करने वाला कोई नहीं । जो बात जिस प्राणी के लिए जिस काल में जिस प्रकार से ईश्वर ने नियत की है उस से विरुद्ध कभी नहीं होती ।"

(समीक्षा) **क्या ब्रह्मचर्य्य और योगाभ्यासादि उत्तम कर्मों से आयु का अधिक होना और कुपथ्य से वा व्यभिचारादि से न्यून नहीं होता? जब ईश्वर का नियत किया हुआ ही होता है तो जीव के कर्मों की**

अपेक्षा कुछ भी नहीं रह सकती । और जो अपेक्षा है तो केवल ईश्वर ने नियत नहीं किया किन्तु दोनों निमित्तों से होती है । जो हमारा क्रियमाण स्वतन्त्र न हो तो हम उन्नति को प्राप्त कभी नहीं हो सकते । इसलिए हम कर्म करने में स्वतन्त्र और ईश्वर जीवों के कर्मों को यथायोग्य जानकर कर्मानुसार शुभाऽशुभ फल देने में स्वतन्त्र है । ऐसा माने विना ईश्वर में वे ही दोष आ जावेंगे, जो २५ वें प्रश्नोत्तर की समीक्षा में लिख आये हैं ।

(पृष्ठ १३, प्रश्नोत्तर ८४) ''स्वर्ग संसारान्तर्गत है वा लोकान्तर ?'' ''उत्तर'' स्वर्ग लोक विशेष है वहां क्षुधा, पिपासा, बुढ़ापा आदि दुःख नहीं हैं ।''

(समीक्षा) क्या लोकान्तर का नाम संसार है या नहीं । क्या विना मुक्ति के प्रलय अथवा स्थूल शरीर के क्षुधादि की निवृत्ति हो सकती है । ऐसे विशेष स्वर्ग लोक को गुरु-शिष्य देख आये होंगे । जो पूर्व मीमांसा को देखा होता तो ऐसी अन्यथा बातें क्यों लिखते। देखिये **''स एव स्वर्गः स्यात् सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात् ।''** पूर्व मीमांसा का वचन । जो सर्वत्र अविशेष अर्थात् सुख विशेष की प्राप्ति का नाम स्वर्ग और दुःखविशेष की प्राप्ति का नाम नरक लिखा है । सब जीवों को सब संसार में प्राप्त होता है किसी विशेष लोकान्तर ही में नहीं । और जहां शरीर धारण, श्वास, प्रश्वास, भोग, वृद्धि क्षय आदि होते हैं वहां क्षुधा, पिपासा और बुड्ढापन आदि क्यों नहीं ? यह सब अविद्या की बात है । ध्यान दीजिये वेद का कोष क्या कहता है (स्वः) साधारण नाम में है निघण्टु १।४ । **''स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् सः स्वर्गः।''** जिस में सुख की प्राप्ति हो वह स्वर्ग कहाता है परन्तु **''गौणमुख्ययोर्मध्ये मुख्ये कार्य्य-सम्प्रत्ययः।''** यह व्याकरण महाभाष्यकार का वचन है । इससे यह सिद्ध होता है कि निर्मल धर्म्माऽनुष्ठानजन्य सत्य विद्यादि साधनों से सिद्ध आत्मीय और शारीरिक सुख विशेष है । उसी प्रधान सुख की प्राप्ति का नाम स्वर्ग है ।

(पृष्ठ १४, प्रश्नोत्तर ९१) **''सम्पूर्ण जीव वास्तव में ईश्वर के दास हैं । इस कारण मनुष्यों के नाम में ईश्वर वाच्य शब्द में दास शब्द का प्रयोग करना अत्युत्तम है ?''**

(समीक्षा) यह शास्त्रीय व्यवहार से सर्वथा बाहर है । किन्तु केवल कपोलकल्पना मात्र ही है । क्योंकि–

शर्म्मवद् ब्राह्मणस्य स्यात् राज्ञो रक्षासमन्वितम् ।
वैश्यस्य गुप्तसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ मनु०

जैसे ब्राह्मण का नाम विष्णु शर्म्मा, क्षत्रिय का विष्णु वर्म्मा, वैश्य का विष्णु गुप्त और शूद्र का विष्णुदास इस प्रकार रखना चाहिये । जो कोई द्विज

शूद्र बनना चाहे तो अपना नाम दासशब्दान्त धर ले और जो शास्त्रोक्त विधि छोड़ मनोमुख चले उस को क्या कहना !

(पृष्ठ १६, प्रश्नोत्तर ९७) ''परलोक और धर्मार्थ के फल तथा ईश्वर को न मानने वाले को नास्तिक कहते हैं ।''

(समीक्षा) इस में केवल इतनी न्यूनता है कि **''नास्तिको वेदनिन्दकः''** जो लाला जगन्नाथदास और मुन्शी इन्द्रमणि जी ने मनुस्मृति पढ़ी वा अच्छे प्रकार से देखी भी होती तो वेदनिन्दक का नाम नास्तिक में क्यों न लिखते, जिस से सब कुछ अर्थ आ जाता और लक्षण भी दृष्टि पड़ता ।

(पृष्ठ १६, प्रश्नोत्तर ९८) **''हिन्दू'' शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है,** फारसी भाषा में वास्तविक अर्थ ''हिन्दुस्तान'' के रहने वाले का अर्थ है और **(काला, लुटेरा, गुलाम) ये सांकेतिकार्थ हैं ।''**

(समीक्षा) वह क्या ! जब संस्कृत भाषा का नहीं है तो इस का वास्तविक अर्थ कभी नहीं हो सकता, वास्तविक अर्थ (में) इस देश वालों–का नाम (आर्य्य) और इस देश का नाम आर्य्यावर्त्त है''। इस सत्यार्थ को छोड़ असत्यार्थ की कल्पना करनी मुझ को तो अविद्या और हठ की लीला दृष्टि पड़ती है। जब ''अर्बी'' की (लुगात) नामक पुस्तक में लिखा है कि **लुटेरे आदि का नाम हिन्दू है** तो उस भाषा में वास्तविक नाम क्यों नहीं ? केवल साङ्केतिक अर्थ क्यों ? अर्थात् जो कोई आर्य्य होकर अपने हिन्दू नाम होने में आग्रह करे, उन्हीं का नाम काला, लुटेरा, गुलामादि का रखो, आर्य्य का नहीं ।

(पृष्ठ १६, प्रश्नोत्तर १००) ''पहले कहने वाला ''परमात्मा जयति'' कहे और उत्तर देने वाला ''जयति परमात्मा'' कहे ।''

(समीक्षा) यह कल्पना वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध होने के कारण सर्वथा ही मिथ्या जान पड़ती है क्योंकि ''नमस्ते रुद्र मन्यवे० । नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः'' इत्यादि यजुर्वेद वचन ''परमर्षिभ्यो नमः'' ''नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो'' इत्यादि उपनिषद् वचन, इन से निश्चित यही सिद्ध होता है कि परस्पर सत्कारार्थ (नमस्ते) शब्द से व्यवहार करने में वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है और परस्पर अर्थ भी यथावत् घटता है जैसे (ते) तुभ्यं वा तव अर्थात् जिस को मान्य देता है उस का वाची है और (नमः) शब्द नम्रार्थवाचक होने से नमस्कार कर्त्ता का बोधक है मैं तुम कू नमता हूं अर्थात् (ते) आप वा तेरा मान्य वा सत्कार करता हूं। इस में नमस्कर्ता और नमस्करणीय दोनों का परस्पर प्रसङ्ग प्रकाशित होता है और यही अभिप्राय दोनों का है कि दोनों प्रसन्न रहें और जो असम्बद्ध प्रलाप अर्थात् तीसरे परमेश्वर का प्रसङ्ग लाना है सो व्यर्थ

ही है । जैसे **''आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे ।''** किसी ने किसी से पूछा कि आम्र के वृक्ष कौन से हैं ? उस ने उसे उत्तर दिया कि ये कचनार के वृक्ष हैं । क्या ऐसी ही यह बात नहीं है ? किसी ने ईश्वर का प्रश्न पूछा ही नहीं और न कोई परस्पर सत्कार के व्यवहार में ईश्वर प्रसंग है और कह देना कि (परमात्मा सारे उत्कर्षों के साथ विराजमान है) यह वचन हठयुक्त का नहीं तो और क्या है ? हां जहां परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, उपदेश और व्याख्या करने का प्रसंग हो वहां परमात्मा के नाम का उच्चारण करना सब को उचित है । जैसा राम-राम, जय गोपाल, जय कृष्णादि शब्दों से परस्पर व्यवहार करना, यह हठ दुराग्रह से सम्प्रदायी लोगों ने वेदादि शास्त्रविरुद्ध मनमानी व्यर्थ कल्पना की है, उसी प्रकार से मुन्शी इन्द्रमणि जी व लाला जगन्नाथ जी की युक्ति और प्रमाण से शून्य यह कल्पना दृष्टि पड़ती है ।

इन विषयों में मुन्शी इन्द्रमणि जी और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का संवाद पूर्व समय में भी हो चुका है । परन्तु मुन्शी जी कब मानते हैं। विशेष क्या लिखें । शोक है कि लाला जगन्नाथदास की करतूतों को विचार कर अब मुझ को यह कहना पड़ा कि इन दोनों महात्माओं के प्रतिज्ञा से विरुद्ध करना आदि अन्यथा व्यवहारों को जो कोई सज्जन पुरुष जानना चाहें, वे आर्यसमाज मेरठ लाला रामसरनदासादि व भद्र पुरुषों से पूछ देखें कि अन्य-मार्गियों के विवाद विषय के शान्तिकारक व्यवहार प्रसंग में इन्होंने कैसा-कैसा विपरीत व्यवहार किया, जिस को सब जानकार आर्य लोग जानते हैं । सत्य यह बात चली आती है कि **''सब पापों का पाप लोभ है।''** जो कोई उसी तृष्णारूपी नदीप्रवाह में बहे जाते हैं उन में पवित्र वेदोक्त आर्य धर्म की स्थिरता होनी कठिन है । अब जो मुन्शी इन्द्रमणि जी और उन के चेले लाला जगन्नाथदास, स्वामी जी और भद्र आर्यों की व्यर्थ निन्दा करें तो इसमें क्या आश्चर्य है ? पाठक गण ! ठीक ही तो है जब जैसे में वैसा मिले फिर क्या न्यूनता रहे । जैसे दावानल अग्नि का सहायक वायु होता है वैसे ही इनके श्री मुन्शी बख्तावरसिंह जी सहायकारी बन बैठे । अब तो जितनी निन्दा आर्य लोगों की करें उतनी ही थोड़ी । चलो भाई यह भी अच्छी मण्डली जुड़ी। महाशयो ! जब तक तुम्हारा पेट न भरे तब तक निन्दा करने में कसर न रखना क्योंकि यह अवसर अच्छा मिला है । जैसे किसी कवि ने यह श्लोक कहा है सो बहुत ठीक है ।

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥

चाहे कोई अपने मतलब की नीति में चतुर निन्दा करे वा स्तुति करे, चाहे लक्ष्मी प्राप्त हो वा चली जावे, चाहे मरण आज ही हो वा वर्षान्तरों में, परन्तु जो धीर पुरुष महाशय महात्मा आप्तजन हैं वे धर्म्म-मार्ग से एक पाद भी विरुद्ध अर्थात् अधर्म-मार्ग में नहीं चलते ।।

सभ्य गणो ! यह तो आर्य्यों की शुभेच्छा का कारण है, परन्तु जो प्रथम उत्तमाचरण करके पश्चात् गड़बड़ा जायें वे ही तो आर्य्यावर्त्त के हानिकारक होते हैं । परन्तु यह सदा ध्यान में रखना चाहिए कि "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" जो इस सनातन वेदोक्त सत्य धर्म का आचरण करते हैं उस में अनेक विघ्न क्यूं न होवें, तदपि इस सत्यमार्ग से चलायमान न होना चाहिए । सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर परमात्मा अपनी कृपादृष्टि से इन विघ्नों से हम से और हम को इनसे सर्वथा दूर रखकर हम से आर्य्यावर्त्त की उन्नति कराने में सहायक रहे। इस थोड़े लेख से सज्जन पुरुष बहुत सा जान लेंगे । अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ।

ध्यान किसका और कैसे करें

(महाराणा उदयपुर से प्रश्नोत्तर-अगस्त, १८८२)

स्वामी जी ११ अगस्त, सन् १८८२ से १ मार्च सन् १८८३ तक उदयपुर में रहे । इसी अवधि में एक दिन प्रातःकाल के समय जब स्वामी जी ध्यान से निवृत्त हुए तो दर्बार (महाराणा उदयपुर) ने उन से प्रश्न किया कि जब किसी मूर्तिमान् वस्तु को चाहे वह कैसी ही हो आप नहीं मानते तो ध्यान किस का करें ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि कोई चीज मानकर ध्यान नहीं करना चाहिये। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वसृष्टिकर्ता, सृष्टि को एक क्रम में चलाने वाला, नियन्ता, पालनकर्ता और ऐसे ही अनेक ब्रह्माण्डों का स्वामी और नियन्ता ऐसी-ऐसी उस की महिमा का स्मरण करके अपने चित्त में उस की महानता का ध्यान करना चाहिये अर्थात् इसी प्रकार समस्त विशेषणों से युक्त परमेश्वर को स्मरण करके उस का ध्यान करना और उस की अपार महिमा का वर्णन करना संसार के उपकार में चित्त की वृत्ति लगाने की प्रार्थना करना, यह ध्यान है । (लेखराम पृष्ठ ५५६)

ब्रह्मचर्य का महत्त्व

(कविराज शामलदास जी उदयपुर से वार्तालाप–अगस्त, १८८२)

शामलदास ने कहा–

एक दिन मैंने निवेदन किया कि आपका स्मारक चिह्न बनना चाहिए। कहा कि नहीं; प्रत्युत मेरी भस्मी को किसी खेत में डाल देना, काम आयेगी। कोई स्मारक न बनाना, ऐसा न हो कि मेरी मूर्तिपूजा आरम्भ हो जाये । मेरा (शामलदास) का विचार था कि आप की प्रस्तर मूर्ति बनवाऊं । कहा कि–कविराज जी ऐसा न करना मूर्तिपूजा का मूल यही है ? उन की समस्त बातें श्रेष्ठ थीं । ब्रह्मचारी तो प्रथम श्रेणी के थे । जहां तक उन से हो सकता था स्त्रियों को देखते ही नहीं थे । उन का कथन था कि 'वीर्य का नाश आयु का नाश है । वह वीर्य बड़ा रत्न है' । यदि मार्ग में जाते हुए कहीं कोई स्त्री आ जाती तो उस ओर पीठ कर लिया करते थे । उन की यह बातें ढोंग नहीं प्रत्युत सच्ची और हार्दिक थीं, क्योंकि वे एक महान् जितेन्द्रिय थे । (लेखराम पृष्ठ ५५७)

ईश्वरीय ज्ञान अनादि है

मौलवी अब्दुल रहमान साहब न्यायाधीश से उदयपुर में शास्त्रार्थ ११ तथा १३ व १७ सितम्बर, १८८२ ई०

पण्डित बृजनाथ जी शासक साइर मेवाड़ देश (जो उस समय इस शास्त्रार्थ के लिखने वाले थे) ने कथन किया कि मैं उस समय स्वामी जी के मध्य दुभाषिया भी था । अर्बी के कठोर शब्दों का अर्थ स्वामी जी को और संस्कृत के कठिन शब्दों का अर्थ मौलवी को बता दिया करता था । यह शास्त्रार्थ मैंने उस समय अपने हाथ से लिखा जिसका मूल लेख पेंसिल का लिखा हुआ अभी तक विद्यमान है ।

तीन मनुष्य इस शास्त्रार्थ के लिखने वाले थे । एक पण्डित बृजनाथ जी शासक साइर, दूसरे मिर्जा मोहम्मद अली खां भूतपूर्व वकील वर्तमान सदस्य विधान सभा टौंक, तीसरे मुन्शी रामनारायण जी सरिश्तेदार, बागकलां सरकारी जिन में से १ व ३ सज्जनों के मूल लेख हम को मिल गये हैं । और जिनका मौलवी साहब ने भी समर्थन किया है परन्तु उन की बुद्धिमानी तथा ईमानदारी पर खेद है कि उस समय तो कोई युक्तियुक्त उत्तर न दे सके और पीछे से दिसम्बर सन् १८८९ में निर्मूल और झूठे-झूठे उद्धरण देकर मूललेख के विरुद्ध कुछ का कुछ प्रकाशित करके अपनी धार्मिकता का चमत्कार दिखाया।

इस शास्त्रार्थ के दिन सामान्य तथा विशेष हिन्दू तथा मुसलमान सुनने वालों की बहुत अधिकता थी यहां तक कि श्री दरबार वैकुण्ठवासी महाराजा सज्जनसिंह भी शास्त्रार्थ सुनने के लिए पधारे हुए थे ।

''स्वामी दयानन्द जी महाराज और मौलवी अब्दुर्रहमान साहब सुपरिण्टेण्डैण्ट पुलिस तथा न्यायाधीश न्यायालय उदयपुर मेवाड़ देश के मध्य में होने वाला शास्त्रार्थ''

११ सितम्बर, सन् १८८२ तदनुसार भादों बदि चौदश, संवत् १९३९, सोमवार ।

मौलवी साहब–(प्रथम प्रश्न) **ऐसा कौन सा मत है जिस की मूल पुस्तक सब मनुष्यों की बोलचाल और समस्त प्राकृतिक बातों को सिद्ध करने में पूर्ण हो ?** जब बड़े-बड़े मतों पर विचार किया जाता है जैसे भारतीय वेद, पुराण या चीन वाले चीनी, जापानी, बर्मी बौद्ध वाले, फारसी जिन्द वाले, यहूदी तौरेत वाले, नसरानी इञ्जील वाले, मौहम्मदी कुरान वाले तो प्रकट होता है कि उन के धार्मिक नियम और मूल विशेष एक देश में एक भाषा के द्वारा एक प्रकार से ऐसे बनाये गये हैं जो एक दूसरे से नहीं मिलते और इन मतों में से प्रत्येक मत के समस्त गुण और विशेष चमत्कार उसी देश तक सीमित हैं जहां वह बना है । जिन में से कोई एक लक्षण तथा चिह्न उसी देश के अतिरिक्त दूसरे देश में नहीं पाया जाता, प्रत्युत दूसरे देश वाले अनभिज्ञता के कारण उसे बुरा जानकर उस के प्रति मानवी व्यवहार तो क्या उस का मुख तक देखना नहीं चाहते । ऐसी दशा में सब मतों में से कौन-सा मत सत्य समझना चाहिये ।

उत्तर स्वामी जी का–मतों की पुस्तकों में से विश्वास के योग्य एक भी नहीं क्योंकि पक्षपात से पूर्ण हैं । जो विद्या की पुस्तक पक्षपात से रहित है वह मेरे विचार में सत्य है और ऐसी पुस्तक का साधारण प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध न होना भी आवश्यक है । मैंने जो खोज की है उस के अनुसार वेदों के अतिरिक्त कोई पुस्तक ऐसा नहीं है जो विश्वास के योग्य हो क्योंकि समस्त पुस्तकें किसी न किसी देश विशेष की भाषा में हैं और वेद की भाषा किसी देश विशेष की भाषा नहीं, केवल विद्या की भाषा है। क्योंकि यह विद्या की पुस्तक है, इसी कारण से किसी मत विशेष से सम्बन्ध नहीं रखती। यही पुस्तक समस्त देशीय भाषाओं का मूल कारण है और पूर्ण होने से प्रसिद्ध भलाइयों तथा निषिद्ध बुराइयों की परिचायक है और समस्त प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है ।

प्रश्न मौ०—क्या वेद मत की पुस्तक नहीं है ?

उत्तर स्वा०—वेद मत की पुस्तक नहीं है प्रत्युत विद्या की पुस्तक है।

प्रश्न मौ०—मत का आप क्या अर्थ करते हैं ?

उत्तर स्वा०—पक्षपात सहित को मत कहते हैं इसी कारण से मत की पुस्तक सर्वथा मान्य नहीं हो सकतीं ।

प्रश्न मौ०—हमारे पूछने का अभिप्राय यह है कि समस्त मनुष्यों की भाषाओं पर तथा समस्त मनुष्यों के आचारों पर और समस्त प्राकृतिक नियमों पर कौन-सी पुस्तक पूर्ण है सो आपने वेद निश्चित किया । सो वेद इस योग्य है वा नहीं ?

उत्तर स्वा०—हां है ।

प्रश्न मौ०—आपने कहा कि वेद किसी देश की भाषा में नहीं । जो किसी देश की भाषा नहीं होती उसके अन्तर्गत समस्त भाषाएं कैसे हो सकती हैं ?

उत्तर स्वा०—जो किसी देश विशेष की भाषा होती है वह किसी दूसरी देश भाषा में व्यापक नहीं हो सकती क्योंकि उसी में बद्ध (सीमित) है।

प्रश्न मौ०—जब एक देश की भाषा होने से वह दूसरे देश में नहीं मिलती तो जब वह किसी देश की है ही नहीं तो सब में व्यापक कैसे हो सकती है ?

उत्तर स्वा०—जो एक देश की भाषा है उसका व्यापक कहना सर्वथा विरुद्ध है और जो किसी देश विशेष की भाषा नहीं वह सब भाषाओं में व्यापक है जैसे आकाश किसी देश विशेष का नहीं है इसी से सब देशों में व्यापक है। ऐसे वेद की भाषा भी किसी देश विशेष से सम्बन्ध न रखने से व्यापक है ।

प्रश्न मौ०—यह भाषा किसकी है ?

उत्तर स्वा०—विद्या की ।

प्रश्न मौ०—बोलने वाला इसका कौन है ?

उत्तर स्वा०—इसका बोलने वाला सर्वदेशी है ।

मौलवी—तो वह कौन है ?

स्वामी—वह परब्रह्म है ।

मौलवी—यह किस को सम्बोधन की गई है ?

स्वामी—आदि सृष्टि में इस के सुनने वाले चार ऋषि थे जिन का नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा था । इन चारों ने ईश्वर से शिक्षा प्राप्त

करके दूसरों को सुनाया ।

मौलवी—इन चारों को ही विशेष रूप से क्यों सुनाया ?

स्वामी—वे चार ही सब में पुण्यात्मा और उत्तम थे ।

मौलवी—क्या इस बोली को वे जानते थे ?

स्वामी—उस जानने वाले ने उसी समय उन को भाषा भी जना दी थी अर्थात् उस शिक्षक ने उसी समय उन को भाषा का ज्ञान दे दिया ।

मौलवी—इस को आप किन युक्तियों से सिद्ध करते हैं ?

स्वामी—विना कारण के कार्य कोई नहीं हो सकता ।

मौलवी—बिना कारण के कार्य होता है या नहीं ?

स्वामी—नहीं ।

मौलवी—इस बात की क्या साक्षी है ?

स्वामी—ब्रह्मादि अनेक ऋषियों की साक्षी है और उन के ग्रन्थ भी विद्यमान हैं ।

मौलवी—यह साक्षी सन्देहात्मक और बुद्धिविरुद्ध है । कारण कथन कीजिये ।

स्वामी—वेद की साक्षी स्वयं वेद से प्रकट है ।

मौलवी—इसी प्रकार सब मतवाले भी अपनी-अपनी पुस्तकों में कहते हैं ।

स्वामी—ऐसी बात दूसरे मतवालों की पुस्तकों में नहीं है और न वे सिद्ध कर सकते हैं ।

मौलवी—पुस्तक वाले सभी सिद्ध कर सकते हैं ?

स्वामी—मैं पहले ही कह चुका हूं कि मतवाले ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते (और यदि कर सकते हैं तो बताइये कि मौहम्मद साहब के पास कुरान कैसे पहुंचा) ।

मौलवी—जैसे चारों ऋषियों के पास वेद आया ।[१]

नोट—१. खेद है कि मौलवी साहब ने विना सोचे समझे ऐसा कह दिया । यह किसी प्रकार ठीक नहीं । न तो कुरान आदि सृष्टि में मौहम्मद साहब की आत्मा में प्रकाशित हुआ और न उस में वर्णित कहानियां ही ऐसी हैं जो आदि सृष्टि से सम्बन्धित हों और न उस की भाषा ही ऐसी है । मौहम्मद साहब और खुदा के मध्य में तीसरा जबराइल और असंख्य फरिश्तों की चौकीदारी और पहरा और आकाश से उतरना आदि समस्त बातें ऐसी हैं जिन में कोई मौहम्मदी भाई इन्कार नहीं कर सकता । इसलिये कुरान किसी प्रकार भी इस विशेषण का पात्र नहीं हो सकता और उस्मान और कुरानों के बदलने की कहानी इसके अतिरिक्त है । —सम्पादक

दूसरा प्रश्न–

प्रश्न मौलवी–समस्त संसार के मनुष्य एक जाति के हैं अथवा कई जातियों के ?

उत्तर स्वामी–जुदी-जुदी जातियों के हैं ।

मौलवी–किस युक्ति से ?

स्वामी–सृष्टि की आदि में ईश्वरीय सृष्टि में उतने जीव मनुष्य-शरीर धारण करते हैं कि जितने गर्भ सृष्टि में शरीर-धारण करने के योग्य होते हैं और वे जीव असंख्य होने से अनेक हैं ।

मौलवी–इस का प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ?

स्वामी–अब भी सब ही अनेक मां-बाप के पुत्र हैं ।

मौलवी–इस के विश्वसनीय प्रमाण कहिये ।

स्वामी–प्रत्यक्षादि आठों प्रमाण ।

मौलवी–वे कौन से हैं ?

स्वामी–प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, ऐतिह्य, सम्भव, उपमान, अभाव, अर्थापत्ति ।

मौलवी–इन आठों में से एक-एक का उदाहरण देकर सिद्ध कीजिये।

प्रश्न मौलवी–ये जो आकार मनुष्यों के हैं, इनके शरीर एक प्रकार के बने अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार के बने ?

उत्तर स्वामी–मुख आदियों में एक से हैं, रंगों में कुछ भेद है ।

मौलवी–किस-किस रंग में क्या-क्या भेद है ?

स्वामी–छोटाई-बड़ाई में किञ्चिन्मात्र अन्तर है ।

मौलवी–यह अन्तर एक देश अथवा एक जाति में एक ही प्रकार के हैं अथवा भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं ?

स्वामी–एक-एक देश में अनेक हैं । जैसे एक मां-बाप के पुत्रों में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं ।

मौलवी–हम जब संसार की अवस्था पर दृष्टिपात करते हैं तो आपके कथनानुसार नहीं पाते । एक ही देश में कई जातियां जैसे हिन्दी, हब्शी, चीनी, इत्यादि देखने में पृथक्-पृथक् विदित होती हैं अर्थात् चीन वाले दाढ़ी नहीं रखते और तिकौने मुंह के होते हैं । हब्शी, मलन्गई, चीनी, तीनों की आकृतियां परस्पर नहीं मिलतीं । एक ही देश में यह भेद क्योंकर है ?

स्वामी–उन में भी अन्तर है ।

मौलवी–दाढ़ी न निकलने का क्या कारण है ?

स्वामी–देशकाल और मां-बाप आदि के शरीरों में कुछ-कुछ भेद है। समस्त शरीर रज वीर्य के अनुसार बनते हैं । वात, पित्त, कफ आदि धातुओं के संयोग वियोग से भी कुछ भेद होते हैं ।

मौलवी–हम समस्त संसार में तीन प्रकार के मनुष्य देखते हैं जिन का विभाजन इस प्रकार है–दाढ़ी वाले, बिना दाढ़ी के, घुंघरू बाल वाले । दाढ़ी वाले भारतीय, फिरंगी, अर्बी, मिश्री आदि । बेदाढ़ी वाले चीनी, जापानी, कैमिस्टका के । घुंघरू बाल वाले हब्शी । इन तीनों की बनावट और प्रकार में बहुत-सा भेद है । एक दूसरे से नहीं मिलता और यह भेद आपके कथनानुसार ऊपर वाले कारणों से है । यदि एक देश के रहने वाले ये तीनों प्रकार के मनुष्य दूसरे देश में जाकर रहें तो कभी भेद नहीं होता । जाति समान है । इस अवस्था में संसार के मूलपुरुष आपके कथनानुसार तीन हुए, अधिक नहीं ।

स्वामी–भोटियों को किस में मिलाते हैं । वे किसी से नहीं मिलते। इस प्रकार तीन से अधिक सम्पत्ति विदित होती हैं ।

मौलवी–जैसा भेद इन तीनों में है वैसा दूसरे में नहीं । तीनों जातियों का परस्पर मिल जाना इस थोड़े भेद का कारण है परन्तु इन तीनों की आकृति एक दूसरे से नहीं मिलती ।

तीसरा प्रश्न–

प्रश्न मौलवी–मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा?

स्वामी–एक अरब छयानवे करोड़ और कितने लाख वर्ष उत्पत्ति को हुए और दो अरब वर्ष से कुछ ऊपर तक और रहेगी ।

मौलवी–इसका क्या कारण और प्रमाण है ?

स्वामी–इस का हिसाब विद्या और ज्योतिष शास्त्र से है ।

मौलवी–वह हिसाब बतलाइये ?

स्वामी–भूमिका के पहले अङ्क में लिखा है और हमारे ज्योतिषशास्त्र से सिद्ध है, देख लो ।

चौथा प्रश्न–

(१३ सितम्बर, सन् १८८२, बुधवार तदनुसार भादों सुदि एकम्, संवत् १९३९ विक्रमी)

प्रश्न (मौलवी जी की ओर से)–आप धर्म के नेता हैं या विद्या के अर्थात् आप किसी धर्म के मानने वाले हैं या नहीं ?

उत्तर (स्वामी जी की ओर से)–**जो धर्म विद्या से सिद्ध होता है**

उस को मानते हैं ।

प्रश्न मौलवी—आपने किस प्रकार जाना कि ब्रह्म ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया ?

उत्तर स्वामी—प्रदान किये गये वेदों के पढ़ने से और विश्वसनीय विद्वानों की साक्षी से ।

मौलवी—यह साक्षी आप तक किस प्रकार पहुंची ?

स्वामी—शब्दानुक्रम से और उन के ग्रन्थों से ।

मौलवी—प्रश्नों से पूर्व परसों यह निश्चित हुआ था कि उत्तर बुद्धि के आधार पर दिए जायेंगे, पुस्तकों के आधार पर नहीं । अब आप उसके विरुद्ध ग्रन्थों की साक्षी देते हैं ।

स्वामी—बुद्धि के अनुकूल वह है जो विद्या से सिद्ध हो चाहे वह लिखित हो अथवा वाणी द्वारा कहा जावे । समस्त बुद्धिमान् इस को मानते हैं और आप भी ।

मौलवी—इस कथन के अनुसार ब्रह्म का चारों ऋषियों को वेद की शिक्षा देना विद्या अथवा बुद्धि द्वारा किस प्रकार सिद्ध होता है ?

स्वामी—विना कारण के कार्य नहीं हो सकता इसलिये विद्या का भी कोई कारण चाहिये और विद्या का कारण वह है कि जो सनातन हो । यह सनातन विद्या परमेश्वर में उस की कारीगरी को देखने से सिद्ध होती है । जिस प्रकार वह समस्त सृष्टि का निमित्त कारण है उसी प्रकार उस की विद्या भी समस्त मनुष्यों की विद्या का कारण है । यदि वह उन ऋषियों को शिक्षा न देता तो सृष्टि-नियम के अनुकूल यह जो विद्या की पुस्तक है, इस का क्रम ही न चलता ।

मौलवी—ब्रह्म ने वेद चारों ऋषियों को पृथक्-पृथक् पढ़ाया अथवा एक साथ क्रमशः शिक्षा दी अथवा एक काल में पढ़ाया ?

स्वामी—ब्रह्म व्यापक होने के कारण चारों को पृथक्-पृथक् और क्रमशः पढ़ाता गया क्योंकि वे चारों परिमित बुद्धि वाले होने के कारण एक ही समय कई विद्याओं को नहीं सीख सकते थे और प्रत्येक की बुद्धिप्राप्ति की शक्ति भिन्न-भिन्न होने के कारण कभी चारों एक समय में और कभी पृथक्-पृथक् समझकर एक साथ पढ़ते रहे । जिस प्रकार चारों वेद पृथक्-पृथक् हैं उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को एक-एक वेद पढ़ाया ।

मौलवी—शिक्षा देने में कितना समय लगा ?

स्वामी—जितना समय उन की बुद्धि की दृढ़ता के लिए आवश्यक था।

[१]मौ०—पढ़ाना मानसिक प्रेरणा के द्वारा था अथवा शब्द अक्षर आदि के द्वारा जो वेद में लिखे हुए हैं अर्थात् क्या शब्द अर्थ सम्बन्ध सहित पढ़ाया?

स्वा०—वही अक्षर जो वेद में लिखे हुए हैं शब्दार्थ सम्बन्ध सहित पढ़ाये गये ।

मौ०—शब्द बोलने के लिए मुख, जिह्वादि साधनों की अपेक्षा है । शिक्षा देनेवाले में यह साधन हैं या नहीं ?

स्वा०—उस में ये साधन नहीं हैं क्योंकि वह निराकार है । शिक्षा देने के लिए परमेश्वर अवयवों तथा बोलने के साधनादि से रहित है ।

मौ०—शब्द कैसे बोला गया ?

स्वा०—जैसे आत्मा और मन में बोला सुना और समझा जाता है ।

मौ०—भाषा को जाने विना शब्द किस प्रकार उन के मन में आये ?

स्वा०—ईश्वर के डालने से क्योंकि वह सर्वव्यापक है ।

मौ०—इस सारे वार्तालाप में दो बातें बुद्धि के विरुद्ध हैं प्रथम यह कि ब्रह्म ने केवल चार ही मनुष्यों को उस भाषा में वेद की शिक्षा दी जो किसी देश अथवा जाति की भाषा नहीं । दूसरे यह कि उच्चारित शब्द जो पहले से जाने हुए न थे, दिल में डाले गए और उन्होंने ठीक समझे । यदि यह स्वीकार किया जावे तो फिर समस्त बुद्धिविरुद्ध बातें जैसे चमत्कारादि सब मतों के सत्य स्वीकार करने चाहियें ।

स्वा०—ये दोनों बातें बुद्धिविरुद्ध नहीं क्योंकि ये दोनों ही सच्ची हैं। जो कुछ जिह्वा से अथवा आत्मा से बताया जावे वह शब्दों के विना नहीं हो सकता । उसने जब शब्द बतलाये तो उनमें ग्रहण करने की शक्ति थी। उसके द्वारा उन्होंने परमेश्वर के ग्रहण कराने से योग्यतानुसार ग्रहण किया। और बोलने के साधनों की आवश्यकता बोलने और सुनने वाले के अलग अलग होने पर होती है क्योंकि जो वक्ता मुख से न कहे और श्रोता के कान न हों तो न कोई शिक्षा कर सकता है और न कोई श्रवण । परमेश्वर चूंकि सर्वव्यापक है इसलिए उनके आत्मा में भी विद्यमान था, पृथक् न था । परमेश्वर ने अपनी सनातन विद्या के शब्दों को उन के अर्थात् चारों के आत्माओं में प्रकट किया और सिखाया । जैसे किसी अन्य देश की भाषा का ज्ञाता किसी अन्य देश के अनभिज्ञ मनुष्य को जिस ने उस भाषा का कोई शब्द नहीं सुना, सिखा देता है उसी प्रकार परमेश्वर ने जिस की विद्या व्यापक है और जो

नोट—१. (इस से आगे मौलवी साहब के स्थान पर मौ० और स्वामी के स्थान पर स्वा० लिखा जायगा) ।

उस विद्या की भाषा को भी जानता था, उन को सिखा दिया । ये बातें बुद्धिविरुद्ध नहीं । जो इन को बुद्धिविरुद्ध कहे वह अपने दावे को युक्तियों द्वारा सिद्ध करे । पुराण जो पुरानी पुस्तकें हैं अर्थात् वेद के चार ब्राह्मण हैं, वे वहीं तक सत्य हैं । जहां तक वेदविरुद्ध न हों । और जो अठारह पुराण नवीन हैं जैसे भागवत, पद्मपुराणादि, वे प्राकृतिक नियमों और विद्या के विरुद्ध होने से सत्य नहीं, नितान्त झूठे हैं ।

मौ०—पुराण मत की पुस्तकें हैं या विद्या की ?

स्वा०—वे प्राचीन पुस्तकें अर्थात् चारों ब्राह्मण विद्या की और पिछली भागवतादि पुराण मत की पुस्तकें हैं जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ ।

मौ०—जब वेद विद्या की पुस्तक हैं और पुराण मत की पुस्तकें हैं और आपके कथनानुसार असत्य हैं तो आर्यों का धर्म क्या है ?

स्वा०—**धर्म वह है जिसमें निष्पक्षता, न्याय और सत्य का स्वीकार और असत्य का अस्वीकार हो । वेदों में भी उसी का वर्णन है और वही आर्यों का प्राचीन धर्म है** और पुराण केवल पक्षपातपूर्ण सम्प्रदायों अर्थात् शैव, वैष्णवादि से सम्बन्धित हैं जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ ।

मौ०—पक्षपात आप किस को कहते हैं ?

स्वा०—जो अविद्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुसंग से किसी अपने स्वार्थ के लिए न्याय और सत्य को छोड़कर असत्य और अन्याय को धारण करना है, वह पक्षपात कहलाता है ।

मौ०—यदि कोई इन गुणों से रहित हो, आर्य न हो तो आर्य लोग उसके साथ भोजन और विवाहादि व्यवहार करेंगे या नहीं ।

स्वा०—**विद्वान् पुरुष भोजन तथा विवाह को धर्म अथवा अधर्म से सम्बन्धित नहीं मानते प्रत्युत इसका सम्बन्ध विशेष रीतियों, देश तथा समीपस्थ वर्गों से है ।** इस के ग्रहण अथवा त्याग से धर्म की उन्नति अथवा हानि नहीं होती परन्तु किसी देश अथवा वर्ग में रहकर किसी अन्य मतवाले के साथ इन दोनों कार्यों में सम्मिलित होना हानिकारक है इसलिए करना अनुचित है। **जो लोग भोजन तथा विवाहादि पर ही धर्म अथवा अधर्म का आधार समझते हैं उनका सुधार करना विद्वानों को आवश्यक है ।** और यदि कोई विद्वान् उन से पृथक् हो जावे तो वर्ग को उस से घृणा होगी और यह घृणा उस को शिक्षा का लाभ उठाने से वञ्चित रखेगी । सब विद्याओं का निष्कर्ष यह है कि दूसरों को लाभ पहुंचाना और दूसरों को हानि पहुंचाना उचित नहीं ।

पांचवां प्रश्न–

(रविवार १७ सितम्बर, सन् १८८२ तदनुसार भादों सुदि पञ्चमी संवत् १९३९ विक्रमी)

प्रथम मौ०–समस्त धर्म वाले अपनी धार्मिक पुस्तकों को सब से उत्तम और उन की भाषा को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं और उस को उस कारण का कार्य भी कहते हैं । जिस प्रकार की बौद्धिक युक्तियां वे देते हैं उसी प्रकार आपने भी वेद के विषय में कहा । कोई प्रमाण प्रकट नहीं किया, **फिर वेद में क्या विशेषता है ?**

स्वा०–पहले भी इसका उत्तर दे दिया गया है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध विषय जिन पुस्तकों में होंगे वे सर्वज्ञ की बनाई हुई नहीं हो सकतीं और कार्य का होना कारण के विना असम्भव है। चार मत जो कि समस्त मतों का मूल हैं अर्थात् पुराणी, जैनी, इञ्जील तौरेत वाले किरानी, कुरानी इन की पुस्तकें मैंने कुछ देखी हैं और इस समय भी मेरे पास हैं और मैं इन के बारे में कुछ कह भी सकता हूं और पुस्तक भी दिखा सकता हूं । उदाहरणार्थ–पुराण वाले एक शरीर से सृष्टि का आरम्भ मानते हैं यह अशुद्ध है क्योंकि शरीर संयोगज है, इसलिए वह कार्य है उस के लिए कर्त्ता की अपेक्षा है ।

जिन्होंने इस कार्य को इस प्रकार सनातन माना है कि कोई इस का रचयिता नहीं, वह भी अशुद्ध है क्योंकि संयोगज पदार्थ स्वयं नहीं बनता । इञ्जील और कुरान में अभाव से भाव माना है । ये चारों बातें उदाहरणार्थ विद्या के नियमों के विरुद्ध हैं, इसलिए इनकी वेद से समता नहीं कर सकते। वेदों में कारण से कार्य को माना है और कारण को अनादि कहा है । कार्य को प्रवाह से अनादि और संयोगज होने के कारण सान्त बताया है । इस को समस्त बुद्धिमान् मानते हैं । मैं सत्य और असत्य वचनों के कारण वेद की सत्यता और मतस्थ पुस्तकों की असत्यता कथन करता हूं । यदि कोई सज्जन इस को प्रकट रूप में देखना चाहें तो मैं किसी दिन तीन घण्टे के भीतर उन मतों की पुस्तकों को प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध सिद्ध करके दिखा सकता हूं । यदि कोई नास्तिक वेद में से प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कोई बात दिखायेगा तो उसको विचार करने के पश्चात् केवल अपनी अज्ञानता ही स्वीकार करनी पड़ेगी । इसलिए वेद सत्यविद्याओं की पुस्तक है न किसी मत विशेष की।

छठा प्रश्न—

प्रश्न मौ०—क्या प्रकृति अनादि है ?

उत्तर स्वा०—उपादान कारण अनादि है ।

मौ०—अनादि आप कितने पदार्थों को मानते हैं ?

स्वा०—तीन । परमात्मा, जीव और सृष्टि का कारण—ये तीनों स्वभाव से अनादि हैं । इन का संयोग, वियोग, कर्म तथा उन का फल भोग प्रवाह से अनादि है । कारण का उदाहरण—जैसे घड़ा कार्य, उस का उपादान कारण मट्टी, बनाने वाला अर्थात् निमित्त कारण कुम्हार चक्र दण्डादि साधारण कारण, काल तथा आकाश समवाय कारण ।

मौ०—वह वस्तु जिस को हमारी बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती, हम उस को अनादि क्योंकर मान सकते हैं ?

स्वा०—जो वस्तु नहीं है वह कभी नहीं हो सकती और जो है वही होती है । जैसे इस सभा के मनुष्य जो थे तो यहां आये । यहां हैं तो फिर भी कहीं होंगे । विना कारण के कार्य का मानना ऐसा है जैसे वन्ध्या के पुत्र उत्पन्न होने की बात कहना । कार्य वस्तु से चारों कारण जिन का ऊपर वर्णन किया है पहले मानने पड़ेंगे । संसार में कोई ऐसा कार्य नहीं जिस के पूर्वकथित चार कारण न हों ।

मौ०—सम्भव है कि जगत् का कारण जिसे आप अनादि कहते हैं, कदाचित् वह भी किसी अन्य वस्तु का कार्य हो । जैसे कि बिजली के बनने में कई साधारण वस्तुएं मिलकर ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो अत्यन्त महान् है । इस वार्तालाप के परिणाम से प्रकट है कि प्रत्येक वस्तु के लिए कोई कारण चाहिए तो कारण के लिए भी कोई कारण अवश्य होगा ।

स्वा०—अनादि कारण उसका नाम है जो किसी का कार्य न हो । जो किसी का कार्य हो उस को अनादि अथवा सनातन कारण नहीं कह सकते किन्तु वह परम्परा और पूर्वापर सम्बन्ध से कार्य कारण नाम वाला होता है। यह बात सब विद्वानों को जो पदार्थविद्या को यथावत् जानते हैं, स्वीकरणीय है । किसी वस्तु को चाहे जहां तक अवस्थान्तर में विभक्त करते चले जावें, चाहे वह सूक्ष्म हो चाहे स्थूल, जो उस की अन्तिम अवस्था होगी, उस को कारण कहते हैं और जो यह बिजुली का दृष्टान्त दिया, वह भी निश्चित कारणों से होता है जो उस के लिए आवश्यक है । अन्य कारणों से वह नहीं हो सकती ।

सातवां प्रश्न—

मौ०—**यदि वेद ईश्वर का बनाया होता** तो अन्य प्राकृतिक पदार्थों सूर्य, जल तथा वायु के समान संसार के समस्त साधारण मनुष्यों को लाभ पहुंचाना चाहिए था ।

स्वा०—सूर्यादि सृष्टि के समान ही वेदों से सब को लाभ पहुंचता है क्योंकि सब मतों और विद्या की पुस्तकों का आदिकारण वेद ही हैं । और इन पुस्तकों में विद्या के विरुद्ध जो बातें हैं वे अविद्या के सम्बन्ध से हैं क्योंकि वे सब पुस्तकें वेद के पीछे बनी हैं । वेद के अनादि होने का प्रमाण यह है कि अन्य प्रत्येक मत की पुस्तक में वेद की बात गौण अथवा प्रत्यक्ष रूप से पाई जाती है और वेदों में किसी का खण्डन मण्डन नहीं । जैसे सृष्टि विद्या वाले सूर्यादि से अधिक उपकार लेते हैं वैसे ही वेद के पढ़ने वाले भी वेद से अधिक उपकार लेते हैं और नहीं पढ़ने वाले कम ।

मौ०—कोई इस दावे को स्वीकार नहीं करता कि किसी काल में वेद को समस्त मनुष्यों ने माना हो और न किसी मत की पुस्तक में प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से वेदों का खण्डन मण्डन पाया जाता है ।

स्वा०—वेद का खण्डन मण्डन पुस्तकों में है, जैसे कुरान में बेकिताब वाले और एक ऊती ईश्वर के मानने वाले जैसे बाइबिल में पिता पुत्र और पवित्रात्मा, होम की भेंट, ईश्वर को प्रिय, याजक, महायाजक, यज्ञ, महायज्ञ आदि शब्द आते हैं । जितने मतों के पुस्तक बने हुए हैं—बीच के काल के हैं । उस समय के इतिहास से सिद्ध है कि मुसलमान, ईसाई आदि जंगली थे तो जंगलियों को विद्या से क्या काम । पूर्व के विद्वान् पुरुष वेदों को मानते थे और वर्तमान समय में शब्द विद्या (फिलालोजी) के परीक्षक **मोक्षमूलर आदि विद्वान् भी संस्कृत भाषा तथा ऋग्वेदादि को सब भाषाओं का मूल निश्चित करते हैं ।** जब बाइबिल कुरान नहीं बने थे तब वेद के अतिरिक्त दूसरी मानने योग्य पुस्तक कोई भी नहीं थी । मनुष्य की उत्पत्ति का आदि काल ही ऋषियों की वेदप्राप्ति का समय है जिस को १९६०८५२९९७ वर्ष हुए । इससे प्राचीन कोई पुस्तक नहीं है ।

पाण्डे मोहनलाल जी ने कहा कि मौलवी साहब के शास्त्रार्थ के प्रथम दिन तो राणासाहब नहीं आये थे परन्तु उन्होंने शास्त्रार्थ लिखित होना स्वीकार किया था । अन्तिम दिन श्री महाराज पधारे और मौलवी साहब की हठ देखकर श्री दरबार साहब ने कहा कि जो कुछ स्वामी जी ने कहा है वह निस्सन्देह ठीक है । फिर शास्त्रार्थ नहीं हुआ । कविराज श्यामलदास जी ने भी इस

का समर्थन किया ।

नवीन वेदान्त

(राव राजा मोहनसिंह जोधपुर से प्रश्नोत्तर–जून, १८८३)

जोधुपर निवासकाल में राव राजा शिवनाथसिंह जी के भाई राव राजा मोहनसिंह जी जो संस्कृतज्ञ थे, कई बार स्वामी जी से मिलने के लिए आये और जीव ब्रह्म की एकता के बारे में स्वामी जी से प्रश्न किया कि आप जीव हैं या ब्रह्म ?

स्वामी जी ने कहा कि हम जीव हैं ।

उसने कहा कि मैं तो ब्रह्म हूं क्योंकि पण्डित का यही कथन है कि वह समदर्शी हो और चराचर में उस को देखे ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि ब्रह्म हो तो ब्रह्म के गुण होने चाहियें जो कि आप में नहीं दीखते । इस पर कई मन्त्र पढ़कर सुनाये जिस पर उस ने कहा कि यदि मैं चाहूं तो सब जान सकता हूं परन्तु जब मैं शुद्ध हो जाऊं तभी ब्रह्म बनूंगा ।

स्वामी जी ने कहा कि ब्रह्म में अशुद्धता कहां से आई, शुद्ध क्यों नहीं होते ?

इसी प्रकार की बातें एक दिन हुईं परन्तु उन्होंने फिर कभी ऐसे प्रश्न नहीं पूछे; प्रत्युत स्वामी जी से प्रीतियुक्त बातें करते रहे और प्रेम रखते रहे। स्वामी जी भी उन की योग्यता की प्रशंसा करते रहे । (लेखराम पृष्ठ ८३४)